DAMAGE BOOK

TEXT CROSS
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178868
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/M95V Accession No. H1445

Author मुल्कराज शर्मा आनन्द

Title वीर कृषक

This book should be returned on or before the date last marked below.

ॐ

वीर-वृषल

[एक ऐतिहासिक भावपूर्ण उपन्यास]

लेखक—

पं० मुलकराज शर्म्मा आनन्द

प्रकाशक—

आर्य पुस्तक भण्डार, देहली

१० अप्रैल १९४८ ई०

मूल्य ५)

प्रकाशक—
आर्य पुस्तक भण्डार,
नई सड़क,
देहली।

सोल एजेन्ट—
भारत-भारती साहित्य सदन,
नई सड़क, देहली।

मुद्रक—
बालकृष्ण एम० ए०,
युगान्तर प्रेस,
देहली।

वीर वृषल

को हिन्दी संसार के सम्मुख भेजते हुए हृदय कांपता है। सुनता हूं हिन्दी साहित्य में बड़े बड़े कड़े समालोचक बैठे हैं, जो 'का' और 'के' की गलतियां निकालेंगे। पञ्जाबी हूं, पञ्चनद देश में जन्म लिया है, इसलिए मेरी भाषा पर "पञ्जाबीयत" का आक्षेप भी होगा। यह सब कुछ ठीक! परन्तु फिर भी भारतमाता के इस सपूत का हिन्दी जगत् से परिचय (Introduce) करा रहा हूं, केवल इस कारण कि "वीर वृषल" हिन्दी था और हिन्दी युवकों को उसके साखे तथा कारनामें सुनाना मेरा कर्तव्य है! मेरी भाषा अशुद्ध हो, मेरे लिखे शब्दों में "पञ्जाबीयत" हो, मुझे परवाह नहीं, क्योंकि बच्चे की तोतली वाणी भी माता के प्यार का कारण हुआ करती है। पस कोई कारण नहीं कि भारत-माता मेरे इस प्रयत्न को प्यार की दृष्टि से न देखे।

"वीर वृषल" को मैंने पहले उर्दू अक्षरों में लिखा था। भाषा उस समय भी हिन्दी ही थी। [संयुक्त प्रान्त अथवा कलकत्ते तथा बम्बई की हिन्दी नहीं, बल्कि पञ्जाब की मेरी हिन्दी] इस भाषा में इसे लिखते समय मुझे कुछ सन्देह था कि उर्दू जानने वाली जनता इसे नहीं पढ़ेगी। यह आधा तीतर आधा बटेर वाली बात थी। परन्तु मुझे आज यह बात स्वीकार करते हुए सन्तोष तथा हर्ष है कि "वीर वृषल" का उर्दू संस्करण पूर्ण रूप से कामयाब रहा है। इसे न केवल बड़े बड़े देशभक्तों ने ही अपनाया है, न केवल चोटी के समाचार पत्रों ने ही सराहा है;

बल्कि चारों ओर से इसे हिन्दी भाषा तथा हिन्दी लिपि में छपवाने के लिये आग्रह किया गया है। और यह उसी आग्रह का परिणाम समझिये कि यह पुस्तक आप के हाथों में है। इस पुस्तक में क्या है, मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं। पुस्तक आपके कर कमलों में है। इसे पढ़िए और आपको ज्ञात हो जायगा कि यह आज से दो सहस्र वर्ष पहले के भारतवर्ष की एक कथा है जिसे मैंने आपके सामने रखने की चेष्टा की है। प्राचीन भारत के लुप्त हुए इतिहास को उपन्यास रूप में आर्य्य जगत के सामने रखना मैंने अपने जीवन का कर्तव्य समझ रखा है और यह उसी कर्तव्य की पूर्ति की प्रथम किस्त है, जिसे यदि हिन्दी संसार ने अपनाया तो मैं यत्न करूंगा कि भविष्य के लिए हिन्दी भाषा की सेवा को भी इस कर्तव्य में शामिल कर लूँ।

हां एक बात कहनी है और वह यह, कि इस पुस्तक को साधारण उपन्यास समझ कर पढ़ने से इसकी असलियत का पता नहीं लगेगा। क्योंकि निस्सन्देह यह सहस्रों नहीं तो सैकड़ों पुस्तकों के अध्ययन तथा वर्षों के विचार और खोज [Research] का फल है। इसलिये मेरी इच्छा है कि भारत का बच्चा बच्चा इसे पढ़े ताकि उसके मन में देश-भक्ति की तरङ्ग पैदा हो और वह "वीर वृषल" के चरण-चिन्हों पर चलता हुआ अपने जीवन को सफल बनाने का यत्न करे।

भवदीय—

"आनन्द"

वीर वृषल

पहला भाग

पहला परिच्छेद

तक्षशिला

हमारा किस्सा जिसे किस्सा कहना एक ऐतिहासिक घटना का अपमान करना है आज पूरे २२४५ वर्ष पहले आरम्भ होता है जब कि हमें एक सुन्दर नवयुवक तक्षशिला के इस ओर घोड़ा मारे चला जाता दीख पड़ता है। सायंकाल हो चुका है, चहुं ओर फैली हुई चन्द्रमा की चांदनी में नवयुवक के मुख मण्डल पर एक विलक्षण तेज दमक रहा है। डील-डौल से वीरता बरसती है। बाईं ओर लटकती हुई तलवार और दाईं ओर धनुष जिसके साथ ही कवच में पड़े हुए बाण अपनी तीक्ष्ण जिह्वा बाहर निकाले किसी पापी के रक्त के प्यासे देख पड़ते हैं तथा पीठ पर

पड़ी हुई ढाल पता देती है कि हमारा हीरो क्षत्रिय वंश का चमकता हुआ सितारा है। रान के नीचे घोड़ा जो अपने सवार की सुन्दरता और वीरता पर इठलाता हुआ चल रहा है अरबी और भारतीय वंशका सम्मिश्रित जानवर है जो दिनभर चलनेपर भी अभी तक वैसा ही ताजादम दिखाई देता है और यदि नवयुवक क्षणमात्र के लिये भी उसकी बागें ढीली छोड़ दे तो यह कहना कठिन है कि वह उन रास्तों की पर्वाह न करता हुआ जिससे वह अपरिचित प्रतीत होता है, कहां जा ठहरे; पर नहीं, एक ओर उठी हुई पहाड़ियां और दूसरी ओर दूर तक फैला हुआ हरा भरा जङ्गल इस बात की आज्ञा नहीं देते कि इसे अपनी इच्छानुसार दौड़ लगाने के लिये छोड़ा जाय, यही कारण है कि उसके दहाना के सिरे को मुंह में चबाकर लगाम ढीला कराने के लिये बार बार जोर देने पर भी हमारा नवयुवक हीरो इसे ऐसा करने की आज्ञा देने को तैयार नहीं।

नवयुवक की आयु बीस वर्ष के लगभग है, मियाना कद, अभी तक रेख भी नहीं फूटी। इसका गोरा गोरा रङ्ग जिसके अन्दर गुलाबी रक्त झलक रहा है, उठते हुए चन्द्रमा की प्रभा में बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। चन्द्रकी शुभ्र ज्योत्स्ना पेड़ों के अन्दर से छन छनकर आती है और इस समय—जब कि चारों ओर भय और आतंक का साम्राज्य है, मनुष्य तो क्या कोई जंतु भी चलता फिरता नहीं देख पड़ता—इस भयानक बीहड़ को एक दिव्य तेज से रङ्ग रही है। रास्ता जिस पर वह चला जा रहा है, घने जङ्गल में एक छोटी सी पग डंडी है जिसपर जहाँ तहां पेड़ों की शाखायें अस्त-व्यस्त फैल गई हैं यही कारण है कि इसे अत्यन्त सावधानी से इस पर चलना पड़ता है।

एक विशेष स्थान पर पहुंच कर हमारे हीरो ने लगाम के संकेत से घोड़े को ठहरा लिया और कान के पीछे हाथ रखकर किसी

शब्द को सुनने में लग गया। इस समय दूर फासले पर किसी नदी के पानी की छप-छप की आवाज सुनाई देती थी, नवयुवक घोड़े की पीठ पर झुक गया और उस आवाज की ओर कान लगा दिये। कुछ क्षण इसी अवस्था में बीत गये और उसके चेहरे पर हर्ष और आश्वासन की झलक दिखाई दी, उसके होंठ हिले और उनसे एक हल्कीसी आवाज निकली, जिसे हमारे कान नहीं सुन सके। इसके पश्चात् उसने बाग मोड़ी और मध्य जंगल को जाती हुई एक पगडंडी पर हो लिया।

कोई घण्टा भर इसी तरह चले जाने के पश्चात् रास्ता खुल सा गया और चन्द्रमा की चमकती हुई चांदनी में एक मन्दिर का कलश सामने दिखाई दिया। नवयुवक आगे बढ़ा और मन्दिर के दरवाजे पर पहुंच कर घोड़े पर से कूदकर अलग हो गया।

सुशील घोड़ेने लहलहाते हुए घास पर मुंह मारना आरम्भ किया। नवयुवक ने एक हल्की सी सीटी बजाई और कोई पांच मिनट पीछे मन्दिर के पश्चिम भाग से एक मनुष्य का सिर ऊंचा उठता हुआ देख पड़ा। नवयुवक आगे बढ़ा और धीरे से बोला—"इन्दु!"

"भारत माता की जय हो!"

"जय हो भारत माता की, कहो क्या समाचार लाये?"

इन्दु—भारत माता के विनाशके दिन निकट आ रहे हैं, आर्य्यावर्त यवनावर्त बना चाहता है। पवित्र ब्रह्मावर्तपर म्लेच्छों का अधिकार हुआ चाहता है,.................................

(जिह्वा रुक गई, कण्ठ से शब्द न निकल सके।)

नवयुवक का हाथ तलवार की मुट्ठीकी ओर बढ़ गया, आंखोंसे अग्निकण बरसने लगे, नासिका फड़फड़ाने लगी और आवेशकी अवस्था में मुंहसे निकल गया—"जबतक भारत माता का एक बच्चा भी जीता है, यह नहीं हो सकता, यह असम्भव है, यह

कठिन है, आर्य्यावर्त यवनावर्त नहीं बन सकता और न बनेगा। इन्दु! यह तुम क्या अनिष्ट स्वप्न देख रहे हो?"

इन्दु—मैं स्वप्न नहीं देख रहा हूं, जो कह रहा हूं सत्य है, जब भारत माता के वह पुत्र जिन्हें सुपूत बनना चाहिये थ, कपूत बन कर अपनी माता के गले पर छुरी चलवाने लग जायँ तो फिर क्या आशा हो सकती हैं? आप सुन चुके हैं, मशाका में हमारे भाइयों पर क्या बीती थी, किस तरह शस्त्रधारियों को अभयदान देकर उस यवन राजा ने उन्हें निर्दयता से तलवारके घाट उतारा। हा! भारत भूमि में यह अधर्म हो और भारतवासी चुप चाप सब कुछ सहन कर लें, नहीं नहीं, सामने खड़े कौतुक देखें! रानी शिला का राज्य, आपको मालूम होना चाहिए, उस देशद्रोही विश्वासघाती शशिगुप्त को दिया गया है जो आरम्भ से ही उस यवन राजा को सारे भेद बताता रहा। इसके और उसके जरनैलों के परस्पर पत्र-व्यवहार का साधन देशघाती हमारे भारतवासी हो रहे हैं। अभी कल्हकी बात है तक्षकशिला के राजा अम्भीने इस यवन राजा को इस लिये बुला भेजा है कि पौरुष और अभिसारसे प्रतिकार ले। हा! तुम कहते हो भारत भूमि म्लेच्छभूमि नहीं बन सकती, परन्तु अपनी आंखों सब कुछ देखता हुआ मैं तुम्हारे कथन को कैसे मान लूं!

नवयुवक—प्रिय मित्र! यह सत्य है और जो कुछ तुमने बताया अत्यन्त हृदय बेधक है। तथापि उपाय करना अपना धर्म है।

इन्दु—(उसकी बात को सुनी अनसुनी करके) हां, जिस समय यह यवन राजा, जिसे ससार अलक्षेन्द्र कहता है, अम्भीसे मिलने आया तो एक विचित्र कौतुक हुआ। अम्भी अपनी समग्र सेना को साथ लेकर उसकी अभ्यर्थना को नगर बाहर निकला, नगर के बाहर उसने हाथियों को एक पंक्तिमें खड़ा कर दिया,

प्यादा और घुड़सवार सेना भी अपने अपने स्थान पर खड़ी हो गई। हा ! उस दृश्य को देख देखकर अपने हृदयमें क्या २ कल्पनायें उठ रही थीं ! मैं सोच रहा था कि क्या ही आनन्द हो यदि यह देशघातक इन वीरों को भारतके शत्रुओं के रक्तपान का आदेश दे अथवा कोई देश हितैषी इनका परिचालन करता हो ताकि यह नवयुवक जो नपुंसकों की न्याईं यहां खड़े होकर कौतुक देख रहे हैं अपने रक्तसे भारत भूमि को पवित्र करके मातृऋण से उऋण हो जायँ।

अलक्षेन्द्र ने दूरसे इस सेना को देखा और यह समझकर कि कोई बलवान शत्रु उसे पापों का दण्ड देने के लिये आ गया उसने तुरन्त ही सैनिकों को सशस्त्र करके प्यादे और सवारों को अलग अलग दलों में बांट कर युद्ध का चित्र बांध दिया। हा ! अम्भी के अतिरिक्त उस समय कौन हृदयशून्य भारतवासी होगा जिसका हाथ पहलूमें लटकती हुई तलवार पर न चला गया होगा। परन्तु अम्भी के मनमें कुछ और तरंगें उठ रहीं थीं। उसने देखा कि उसके कड़े परिश्रम पर राख पड़ने को है क्योंकि इससे पहले इस देशद्रोही ने यवनों को सहस्रों मन अनाज यों ही देदिया था जिस पर मोटे होकर वे भारत वासियों के रक्त से हाथ रंग रहे हैं। हां, जब उसने देखा कि तनक सी चूक से उस के सारे विश्वासघात का अन्त होने वाला है तो उसने घोड़े को एड़ लगाई और अकेला हो शत्रु के शिविर की ओर चल दिया।

इधर से अलक्षेन्द्र भी उसे घोड़ा दौड़ाते आता देखकर आगे बढ़ा। दोनों के हाथ परस्पर मिले और भारतवर्ष के भाग्य का फैसला हो गया।

"निर्लज्ज ! शठ ! दो हाथ तो करके देख लेता, क्षत्रिय होकर पावों में गिरना, हा ! आकाश तू क्यों नहीं टूट पड़ा।"

इन्दु—और परिणाम यह है कि इस समय यवन सेना तक्षकशिला के चारों ओर फैल रही है। यवन बादशाह ने उसे सब प्रकार की स्वतंत्रता दे रखी है सम्पूर्ण तक्षकशिला में किसी की प्रतिष्ठा, बड़ाई, धन-सम्पत्ति सुरक्षित नहीं, यवन सैनिक जो चाहें करें, अम्भी ने अपना मुकुट अलक्षेन्द्र के चरणों में रख दिया और उसने उठाकर उसके सिर पर रख दिया अर्थात् अलक्षेन्द्र वास्तव में राजा है और अम्भी उसका एक तुच्छ सेवक !

नवयुवक—हा ! हा ! दैव ! इतना पतन ! अच्छा अब मैं जाता हूं और अपनी आंखों सारी अवस्था को देख कर आऊंगा।

इन्दु—परन्तु क्या आप अकेले जायेंगे ?

नवयुवक—(मुस्कराकर) क्या मैं अकेला हूं ? (तलवार की मुट्ठीपर हाथ फेर और घोड़ेको थपकी देकर जो स्वामीकी थपकी से हिनहिनाने लग गया) क्षत्रिय कभी अकेला नहीं है।

इन्दु—परन्तु..............

नवयुवक—परन्तु क्या ? सुनो,

इसके अनन्तर नवयुवक ने इन्दु के कान से होंठ लगा दिये और न जाने उसने कान में क्या कहा, परन्तु......

इसके पश्चात् वह घोड़े पर सवार होकर एक ओर, और इन्दु दूसरी ओर जाता हुआ दिखाई दिया।

जङ्गल से निकल कर हमारा हीरो कुछ फर्लाङ्ग ही गया होगा कि इसके कानों में एक करुणा जनक आवाज़ सुनाई पड़ी। राजपूत दुखित की आवाज सुने और फिर आना कानी करें। यह असम्भव है। नवयुवक का हृदय विवश हो गया और आंख झपकते ही उसका घोड़ा पवन से बातें करने लगा।

थोड़ी दूर जाकर उसने बागें रोक ली, क्योंकि सामने मनुष्यों का जमघट दिखाई देरहा था। उस समय हमारे नवयवक ने नज़र भरकर देखा तो उसे जान पड़ा कि वह सीधा

यूनानी सेना के अन्दर आ पहुंचा है। इस समय उसकी आंखोंके सामने एक दृश्य था, जिसने आस पास के सम्पूर्ण खतरों को भुला सा दिया था, क्योंकि सामने एक विशाल और खूबसूरत पेड़ के साथ एक मसहरी लटक रही थी जिस पर एक नवोढ़ा सुन्दरी लेट रही थी और एक कृष्णसर्प जिसे उस देश की भाषामें "कौड़ा सांप" कहा जाता है, उसकी कोमल देह के गिर्द लिपटकर मानों अपनी विजय प्रकट करता हुआ आस पास एकत्र हुये यूनानी सैनिकों और अफसरों की ओर फण उठा २ कर अपनी नुकीली और लपलपाती हुई जिह्वा से उन्हें आवाहन कर रहा था। यूनानी सिपाही और सेना के अफसर आस पास खड़े थे परन्तु किसी के किये कुछ बनता नज़र न आता था, क्योंकि सर्प को मारने से उस सुन्दरी के भी जीवन के जाने का भय था। नवयुवक क्षत्रिय के घोड़े की टाप सुनकर सबकी आंखें उधर उठ गईं; परन्तु उसे उनकी पर्वाह न थी, उसकी दृष्टि सर्प की चमकती हुई दृष्टि से मिल रही थी। इस समय वह इस बात को भूल रहा था कि वह उन लोगों के कैम्प के अन्दर है जिन्हें वह भारत की स्वतंत्रता का शत्रु समझता है, क्योंकि प्रश्न दुखित की सहायता का था।

आंख झपकते ही इसके सर्पाकृति धनुष से एक सरसराता हुआ वाण निकला, उपस्थित सैनिकों के चलते हुये सांस रुक गये, परन्तु दूसरे ही क्षण में सर्प के बल ढीले हो रहे थे और उसका सिर उड़कर कहीं का कहीं पहुंच चुका था।

सब ओर से वाह वाह की ध्वनि उठी, लोगों ने दौड़ कर मसहरी को पेड़ से नीचे उतारा तो वह सुन्दरी अचेत पड़ी हुई थी।

इसे सुधि में लाने के उपाय हो रहे थे कि एक ओर से एक लम्बा जवान आता हुआ देख पड़ा। इसे आता देखकर सब सैनिकों ने पीछे हटकर सादर सलाम किया। नवयुवक ने मुड़कर देखा

तो अनुमान ने उसे बता दिया कि वह सेना में कोई उच्च अधिकारी है। यह अफसर आगे बढ़कर उस स्थान पर पहुंचा जहां वह सुन्दरी अचेत पड़ी थी और जाते ही उसने पुकार कर कहा "बेटी! बेटी! होश नहीं करोगी, तुम्हारा बाप तुम्हारे सिरहाने खड़ा है।"

सुन्दरी ने आंखें खोल दीं, उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह दूर फासले पर अपने पिता की आवाज़ को सुन रही है, आंखें खुलीं तो पिता सिरहाने खड़ा था। एक मिनट तक वह उसके चेहरे की ओर ताकती रही, इस अन्तर में उसकी बुद्धि भी ठिकाने आ गई और वह उठकर बैठ गई। सबके सब उपस्थित सैनिकों ने परमेश्वर को धन्यवाद दिया जिसकी दया से उसका जीवन बचा था। पिता ने ज्यूस देवता के नाम पर बलि देने की आज्ञा दी; बीसियों सैनिक उन प्राणियोंको लानेके लिये दौड़ गये जिन्हें इस अकेले मानवी जीवन के बदले देवता के सन्मुख भेंट देना उचित माना गया था।

हमारा हीरो एक ओर खड़ा यह दृश्य देख रहा था। उसके मस्तिष्कमें इस थोड़े से समय के अन्दर बीसियों विचार आकर चले गये थे। वह सोचता था कि मनुष्य का जीवन कितना निस्सार है, तनकसी असावधानी इसे इस प्राकृतिक शरीर से कितनी जल्दी अलग कर सकती है। फिर उसके मनमें यह विचार आया कि प्राकृतिक शरीर में बँधे हुए अविनाशी आत्माका ज्ञान कितना थोड़ा और मर्य्यादित है। अभी अभी यह लड़की सब प्रकार की चिन्ताओं से रहित हो कितने ही रक्षकों की रखवाली में सुख से सो रही थी कि एकाएक एक दूसरा आत्मा उपस्थित हुआ जिसने इसे नाम और रूप के सम्बन्ध से मुक्त करने को ही अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य समझ रखा था, उसे इससे कोई वैर न था, कोई द्वेष न था, कोई झगड़ा न था, कोई दुख न

पहुँचता था, परन्तु फिर भी वह इसे इस शरीर से छुड़ाने में ही सुख मानता था; परन्तु हां ! उसे यह ज्ञान न था कि वह मृत्यु जो वह दूसरे के लिये ला रहा है स्वयं उसके अपने शरीर पर गर्ज रही है।

इन्हीं विचारो में मग्न हुआ हमारा हीरो इस नश्वर जगत् से ऊपर उठा हुआ खड़ा था जब कि एक आवाज ने इसे अपने मनोहर स्वप्न से जगा दिया, जो यह कह रही थी—

"अजनबी ! तुम जो कोई भी हो, मैं तहेदिल से तुम्हारा शुक्रगुजार हूँ और इस मेहरबानी के बदले में जो भी ख़िदमत कहो सैल्यूकस बजालाने से दरेग़ न करेगा।

"सैल्यूकस ! क्या मैं सिकन्दर के सब से बड़े सेनापति के सन्मुख खड़ा हूँ ?" इस विचारने हमारे हीरो को चौंका दिया और उसने कुछ घबराहट के साथ कहा—"मेहरबानी ? ख़िदमत ? मैंने आप पर काई मेहरबानी नहीं की, मैंने केवल यही किया है जो मेरा कोई और देशवासी, नहीं-नहीं, कोई भी मनुष्य, ऐसे समय में करता।"

सैल्यूकस—(लड़की को आवाज़ देकर) रुक्शाना आओ अपने मोहसन (उपकार करने वाले) का शुक्रिया अदा करो।

इन शब्दों पर वह सुन्दरी आगे बढ़ी। नवयुवक के नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गये क्योंकि इस समय चन्द्रमा की चांदनी में निस्सन्देह वह स्वर्ग की कोई अप्सरा प्रतीत होती थी। उसका गोरा गोरा रङ्ग चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में अतीव मनोहर लगता था। उसके नीलवर्ण विशाल नेत्रों में कृतज्ञता की एक झलक थी जो उसे इस प्राकृतिक कृतघ्न संसार से ऊपर उठा रही थी।

आगे बढ़कर उसने कहा—"मेरे मोहसन ! मैं तहेदिल से आपकी ममनून हूँ।"

इन शब्दों ने नवयुवक की अवस्था और की और कर दी। मानों उसे मूर्च्छा सी आ रही हो परन्तु तुरन्त ही अपने आप को संभालकर उसने कहा—"देवी! मुझे स्वयं तुमसे और तुम्हारे पूज्य पिता से क्षमा मांगना है क्योंकि यदि मेरा हाथ तनक भी चूक जाता तो तुम्हारा कुशल न था, इसलिये तुम्हें मेरा कृतज्ञ नहीं होना चाहिये प्रत्युत मेरे इस महान् अपराध को क्षमा करना चाहिए जो मुझसे जान बूझकर अथवा अनजान में स्त्री पर हाथ चलाने से होता।"

नवयुवक के इस तर्क पर पिता पुत्री दोनों ने हँस दिया।

इस रूपसी बालिका को हँसते देखना एक विचित्र मनोहारी दृश्य था जिसने एक बार फिर हमारे हीरो को बेसुध सा कर दिया।

सैल्यूकस—क्या मैं अपने मोहसन का नाम दर्याफ्त कर सकता हूँ?

नवयुवक—मेरा नाम ?......मेरा नाम......मुझे वृषल कहते हैं!

सैल्यूकस—वृषल......वृषल......हां मैं अहसान फ़रामोश हूँगा, अगर आपको शाहंशाह से इन्ट्रोड्यूस न कराऊं। यक़ीनन शाहंशाह भी आपके बहुत मशकूर होंगे, रुक्शाना को वे बेटिओं से भी ज्यादा अज़ीज़ समझते हैं।

नवयुवक—मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ, परन्तु आश्चर्य्य है कि न तो आपने मेरा हालचाल जाना, न आप यह ही जानते हैं कि मैं कहां से आया हूँ, कौन हूँ, कहां जा रहा हूँ और किसलिये जा रहा हूँ? क्या यह बुद्धिमत्ता है कि एक सर्वथा अपरिचित मनुष्य को एक ऐसे शाहंशाह के सन्मुख पेश किया जाय जिसके जीवन पर एक इतना बड़ा युद्ध निर्भर है।

सैल्यूकस—(उसे सिरसे पावों तक घूरकर) वृषल ! क्या तुम मुझे बेवक़ूफ़ समझते हो, क्या मैं तुम्हारे चेहरे पर लिखा हुआ नहीं पढ़ सकता कि तुम एक शरीफ़ और आली खान्दान आदमी हो जिसकी ज़ात से कोई कमीना हरकत सरज़द नहीं हो सकती।

नवयुवक वृषल मंत्रमुग्ध की तरह चुप चाप सैल्यूकस के पीछे चल दिया। सैल्यूकस और रुक्शाना आगे आगे थे और वृषल तथा उसका स्वामिभक्त घोड़ा पीछे पीछे। वृषल की आंखें हठात् रुक्शाना पर पड़कर उसके अपने ही मन को चीर रही थी, रुक्शाना भी बार बार पीछे मुड़कर अपने उपकारी के सुन्दर मुखको देखती और मुस्करा देती थी, ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों एक दूसरे के विचारों को पढ़ रहे हैं क्योंकि जहां वृषल रुक्शाना की मोहिनी छवि को देखकर उसे कोई स्वर्गीय देवी समझ रहा था वहां रुक्शाना कृतज्ञताके भावमें उसे मनुष्यों से ऊंचा समझ रही थी। इन्हीं विचारों में शाहंशाह का खेमा आ पहुंचा जो शिविर के ठीक मध्य में गाड़ा गया था।

वृषल को शाहंशाह के पास पेश किया गया। उसके मनमें इस वीरसे आंख मिलाने की उत्कट इच्छा थी (और कदाचित् यही इच्छा उसे यहां खेंच लाई थी) जिसका नाम इस समय बहुत से लोगों के लिये हौआ बन रहा था।

जिस समय वह खेमे में दाखिल हुआ तो उसने देखा कि सिकन्दर सिंहासन पर विराजमान है उसके मुखमण्डल से वीरता, साहस और सबसे बढ़कर अभिमान टपक रहा है। सिर तनक आगे को झुका हुआ है, मियाना कद, बात करते समय नेत्रों में ऐसी चमक सी उत्पन्न होती है, मानों दूसरे के हृदय के भावों को ताड़ गया है। इसे अन्दर आते देख कर सिकन्दर ने मुस्कराते हुये बैठने का संकेत कर कहा:—

"मा बदौलत आपकी बहादुरी और शराफ़त की बाबत सुनकर बहुत खुश हुए हैं और साथ ही इस मेहरबानी के लिये शुक्रगुजार भी हैं जो आपने अज़ीज़ा रुक्शानाको पञ्जाए अज़ल से बचाने में दिखाई है। (धीरता से) लेकिन क्या आपके मुल्क में यह भी दस्तूर है कि बादशाह के सामने जाते वक्त आदाब नहीं बजाया करते (इस समय उसके नेत्रों में वही चमक विद्यमान थी जिसको हम ऊपर कह आये हैं)।

वृषल—राजन् ! मैं आपकी कृतज्ञता का न तो अधिकारी हूं न उसका अभिलाषी। परन्तु यदि आपके मनमें यह इच्छा हो कि वृषल का सिर आपके सन्मुख झुके तो मेरा इतना ही कहना पर्य्याप्त होना चाहिये कि यह सिर न आज तक किसी संसारिक राजा के सन्मुख झुका है और न झुकेगा और यहां तो उसके सन्मुख उसके देश का शत्रु बैठा है।

सिकन्दर—नौजवान ! तुम हद्दे-अदब से बढ़ रहे हो, तमीज़ सीखो।

वृषल—राजन् ! मैं अदब की हद से नहीं बढ़ रहा हूँ। तक्षकशिला के देश द्रोही राजा की लोलुप-वृत्ति ने तुम्हारा सिर फेर दिया है और तुम यही समझते हो कि भारतवर्ष ऐसी ही मिट्टी के लोगों का बना हुआ है, परन्तु मैं कहता हूँ कि तुम्हें अभी कोई पुरुष नहीं मिला। पर शीघ्र ही तुमको पता लग जायगा कि पुरुष किसे कहते हैं और तुम जान लोगे कि लोलुप मनुष्यों और क्षत्रियों में क्या अन्तर है।

सिकन्दर का हाथ तलवार की मुट्ठी पर जा पड़ा, परन्तु वृषल ने उसी प्रकार धीरता से फिर कहा -

"यवनाधीश ! अपने आपको सूर्य्य पुत्र समझने का अभिमान करने वाले, मैं समझता था, मैं उस वीर पुरुष के सन्मुख जा रहा हूँ जो भारत वर्ष को विजय करने के लिये आ

रहा है, हां-हां, मेरे मन में उस शूर-वीरके दर्शनों की अभिलाषा थी जो इतने बड़े साहस के साथ सहस्रों कठिनाइयाँ झेलता हुआ आ रहा है, क्योंकि मैं समझता था कि वह पुरुष पराक्रमी होगा, साहसी होगा, शूर-वीर होगा। परन्तु शोक! मैंने भूल की, क्योंकि मैं उस मनुष्य को वीर नहीं कह सकता जो केवल इस लिये तलवार की मुट्ठी पर हाथ रखने लग जाता है कि एक मनुष्य जो उसकी प्रजा नहीं और कदाचित् उसी के समान किसी उच्च वश से सम्बन्ध रखता, उसके सन्मुख मस्तक नहीं रगड़ता और स्वतंत्रता से अपना सिर ऊंचा रखता हुआ उसका कारण बता रहा। हे राजन्! मैं समझता हूँ कि वीर जन हृदय के सरल होते हैं, उनके वचन और कर्म समान होते हैं; परन्तु मैं यह नहीं जानता था कि इस बात में भारत वर्ष और यवन देश के आचरणों में भेद है। (खड़े होकर) हां, परन्तु मैं तुम्हें बता दूं कि तलवार की मुट्ठी पर हाथ रखकर तुमने क्या खोया है, सुन लो और कान खोलकर सुनलो—इस समय तुम्हारे सन्मुख वह मनुष्य खड़ा है जिसे यदि तुम्हारा अभिमान बीच-में न आ जाता तो तुम ऐसा मित्र बना सकते थे जो तुम्हें गङ्गा-पारके उन प्रदेशों का विहार करा सकता था जिन तक पहुंचना भी तुम्हारे लिये कठिन ही नहीं वरन् असंभव है, तुमने अपनी मूर्खता से उस मनुष्य को अपने हाथों से खो दिया है जो तुम्हें भारतवर्ष के उन वीर पुरुषों का मित्र बना सकता था जिनकी तलवार के सामने संसार की तलवारें कुंद हो गई हैं। अब वही हाथ जो तुम्हारी सहायता को उठ सकता था, तुम्हारे विरुद्ध उठेगा और उस समय तक उठता रहेगा जब तक कि भारतवर्ष में यवन राज्य को निर्मूल न कर लेगा। वह हाथ इस समय भी तुम्हारे जीवन का अन्त कर सकता था वह वाण जो अभी-अभी एक सर्प रक्त पीकर आया है, एक मनुष्य का

रक्त पी सकता था, परन्तु क्षत्रिय अंधेरे में वार नहीं किया करते, भारतनिवासी धर्म्मयुद्ध के प्यारे हैं, इसलिये मैं तुझे बतलाये देता हूं ताकि उस समय के लिये उद्यत रहो जब वृषल की तलवार यवन-राज्य के निर्बीज करने के लिये उठे।"

यह शब्द कहता हुआ वृषल खेमे से बाहर हो गया, और इसके पूर्व कि सिकन्दर व सैल्यूकस उस मूढ़ावस्था से जागृत हों, जिसने उन्हें मन्त्रमुग्धसा कर रखा था, घोड़े की पीठपर सवार होकर यूनानी शिविर से बाहर हो रहा था। इसे जाता देखकर चारों ओर कोलाहल मच गया, "पकड़ियो! दौड़ियो!" की ध्वनि बुलन्द हुई, परन्तु रात्रि के समय अपरिचित सैनिकों के लिये वृषल का पीछा करना सहज न था। उसका पवनसा वेगवान घोड़ा अपनी क्षिप्रगति से हरिण की तरह चौकड़ियां भरता चला जा रहा था और देखते देखते पर्वतों की ओट में न जाने किधर लोप हो गया।

दूसरा परिच्छेद

तक्षक गुफा

तक्षकशिला के बाहर थोड़ी दूर के फासले पर पहाड़ियों के मध्य में एक लम्बी गुफा दूर तक चली गई थी। यह प्राकृतिक थी या बनावटी इसपर विचार करना हमारा काम नहीं। बनावटी कहते हुये यह सिद्ध करना सहज नहीं कि पहले पहल इसे किसने बनाया, ठीक जिस प्रकार उस तालाब के लिये निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है, जिसे हमारे पौराणिक भाई कहते हैं कि इसमें महाराजा जन्मेजय ने सर्प सत्र यज्ञ किया था परन्तु जिसे बौद्ध लोग तथागत का एक चमत्कारमात्र बताते हैं। हाँ प्राचीन इतिहासों में इसके सम्बन्ध में यदि कोई जिक्र आता है तो वे यह शब्द हैं जो प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यानत्सांगने अपनी भारत यात्रा में लिखा है-"नाग सरोवर से कोई ३० ली (६ मील) के अन्तर पर दो पहाड़ियों के मध्य में हम एक गुफा में प्रविष्ट होते हैं जहां महाराज अशोक ने एक स्तूप बनवा रखा था। यह गुफा कोई १०० फिट ऊंची है। इस स्थान पर शाक्य तथागत (बुद्ध) महाराज ने भविष्यवाणी कही थी कि जब भगवान् मयत्रीजी इस जगत में अवतार धारण करेंगे तो उस समय रत्नों के चार कोष भी उत्पन्न होंगे जिनमें से एक इस पवित्र भूमि में होगा। इस भविष्यवाणी के अनुसार हम देखते हैं कि जब कोई भूकम्प आता है तो आस पास के सम्पूर्ण पर्वत जड़ों तक हिल जाते हैं, परन्तु इस पवित्र स्थान के सौ सौ गज तक आस-पास सर्वथा शान्ति रहती है, यदि लोग मूर्खता से इस स्थान को खोदने की

चेष्टा करें तो एक भारी झटके के साथ पृथ्वी में कंप होने लगता है और वे लोग वहीं जकड़े जाते हैं।

परन्तु ह्यांनथ्सांग ने जो कुछ लिखा है वह इस समय से जिसका हम उल्लेख कर रहे हैं पूरे एक सहस्र वर्ष पीछे की घटना है और कौन कह सकता है कि इस दीर्घकाल में कौन कौनसी घटनाएँ हो चुकी हैं जिन्होंने इस स्थान के साथ अनेक दन्त-कथाएं जोड़ दी होंगी, सुतरां इस विषय में हम केवल इतना ही लिखकर कथाको आरम्भ कर देंगे कि उस समय बहुत थोड़े लोग इस गुफा को जानते थे और जो जानते थे उन्हें इसके सम्बन्ध में कुछभी ज्ञान न था। वे भी इसके अन्दर जाते हुए भयभीत होते थे क्योंकि मीलों तक लम्बे तहखाने के अन्दर जिसके दोनों ओर पहाड़ियां हों, बनके हिंसक जन्तुओं और विशेष कर सर्पों का होना कुछ असम्भव नहीं है जिनके बाहुल्य के कारण ही इस प्रदेश का कदाचित् यह नाम पड़ गया है।

इस गुफा के अन्दर इस समय जब कि यूनानी सेना में खतरे का घंटा बज चुका है और जब कि तक्षक शिला के चारों ओर चीख पुकार और हाय-दुहाई का क्रन्दन सुनाई देता है हम एक सवार को दाखिल होते देखते हैं जिसने अन्दर पांव रखते ही जेब से एक सीटी निकाल कर बजाई और आस पास चारों ओर से कई सीटियां उत्तर में बजती हुई सुनाई दीं, जिन्हें यदि इन पर्वतों में उसकी सीटी के शब्द की गूंज कह दिया जाय तो अनुचित न होगा।

सवार घोड़े से उतर कर एक ओर खड़ा होगया। इस समय उसके मुखमण्डल पर विश्वास और जोश की एक झलक थी जो चन्द्रमा की इस चाँदनी में भी जो इस समय आकाश में बिखरे हुए बादलों के बीच में गुजर रहा था, साफ दिखाई देती थी।

कुछ क्षणों तक शून्यावस्था रही, जिसके पश्चात् सहसा गुफा "भारत माता की जय" के जयकारों से गूंज उठी और इसके साथ ही चारों ओर से कई सूरतें आकर उस नव आगन्तुक के आस पास एकत्र होती हुई दिखाई दीं। फिर उनमें से एक ने कहा—"सुनाइये क्या देखा।"

आगन्तुक—बहुत कुछ, परन्तु संक्षेप से इतना ही कह देना पर्य्याप्त होगा कि यवनराजा एक वीर पुरुष है, यद्यपि यह कहना कठिन है कि उसका अभिमान उसकी दिग्वजय के स्वप्न को पूरा होने देगा वा नहीं।

सबके सब (एकवारगी)—क्या आप यवनराजा को देख आये हैं?

आगन्तुक—देख ही नहीं आया वरन उसके साथ बात-चीत करके उसे सोचने और समझने के लिये भी कुछ सामग्री दे आया हूं।

सबके सब—वह कैसे?

आगन्तुक—यह फिर किसी समय बताऊंगा, इस समय हमें उस ओर ध्यान देना चाहिये जिसके लिये हम इस स्थान पर एकत्र हुए हैं। इन्दु! कहो मुझसे वियुक्त होकर तुमने क्या सोचा?

इन्दु—"वृषल! मैं देखता हूं कि अभी तक हमारा बल बहुत थोड़ा है, हमारे राजा अपने-अपने बैर का प्रतिकार लेने की लालसा में हैं उन्हें इस बात का विचार नहीं कि वे इस दुर्भावना में बहे जाकर भारत की पवित्र भूमि को अन्य देश वासियों की परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ रहे हैं इसलिये जब तक हम प्रबल बलशाली न हो जायं हमारा कुछ करना हमारे नाश का कारण होगा।"

वृषल का सिर सोच में झुक गया जिसे एक मिनट के पश्चात् एकाएक ऊंचा करके उसने कहा—"सिद्धार्थक ! क्या तुम्हारी भी यही सम्मति है ?"

सिद्धार्थक—मैंने सम्पूर्ण तक्षला में पर्य्यटन किया है, बहुत से लोगों से मिला हूं और इस परिणाम तक पहुंचा हूं कि इस नगर के लोगों की एक वृहत् संख्या राजा अम्भी के इस कार्य्य को घृणा की दृष्टि से देखती है। सेना का एक बड़ा भाग भी इसी विचार का है, परन्तु अब जब कि यवनसेना चारों ओर फैल रही है, लोग निहत्थे हैं, उनसे कुछ करते धरते नहीं बनता हमारे अपने साथियों की संख्या भी बहुत थोड़ी है, न अभी तक हमारे पास इतना रुपया है जिससे एक बड़ी सेना बनाई जा सके, इसलिये जब तक पूर्णतया अपनी शक्ति को दृढ़ और सङ्गठित न कर लिया जावे, खतरे में पड़ना उचित नहीं।

निपुणक—अभी तक यवनराजा का किसी शूर-वीर के साथ संग्राम भी तो नहीं हुआ। अम्भी जैसे नपुंसकों के अतिरिक्त उसने अभी पुरुषों को देखा ही कहां ? सुनते हैं वह महाराजा पौरुष के देशकी ओर बढ़ रहा है। वहां उसे पता लग जायगा कि क्षत्रिय किसे कहते हैं।

वृषल—हां हां, महाराज पौरुष की तैयारियों का समाचार लाने कौन गया था ?

"मैं"।

समिद्धार्थक ! हां क्या समाचार लाये हो ?

समिद्धार्थक—यवनराज ने महाराज पौरुष को संदेश भेजा था कि वह उसे कर देना स्वीकार करे और अपने राज्य की अन्तिम सीमा तक उसकी अभ्यर्थना के लिये आये, जिसके उत्तर में महाराज पौरुष ने यह कहा है कि "अलक्षेन्द्र विश्वास

रखे, उसकी अभ्यर्थना को उसी स्थान पर आऊंगा, परन्तु तलवार हाथ में लेकर।"

वृषल—साधु ! साधु !! क्षत्रिय ! तुझ से यही आशा थी।

समिद्धार्थक—और अब अलक्षेन्द्र ने महाराज पौरुष से युद्ध की ठान ली है।

वृषल—आश्चर्य है, मुझे तो यह बात समझ नहीं आती कि यह मनुष्य क्यों उन निर्दोष लोगों को छेड़ रहा है जो परमात्मा के पुत्रों का रक्त बहाना पसन्द नहीं करते और जिन्होंने कभी उसे दुःख नहीं दिया।

समिद्धार्थक—क्योंकि उसके गुरु (अरस्तु) का यह मत है कि यवन लोग बुद्धि और पुण्य-कर्म्मों में अन्य सम्पूर्ण मनुष्यों से बढ़कर हैं, इसलिये उन्हें यह अधिकार है कि दूसरे सब मनुष्यों को जो उनकी दृष्टि में असभ्य और जङ्गली हैं लूटें, मारें और इस संसार से निर्बीज कर दें।

वृषल—धिक्कार है इस मत पर ! धिक्कार है इस पुण्य-कर्म्म पर ! जो अन्धकार में शस्त्र चलाना सिखाता है, जो निहत्थों को लूटने की शिक्षा देता है, जो निर्दोष प्राणियों की हत्याकी प्रेरणा करता है, क्या इस सभ्यता को यह मनुष्य भारतवासियों को सिखाने आया है, क्या इस मत का अनुयायी बनाने के लिये यह मनुष्य संसार में घूम रहा है ? क्या आप सबके सब अपने नेत्रों के सन्मुख इस शिक्षा का प्रचार होते देखेंगे और मौन रहेंगे ?

सबके सब—कभी नहीं, कदापि नहीं।

वृषल—मेरे मित्रो ! आनेवाले समय में इतिहासवेत्ता कहेंगे कि यवन-देशवासियों ने भारतवासियों को विद्या सिखायी, सभ्यता सिखायी, भारतवासी जङ्गली थे, असभ्य थे, उन्हें न बुद्धि थी, न विवेक, उन्हें जो कुछ मिला यवनों से मिला। परन्तु

मैं पूछता हूं, तुम उस समय से यवनों को देख रहे हो जबसे उनका पैर इस पवित्र भूमि में पड़ा है, क्या तुमने इनके अन्दर एक भी बात ऐसी देखी है जिसे हमें इनसे सीखना है ?

सबके सब —कोई नहीं ।

वृषल—तो फिर उनके यहां आने की क्या आवश्यकता है ? और यदि वे यहां आ गये तो क्या हमें उन्हें यहां अपनी पुत्रियों और भगिनियों का सतीत्व भ्रष्ट करते देखना होगा, अपने भाइयों और बड़ों की धन-सम्पत्ति से हाथ रङ्गते देखना होगा और मौन रहना होगा ?

सबके सब—कदापि नहीं, कदापि नहीं ।

वृषल—मित्रो ! मत समझो कि मैं इस बात की ओर से नेत्र बन्द कर रहा हूं कि हमारी शक्ति इस समय उस चने के तुल्य है जो भाड़ को फोड़ने पर उद्यत हो, परन्तु स्मरण रखो, सत्य की शक्ति हमारे पक्ष में है और कोई कारण नहीं कि हम अपने पवित्र कार्य में सफल न हों । हम महाराज पौरुष के पुरुषार्थ की प्रतीक्षा करेंगे, परन्तु उस समय तक मौन न रहेंगे । हमें देश को एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक इस आपत्ति की ओर से जागृत करना है और इस कर्तव्य में हम प्रमाद नहीं करेंगे । यदि मुकुट धारी राजाओं के सिर हमारे सन्मुख संग्राम के लिये आयेंगे, यदि अपने स्वार्थ के वश में होकर वे हमारे कर्त्तव्य-पथ में बाधा डालेंगे तो उनके वे सिर नहीं रहेंगे और सिकन्दर के साथ ही उन्हें भी अपने पाप कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा ।

सबके सब—"जय भारत की !"

वृषल—"जय भारत जननी की !"

तीसरा परिच्छेद

ब्राह्मण क्रोध, ईश्वरीय कोप

पाठक ! क्षमा करें, यदि हम छल कपट और विश्वासघात के उन दृश्यों की ओर से थोड़ी देर के लिये आंखें बन्द करके जिन्हें वर्तमान युग में युद्ध-कौशल अथवा पालिसी के नाम से पुकारा जाता है और जो महाराजा पौरुष के साथ युद्ध में सिकन्दर की ओर से दिखाये गये, उन्हें अपने साथ उस सुदूरवर्ती प्राच्य दिशा की ओर ले जाते हैं जो अभी तक विदेशियों के कुटिल कुचक्रों से बची हुई है किन्तु जिसका बहुत समय तक शान्त रहना कदाचित् असम्भव होगा; क्योंकि वन के एक सिरे में आग लगने से दूसरे सिरे के लोग अपने आपको सुरक्षित नहीं कह सकते।

अहा ! आओ हमें अपने साथ यात्रा में साथी भी अच्छे मिल गये हैं। यह ब्राह्मण देवता कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) जायेंगे साथ बहुत से शिष्य हैं, रास्ता बहुत सुख से कटेगा। दूर दूर तक जिधर दृष्टि जाती है चौरस मैदान के सिवा जिसमें कहीं कहीं कोई वृक्ष दिखाई देता है और कुछ नजर नहीं आता। हां, दूब उग रही है और दूब भी वह जिसके नुकीले सिरे वाणसे अधिक तीक्ष्ण है। कदाचित् यही दूब थी जिससे यादव-वंशियों ने शस्त्रों का काम लेकर अपने वंश को निर्मूल कर डाला था।

एकाएक ब्राह्मण देवता ठहर गये, उनका चेहरा तमतमा उठा, नंगे पांव में दूब का तीक्ष्ण सिरा आधा धँस गया।

ब्राह्मण—शारंगरव ! खुर्पा लाओ।

शारंगरव—भगवन् ! खुर्पा क्या करेंगे ?

ब्राह्मण—ला भी । मुझसे बयान मांगता है, अरे इस दूब का सत्यानाश करूंग और क्या करूंगा । लाओ खुर्पा मुझे दे दो और तुम सब के सब जाओ! आस-पास के गांवों से गाढ़ी छाछ मांगकर लाओ, मैं इसका जड़ पेड़ से नाश करूंगा । न जाने किस किस के पांवों को इसने घायल किया है ।

क्षणमात्र में सारे के सारे शिष्य चारों दिशाओं में बिखर गये । बन में ब्राह्मण और उसके खुर्पे के सिवा और कोई न रहा ।

एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गये, तीसरा दिन भी व्यतीत हो रहा है, परन्तु ब्राह्मण के खुर्पे ने विश्राम नहीं लिया वह उसी प्रकार अपने प्रलय-कर्म अथवा जगत् के उद्धार के काम में लग रहा है । एक एक गुल्म उखाड़ा जा रहा है और उसकी जड़ों में छाछ का प्याला डाल दिया जाता है ताकि थोड़ी बहुत जड़ जो पृथ्वी के अन्दर रह गई हो फिर हरी न हो सके ।

आस-पास के गांवों में उन शिष्यों द्वारा यह खबर फैल गई है जो छाछ लेने के लिए जहां तहां फिर रहे हैं और लोग कौतुक देखने के लिए इकट्ठे हो रहे हैं । वे आते हैं, परन्तु ब्राह्मण को उनके आने जाने की कुछ पर्वाह नहीं, वह अपने काम में उसी तरह लीन है । लोग देखते हैं, कई तो उसके काम को व्यर्थ और कालक्षेप समझकर उसे सिड़ी और विक्षिप्त कहते और चले जाते हैं, क्योंकि उनके विचार में इतने बड़े मैदान में से दूब का ‥ना मनुष्य की शक्ति से बाहर है परन्तु जहां बहुत से लोग ‥ने वाले हैं वहां बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो ‥स पाकर यह कहते हुये उसके साथ लग ‥र है हम लोगों पर यदि एक ब्राह्मण हमारे ‥ा काम करे और वह भी अपने लिये नहीं,

प्रत्युत हम नंगे पांवों चलने वालों की खातिर, और हम खड़े खड़े कौतुक देखें !"

परिणाम यह हुआ कि एक भारी जन समूह उस बीहड़ को साफ करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। स्त्रियां छाछ के मटके सिर पर उठाये आती हैं और इस प्रकार इस बियावान में छाछ की नहरें बहने लगती हैं।

राह चलते लोग देखते हैं और ब्राह्मण के उद्योग पर आश्चर्य से वाह वाह करने लग जाते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि दूब इस रास्ते में, विशेषतः उन दिनों में, जबकि वर्षा का जल चारों ओर पड़ा फिरता है और पगडंडियां दिखाई न पड़ती हों, बटोही जनों को कितना दुखी किया करती है।

स्वयंसेवकों का यह दल इसी प्रकार अपने प्रेम-भरे परिश्रम को पूरा कर रहा था कि एकाएक एक ओर से धूल उड़ती हुई दिखाई दी और थोड़े समय में ही कुछ सवार उसमें से निकलते दिखाई दिये। हमारे अवैतनिक बेलदारोंके निकट आकर उन्होंने घोड़ों की बागें रोक लीं। जमींदारों और कृषकों में से (जो ब्राह्मण के साथ काम कर रहे थे) कई एक ने उन सवारों के अफसरों को पहचानकर नमस्कार किया, क्योंकि वह महाराज नन्द का मन्त्री शकटार था।

शकटार ने ब्राह्मण को देखा और उसे देखकर उसका सिर आदर के साथ झुक गया, घोड़े से उतर कर चरण छुये और पूछा "महाराज आप यह क्या कर रहे हैं ?"

ब्राह्मण—इस दूब को जड़मूल से उखाड़ रहा हूं, यह पथिकों को दुखः देती है।

शकटार—भगवान् ! आप क्यों कष्ट उठाते हैं, मैं बेलदार लगा देता हूं और थोड़े दिनों में यह मैदान साफ हो जायगा।

ब्राह्मण— कभी नहीं, जाके पांव न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।

मंत्री! तुम और तुम्हारे बेलदार पांवों में सुनहली जूतियां पहनने वाले! तुम क्या जानों दूब के पावों में लगने से क्या कष्ट होता है? इस कार्य्य को मैं स्वयमेव पूरा करूंगा, मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं।

ब्राह्मण के अचल धैर्य्य को देखकर मंत्रीने दांतों तले अंगुली दबायी, एक तुच्छ जड़ वस्तु दूब के विरुद्ध इतना जोश! क्या ही अच्छा होता यदि यह जोश किसी महान् कार्य्य में लगता। यह भारत के शत्रुओं के विरुद्ध प्रयोग किया जाता व देश में से अन्याय और अत्याचार के दूर करने में काम आता! यह विचार विद्युत्की क्षिप्र गति से मंत्री के मन में फिर गये; और उसने फिर हाथ बांध कर प्रार्थना की:—

"महाराज! आप कष्ट न उठायें, मैं बेलदार लगाये देता हूँ, आप अपने सन्मुख सब काम करायें, इस प्रकार महीनों का काम दिनों में और दिनों का घंटों में हो जायगा।"

ब्राह्मण—(कुछ सोचकर) जो इच्छा तुम्हारी।

चतुर्थ परिच्छेद

ब्राह्मण की प्रार्थना ।

समय गुज़र गया और अब हम उस ब्राह्मण को जिसे लोग विष्णु गुप्त के नाम से पुकारते हैं, पाटलि पुत्र में एक पाठशाला के अन्दर काम करते हुए देखते हैं। मंत्री शकटार ने उसे राजकीय पाठशाला का प्रबन्ध अपने हाथों में लेने के लिये बहुतेरा ज़ोर मारा है परन्तु वह उस प्रकार के ब्राह्मणों में से नहीं जिनकी आजीविका लोगों के दान पर निर्भर है। वह जानता है कि दो रोटी, एक कुर्ता और एक धोती के साथ वह जीवन का निर्वाह कर सकता है। इस लिये उसे इस बात की पर्वाह नहीं कि वह राजाओं के द्वार पर धन की लालसा में पेट रगड़ता फिरे। उसकी पाठशाला भी नगर की निर्धन बस्ती के एक भाग में है जहां पर वे विद्यार्थी उसके पास आते हैं जिनमें राजकीय पाठशालाओं के व्यय की सामर्थ्य नहीं। विष्णु गुप्त के जीवन का उद्देश्य उन निर्धन और असहाय बालकों को विद्या के अलकार से अलंकृत करके उनकी आत्मा को उस गिरी हुई अवस्था से ऊंचा उठाना है ! उसके अपने पास जो कुछ भी हो वह सब निर्धनों की सहायता के लिये धर्मार्थ पड़ा रहता है। दो रोटी के सिवा कभी उसकी पाठशाला के अन्दर कोई सामग्री नहीं रहती। उसकी जेब के पैसे सदैव दीन दुखी और निर्धन जनों के काम आते हैं, यही कारण है कि वह निर्धन श्रेणी के लोगों में दिन पर दिन अधिकाधिक प्रिय होता चला जा रहा है। धनवान् और ऐश्वर्य्यशाली लोगों के साथ इसका सदैव कटु व्यवहार रहता है, यही कारण है कि वे लोग इसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं,

परन्तु इस बात को सभी मानते हैं कि विष्णु गुप्त के जोड़ का दूसरा पण्डित पाटलिपुत्र में ही नहीं वरन् मगध देशमें कोई नहीं।

विष्णु गुप्त की शिक्षा-प्रणाली भी अन्य सब पंडितों से निराली है। उसे इस बात की चिन्ता नहीं कि वह अपने शिष्यों को कौन कौन सी और कितनी पुस्तकें पढ़ाता है, क्योंकि वह कहा करता है कि विद्या का आदर्श आत्मा को जागृत करना है, जिस शिक्षा का प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ता उसका सिखाना व्यर्थ है। सुतरां जब कभी भी हम उसे अपने शिष्यों से बात चीत करते देखते हैं वह सर्वदा कथा कहानियों अथवा ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा शिक्षा देता देख पड़ता है जिसे बालक प्रसन्न हो होकर सुनते हैं, सुनते ही नहीं, वरन् उसकी वर्णन करने की विधि ऐसी प्रभाव युक्त होती है कि वे उन कथाओं को अपने जीवन में जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। निर्धन श्रेणी में विचरने का एक विशेष प्रभाव विष्णु गुप्त पर यह हुआ है कि उसे यह ज्ञान हो गया है कि राज्य के अधिकारीवर्ग की ओर से उन तपस्वियों पर सहस्रों अत्याचार किये जाते हैं। नन्द के आठ पुत्र जिनके जीवन का आदर्श ही खाना पीना और भोग विलास है, इस ओर से बिल्कुल ही असावधान हैं कि उनकी प्रजा की क्या दुर्गति हो रही है। प्रजा की बहू बेटियों का सतीत्व उनके हाथों से सुरक्षित नहीं है और जब राजवंश की ही यह दशा हो तो देश के शेष अधिकारियों की क्या अवस्था होगी, इसका अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। सारे पाटलिपुत्र में कदाचित् कोई एक आधा ही पदाधिकारी ऐसा देख पड़ता है जिसका आचार अच्छा हो। प्रजा की बहू बेटियों के सतीत्व के सिर पर राजकीय उपाधियां प्रदान की जाती हैं। निर्धनों के परिश्रम से कमाये हुये धन पर बड़े बड़े पेट वाले लोग मोटे हो रहे हैं।

विष्णु गुप्त की करुणामयी प्रकृति इन सब अनाचारों को देखती है और देख देखकर अन्दर ही अन्दर कुढ़ती है। कई बार जब कभी राजमंत्री शकटार उसके पास आते है तो वह उन्हें दुत्कार देता है, परन्तु सब कुछ सुनकर मंत्री का एक ही उत्तर हुआ करता है और वह यह कि "मैं स्वयं सब कुछ देखता हूं, मैं जानता हूं कि सारी की सारी प्रजा ज्वालामुखी पर्वत की न्याई अन्दर ही अन्दर दुःख और क्रोध की अग्नि से जल रही है परन्तु शोक! मैं सर्वथा विवश हूं, राजा किसी की नहीं सुनते, राजपुत्र पूरे दुराग्रही और वाचाल हैं। मैंने एक बार महाराज को सच्ची अवस्था जतलाने की चेष्टा की थी परन्तु उसका फल यह हुआ कि मुझे परिवार सहित वर्षों कारावास में बंद कर दिया गया। उस अवस्था में एक छोटी सी थाली अन्न की हम सबों को मिलती थी, मेरे सारे के सारे बच्चे और स्त्री उस बन्दी अवस्था में "हा अन्न!" "हा अन्न!" करते परलोक सिधारे, एक मैं शेष रह गया हूं ताकि सब कुछ देखूं और फिर भी मुंह न खोलूं।"

यह शब्द कहते हुए मंत्री जी अपने आपे से बाहर हो जाते, नेत्र लाल हो जाते, चेहरे का रंग बदल जाता और बड़ी कठिनाई से वे अपने आपको संभालते।

सायंकाल है। पंडित विष्णु गुप्त संध्योपासन से निपट कर बैठे हैं। राज कर्मचारियों के नये नये अत्याचारों के समाचारों ने आज उनके हृदय पर कठोर वज्रपात किया है और इस समय वे सोच रहे हैं:—

"क्या इनके पाप-कर्मों की नौका अभी भरी नहीं? क्या दीनों की तप्त आह का धुआं अभी तक इतना नहीं हुआ कि वह घनघोर घटा बने और मूसलाधारा बरस कर अपने वेगवान प्रवाह से पापियों के पाप को बहा ले जाये? क्या अभीतक जल उन्हें डुबोने के लिये यथेष्ट नहीं? हां, कदाचित् ऐसा हो, अन्यथा यह असंभव था

कि यह अत्याचार इतने समय तक होते रहें। परमात्मन् ! क्या मैं मौन बैठा यह कौतुक देखता रहूंगा और इस दुःख को जो दीन और असहाय जनों के हृदयों को जला कर दग्ध कर रहा है दूर करने का कोई यत्न नहीं करूंगा ? परमात्मन् ! मनुष्यों के अन्तःकरण की बातों को जानने वाले !! मुझे वह बुद्धि दे जिससे मैं सत्यासत्य की परीक्षा कर सकूं, जिससे मैं धर्माधर्म को जान कर अधर्म का सत्यानाश कर सकूं। पिता ! आप इस जगत् को एक विशेष नियम पर चला रहे हैं, उसमें कहीं त्रुटि नहीं, परन्तु यह पापी तेरी आज्ञा का उल्लंघन करते हुये तेरे नियम को तोड़ कर अपनी मनोनीत प्रथा को चलाना चाहते हैं। पिता, शक्ति दीजिये जिससे मैं उन मायावी शक्ति के रखने वालों की शक्ति को तोड़ कर उन्हें सीधा मार्ग दिखा सकूं। पिता ! निर्बलों के आप बल हैं, इनकी सहायता करो, इनका तुम से अन्य और आश्रय नहीं, वे लोग जिन्हें तुमने इनकी रक्षा के निमित्त भेजा था इन्हें हड़प रहे हैं। पिता ! यह ग्वाले जिन्हें तूने अपनी गौ की रक्षा का कर्त्तव्य सौंपा था भेड़िये बन रहे हैं। पिता ! शक्ति दे ताकि इन्हें सीधा मार्ग दिखाने का यत्न करूं।"

यह प्रार्थना करते हुये पंडित जी की घिग्घी बन्ध गई, दुःख और संताप के वेग से उसका कलेजा फटने लगा, उसके मुख से और कोई शब्द न निकल सका। थोड़ी देर इसी अवस्था में डूबा रहा और जब मन कुछ हलका हुआ, नेत्र खुले, तो सन्मुख राज मंत्री बैठे थे।

पण्डित जी की समाधि खुलने पर उसने चरणों पर शीश नवाया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर आने का कारण पूछा तो राजमत्री ने कहा :—

राजमंत्री—महाराज ! कल राज भवन में अमावस्या का श्राद्ध है, कृपया निमंत्रण स्वीकार कीजिए, इसीलिये यहां आया हूं।

विष्णु गुप्त—राजा का अन्न ! मैं खाऊंगा ? मंत्री, यह तीन काल में नहीं होगा। राजा—और वह भी पापी राजा—का अन्न एक ब्राह्मण अंगीकार नहीं कर सकता।

शकटार—महाराज ! यह राजा का अन्न नहीं, यज्ञ का अन्न है, राजा के मृतक पितरों के निमित्त दिया जानेवाला अन्न है।

विष्णुगुप्त—(नेत्र लाल कर के) क्या तुम समझते हो कि वे पितर इस यज्ञ द्वारा स्वर्गलोक में जायंगे ? कदापि नहीं, यह हो नहीं सकता, इस प्रकार की पापी संतान अपने पिता पुरखाओं को घोर नरक में ले जाने वाली होती है।

शकटार—तो भी मेरी प्रार्थना से इस निमंत्रण को स्वीकार कीजिए, आपके बिना व्यास आसन शून्य रहेगा।

इस प्रार्थना पर ब्राह्मण का सिर झुक गया, क्योंकि राज कर्मचारियों में से यदि किसी के लिये उसके मन में कुछ आदर भाव था तो वह यह मनुष्य था जो इस समय सन्मुख खड़ा उससे विनती कर रहा था।

पांचवां परिच्छेद

घनघोर घटा।

प्रकृति के काम मनुष्य की बुद्धि से ऊंचे हैं। मनुष्य इस विराट सृष्टि के ज्ञान को गणित और ज्योतिष के नियमों में बांध कर अपनी क्षुद्र बुद्धि से उसे समझने का प्रयत्न करता है। इसका यह प्रयत्न समुद्र को मटके में बन्द करने के समान है। प्रकृति के स्थूल नियमों को समझ कर हम लोग इसके सम्पूर्ण गुप्त रहस्यों को समझने के दावेदार हो जाते हैं, परन्तु जिस प्रकार यह सत्य है कि इस ब्रह्माण्ड में आज तक जो कुछ मालूम हो चुका है, इसकी, उसकी अपेक्षा जिसका अद्यावधि कुछ पता नहीं लगा, कोई तुलना नहीं, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि हमारा ज्ञान भी हमारे अज्ञान की अपेक्षा कोई तुलना नहीं रखता।

ब्राह्मण विष्णुगुप्त अमावस्या के श्राद्ध का निमंत्रण स्वीकार करके राज भवन में आया। मंत्री शकटार की आज्ञा से उसे व्यासासन प्रस्तुत किया गया, परन्तु राज्य कर्मचारियों से उसका दुर्व्यवाहर भूला हुआ न था, इसलिये उस मनुष्य का जिसने इतनी बार उनका निरादर किया था इस तरह राजभवन में ही आदर सत्कार उन्हें क्योंकर भा सकता था? यही कारण है कि उन लोगों ने राजा के एक दास को जो राजा के मुंह चढ़ा है, इस बात की रिपोर्ट करने लिये नियत कर दिया है। सुतरां यह देखिए, वह राजा से कह रहा है:—

दास—श्रीमान्! राज मंत्री शकटार अंधेर मचा रहा है, श्राद्ध में व्यास आसन ऐसे मनुष्य को दिया गया है जो अत्यन्त

मूढ़ है, न बात करने का ढंग, न बोलने का। सारे के सारे ब्राह्मण इस अपमान को सहन न करते हुए उठ जानेको तैयार हैं।

राजा—नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है, तुम क्या कह रहे हो, मन्त्री मूर्ख नहीं, वह सब ब्राह्मणों को जानता है, इसलिये उसका चुनाव अनुचित नहीं हो सकता।

दास—आप चलकर स्वयं देख लीजिये, किसी राजकर्मचारी से पूछ लीजिए। मंत्री शकटार तो.........क्या कहूं... अपने आपको राजा समझ रहे हैं। और तो और आपसे भी आज्ञा नहीं लेते।

राजा—इसमें आज्ञा की कुछ आवश्यकता न थी।

दास—महाराज! आज्ञा की आवश्यकता तो थी, जब इतने ब्राह्मण अप्रसन्न हों तो फिर राजा को सूचना देनी चाहिये थी या नहीं।

राजा—अच्छा तुम जाओ, उस ब्राह्मण को अलग भोजन खिला दो।

दास—महाराज! मन्त्री जी मेरी क्या सुनेंगे, राजकुमार सौमाल्य आ रहे हैं, उन्हें आज्ञा हो।

सौमाल्य—महाराज! यह आज क्या तमाशा बन रहा है एक काला कलूटा ब्राह्मण जिसके ब्राह्मण होने में भी मुझे सन्देह है, व्यास आसन पर बैठा है, सम्पूर्ण राज मन्दिर में हलचल मच रही है।

राजा—अच्छा जाओ, जो उचित समझो करो।

× × × ×

नवयुवक राजकुमार को मन माने अधिकार मिल गये, बस फिर क्या था! "एक तो रावण दूसरे सिर पर गधा।"

संस्कृत का एक कवि कहता है—"धन, शासन, रूप और

यौवन इन में से एक एक अनर्थ का हेतु है और जहाँ पर चारों ही एकत्र हो जायँ वहां क्या कुछ न होगा ?"

इस कथन के अनुसार आज सौमाल्य में जो कसर थी वह भी पूरी हो गई। उठने बैठने वाले सुहृद्मित्रों ने और भी नोन मिर्च लगा दिया। राजकर्मचारी तो आगे ही उस तपस्वी ब्राह्मण के विरुद्ध उधार खाए बैठे थे, बस अंधेर आ गया। सब के सब ब्राह्मण भोजन खाने को तैयार थे, नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन परोसे जा चुके थे, सोने चांदी के बर्तन अपनी झलक दिखा रहे थे, ब्राह्मणों की शिखा खुल कर शिर की पिछली ओर पड़ रही थी, यज्ञोपवीत नंगे थे, धोतियां बन्धी थीं कि एकाएक सबके नेत्र दरवाजे की ओर उठ गये। राजकुमार सौमाल्य अपने साथियों के साथ इठलाते हुये चले आ रहे थे और आने के साथ ही न आगा देखा, न पीछा, विष्णु गुप्त को चोटी से पकड़ कर और आसन से उठा कर इन शब्दों के साथ एक चक्कर देकर धक्का दे दिया, "दुष्ट निर्लज्ज राज्य भवन में व्यासासन पर बैठता है, ज़रा सूरत तो बनवा आता।"

हा हन्त ! अन्धेर हो गया, भरी सभा में एक ब्राह्मण की, एक अद्वितीय विद्वान् की, यह दुर्दशा, सभा में भूचाल आ गया, ब्राह्मण सब के सब मानों एक ही तरंग से तरंगित होकर बिना भोजन किये उठ खड़े हुए। विष्णु गुप्त का शरीर थर्रा गया, नेत्र क्रोध से अंगारे हो गये, ब्रह्म तेज की अग्नि शरीर के रोम-रोम से निकलने लगी। इस समय उसकी जिह्वा पर यह शब्द थे :—

"पता लग गया, नन्द वंश के विनाश के दिन निकट आ गए, नौका पाप से भर गई, केवल एक ब्राह्मण का अपमान होना शेष था, वह भी हो गया। राज कर्मचारियो ! राजकुमारो !! सुन लो और सुनकर राजा को सुना दो, कि विष्णु गुप्त इस

शिखा को * उस समय बांधेगा जिस समय वह नन्द-वश को जड़-मूल से उखाड़ कर उसका नाम इस संसार से मिटा देगा। एक ब्राह्मण का निरादर करने वालो! कलियुग आ चुका है किन्तु अभी तक ब्राह्मणों के अन्दर से वह शक्ति नष्ट नहीं हुई जो राजाओं के सिंहासनों को कँपाकर पृथ्वी पर पटक देती थी। उस शक्ति के प्रगट करने का समय आ गया, जो कोई भी नन्द-वश को बचाना चाहता है बचाले, विष्णु गुप्त इसे विध्वंस करके शिखा बाधेगा, अन्यथा जलती हुई अग्नि में दग्ध होकर स्वयं भस्म सात् हो जायगा और भविष्य में चाणक † कहलाना छोड़ देगा।"

अत्यन्त आवेश में उसके मुखसे अधिक शब्द न निकल सके वह उसी दशा में जलता भुनता राज महल से बाहर निकल गया। उसके साथ ही शेष सब के सब ब्राह्मण भी उसी प्रकार भूखे उठ गये। इतने ब्राह्मणों को जिन्हें स्वयं निमंत्रित किया था, एक बारगी दंड देने, या पकड़ कर कैद कर देने से कदाचित् कोई भारी विपत्ति पड़ती, इस लिये किसी ने उनसे कुछ न कहा, परन्तु चारों ओर यह समाचार जंगल की आग की तरह बड़े वेग से फैल गया कि—

राजा का यज्ञ भङ्ग हो गया, राजवंश पर कोई भारी विपत्ति पड़ने वाली है।

---

* शिखा सन्ध्या समय गायत्री मंत्र से बांधी जाती है। विष्णु गुप्त का अभिप्राय यह था कि वह उस समय तक परमात्मा के चरणों में शिर न झुकायेगा जब तक अपनी कठिन प्रतिज्ञा को पूरा न कर लेगा।

† श्री विष्णु गुप्त के पिता का नाम चणक था इस लिये उसे चाणक कहा जाता है, इसका तीसरा नाम कौटिल्य है।

छठा परिच्छेद

चन्द्रभागा में तूफान

चन्द्रभागा नदी पूरे यौवन में ठाठें मार रही है। उसका चढ़ाव देखकर बड़े बड़े साहसी नाविकों का साहस भी ढीला हो रहा है, जल की एक एक तरङ्ग नौकाओं और नाविकों के लिये मृत्यु का सन्देश है, इसलिए किसी नाविक का साहस नहीं पड़ता कि नाव को नदी में डाले। जल किसी उन्मत्त जीव की भांति मुंह से फैन के दल-बादल उड़ा रहा है। जल के गर्भ में छिपी हुई शिलाओं के साथ तरंगें टकराती हैं और फैन उछालती हुई चली जाती हैं, दूर दूर तक जल ही जल दिखाई देता है।

सिकन्दर की सेना पूरे वेग में उमड़ती चली आ रही है। उसे पता मिला है कि गांधार देश का राजा अपनी सेना के चुने हुये सिपाहियों को साथ लेकर गंगापार उतर कर पाटलिपुत्र के महाराजा की शरण लेने के लिये रवाना हो गया है इसलिए उसका पीछा करने में यूनानी सेना अपनी सारी शक्ति खर्च कर रही है।

नदी के तट पर पहुंच कर आज्ञा दी कि जितनी भी नौकायें जहां से मिल सकती हों, इकट्ठी करली जायं। परन्तु नाविक लोग पहले ही उन्हें कहीं न कहीं छिपा कर भाग गये थे क्योंकि यवन राजा के आने की सूचना उन्हें इससे पहले किसी न किसी प्रकार से मिल चुकी थी। निरुपाय हो, आस-पास के वृक्षों को काट-छाँटकर झट पट अच्छी व बुरी जैसी भी नौकायें बनाई जा

सकती थीं बनायी गयीं। स्त्री बालक और निर्बल मनुष्यों को उसमें सवार किया गया और शेष सेना के एक बड़े भाग को मशकों पर नदी पार करने की आज्ञा दी गयी।

नौकायें जल में चली जा रही हैं परन्तु जल के वेग से कान पड़ा शब्द सुनाई नहीं देता। शाही मल्लाहों के भरसक यत्न करने पर भी जल की तरंगे उन्हें इधर से उधर और उधर से इधर उठाये लिये फिरतीं हैं। चन्द्रभागा नदी में साधारण अवस्था में आँगों जल का थाह नहीं होता, तो फिर इस अवस्था में जबकि नदी चढ़ाव पर है साधारण लकड़ी ठेले इसका क्या सामना करते। कई नौकायें जल में छिपी हुई चट्टानों से टकरा कर चकनाचूर हो गयीं। ओह! चीखते और चिल्लाते हुये बच्चों और स्त्रियों का करुण कोलाहल, जीवन के लिये संग्राम और जल रूपी राक्षस से युद्ध यह सब कुछ एक हृदय वेधक दृश्य था।

दूसरी ओर जल के रेले मशकों पर सवार तैराकों के नीचे से उनकी मशकें निकाले लिये जा रहे थे। घोड़े इस घबराहट की दशा में अलग शोर मचा रहे थे अर्थात् एक विचित्र करुणा जनक दृश्य था।

सहसा तीन चार नौकाए जल के वेग से नीचे को ढकेली जाती देख पड़ीं। आस-पास के गाँवों में से कई लोग यवन राजा के भय से भयभीत होते हुए भी उसकी सेना को नदी पार होते देखने चले आये थे। उन्होंने नौकाओं को इस प्रकार जल के वेग से बही जाती देखकर कोलाहल मचाया, क्योकि उनके सामने ही कुछ एक अत्यन्त भयानक चट्टानें थीं जिनके आस-पास भँवर पड़ रहा था।

परन्तु वेग इतना था कि नाविक लोगों का बल कोई काम न देता था और वे विवश होकर बांस हाथ से छोड़कर परमेश्वर के भरोसे खड़े हो गये थे।

एक नौका ज़ोर से चट्टानसे टकरायी और फिर बाण के समान तीक्ष्ण गति से सीधी जाकर भँवर में पड़ गई। दूसरी नौका के नाविकों ने इस भयंकर दृश्य को देखकर अपने आप को बचाने की चेष्टा की, परन्तु निष्फल। जल का प्रवाह उसे भी उसी तरह भँवर में ले गया। यही दशा तीसरी की और चौथी नौका की हुई।

अब यह सारी की सारी नौकाएं जल के भँवर में चक्कर काटती हुई तेजी से नीचे बैठी जा रहीं हैं। सवारियों के चेहरे पीले पड़ गये हैं और उन में से कई तो कूद कर तैरने का यत्न करने लगे हैं।

भय बढ़ गया, पहली दो नौकाएं जल में डूब गई, जल के तल पर कुछ बुलबुले दिखाई दिये, परन्तु थोड़ी देर पीछे सिवा उन मृतक शवों के जिन्हें जल ने अपने से हल्का जानकर अपनी छाती पर उठा लिया था, कुछ न था।

तीसरी और चौथी नौका ने भँवर में निकलने के लिए बहुतेरे हाथ पांव मारे परन्तु चट्टान की टक्कर ने उनके तख़्ते चीर डाले थे और जल बड़े वेग से उनके अन्दर चढ़ा चला आता था। नौकाओं के अन्दर सारे हाथ उस जल को बाहर फेंकने में लग रहे थे। आह! उस समय नीच-ऊंच का भाव मिट रहा था, प्यारे और मीठे जीवन के लिये अधिकार, पदवी और उपाधि सब भूल रहे थे! परन्तु एक क्षण में जितना जल बाहर निकलता था उनसे कहीं अधिक जल अन्दर आ जाता था!

सामने तीर पर खड़े लोगों की आँखें उस समय उन नौकाओं पर लग रहीं थीं, परन्तु किसी का साहस न था कि सहायता को पहुंचे। एकाएक उन लोगों की पंक्ति में से एक नवयुवक जो इस समय तक आंखों को हाथ की ओट में किये बड़े ध्यान से

नौकाओं की ओर देख रहा था, यह शब्द कहता हुआ नदी में कूद गया :—

नवयुवक—भारत वासियो ! क्या भारत भूमि में परदेशी लोग इस प्रकार नष्ट हो जायेंगे, किन्तु कोई हाथ उनकी सहायता को न उठेगा ? माना कि वे लोग हमारे शत्रु हैं परन्तु इस समय विपत्ति में पड़ रहे हैं और विपत्तिग्रस्त की सहायता करना अपना धर्म................."

नवयुवक के शब्द और उसके इस भीषण उद्योग ने लोगों में एक विशेष भाव का संचार कर दिया और यद्यपि बहुत से लोग अपने आप को संकट में डालने को उद्यत न थे क्योंकि पराई आग में कूदना सहज काम नहीं होता तो भी कई एक गरम खून वाले नवयुवकों ने विपत्तिग्रस्तों की सहायता के लिये अपने आप को नदी में डाल दिया।

विपद्ग्रस्तों की सहायक यह मण्डली जल के साथ संग्राम करती चली जा रही थी। जल के थपेड़े उनके सिर और मुंह तक को अपने गर्भ में लेकर उनकी सूरतों को कई बार दृष्टि से ओझल कर देते थे, परन्तु फिर भी वे साहस के साथ बढ़े चले जाते थे। इतने में सहसा जल के एक प्रबल धक्के ने इन नौकाओं को भंवर से निकाल दिया परन्तु टूटी हुई नौकाए धक्के को जिसको उस समय तरंग ने देदिया था, संभालने के योग्य न थी, इसलिये भंवर से निकल कर क्षणमात्र में जल में डूबती हुई दिखाई दीं।

नवयुवक ज़ोर से हाथ मारने लगे। इस समय तक वह नवयुवक जो सबसे पहले जल में कूदा था, इनके निकट पहुंच चुका था। उसकी दृष्टि इस समय तक एक नौका में एक विशेष स्थान पर लग रही थी, वह जानता था कि यह नौका अब अधिक समय तक जल का मुकाबला नहीं कर सकेगी, इसलिये उसकी सारी

चेष्टा यह थी कि किसी प्रकार उसके डूबने से पहले उस तक पहुंच जाय।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे जो संग्राम करना पड़ा जिस प्रकार जल के थपेड़ों से युद्ध करना पड़ा, उसे देखते हुए कहना पड़ता है कि आज इसके अन्दर वह शक्ति विद्यमान थी जो सामान्य दशा में मनुष्य के अन्दर नहीं हुआ करती।

बड़े यत्नों से वह नौका के निकट पहुंचा, नौका के समग्र यात्रियों की आंखें उसकी ओर थीं कि जल का धक्का फिर इसे पीछे बहा ले गया।

वीर साहसी ने दूसरी बार फिर प्रयत्न किया और अब उसका हाथ नौका की बांहीं पर जा पड़ा। दूसरे क्षण में वह सिरसे पांव तक भीगा नौका पर खड़ा हुआ कह रहा था:—

"श्रीमानो! नौका अब संकट से बाहर है परन्तु इसके दिन पूरे हो चुके हैं और वह कुछ ही क्षणों में डूबने वाली है, इस लिये जो लोग, चाहें वह स्त्री हैं या पुरुष, तैरना जानते हैं, जल में कूद चलें, किनारा दूर नहीं है और सहायता के लिये लोग आ रहे हैं, हल्की होने पर नौका कदाचित् बच सके।"

इसके इन शब्दों पर सब के सब सवार एक दूसरे की ओर देखने लगे, नवयुवक ने उन्हें हिचकिचाता देखकर फिर जोर से कहा:—

"श्रीमानो! समय सोचने का नहीं है, यदि जीना चाहते हो तो जल में कूदो अन्यथा जल स्वयं तुमको अपने अन्दर ले जाने के लिये आ रहा है, मैं फिर कहता हूं, सहायता आ रही है और जल में कूदने वाले अपने जीवन बचा लेंगे।"

झिझकते हुये यात्री जल में कूदने लगे। हा! अविनाशी आत्मा इस नश्वर शरीर से कितना प्यार करता है! इससे वियुक्त होते समय उसे कितना दुःख होता है!!

अब नौका पहले की अपेक्षा हल्की थी क्योंकि उस में नाविकों के अतिरिक्त केवल स्त्रियां और बच्चे रह गये थे। नवयुवक ने नाविकों को संकेत किया कि नौका को सीधा तीर की ओर कर दें, क्योंकि इस ओर सुगमता से सहायता मिल रही थी।

सहसा एक ओर से पुकार आयी "वृषल ! तुम यहां ?"

"हां रुक्शाना, वृषल यहां।"

"अपने आपको इस प्रकार संकट में क्यों डाला ?"

वृषल—क्योंकि यह क्षत्रिय का धर्म है।

रुक्शाना—लेकिन हम सब तुम्हारे दुश्मन हैं, तुम्हारे मुल्क के दुश्मन हैं।

वृषल—हुआ करो ! क्षत्रिय निर्बल और निर्दोष की रक्षा के लिये उत्पन्न किया गया है, इसे शरीर केवल इसी उद्देश्य के लिये दिया गया है कि वह निर्बलों की रक्षा करे।

नौका फिर चक्कर काटने लगी, अब वह शनैः शनैः डूब रही थी।

वृषल ने सब को जल में कूद जाने को संकेत किया क्योंकि शेष नवयुवक निकट पहुँच गये थे। सबने आज्ञा का पालन किया; परन्तु एक स्त्री थी जो इस आज्ञा को अस्वीकार कर रही थी और वह रुक्शाना थी।

वृषल—(आश्चर्य से) रुक्शाना ! तुम अभी तक यहां खड़ी हो, कूदती क्यों नहीं ? क्या नौका के साथ ही जलमें जाओगी ?

रुक्शाना—(निर्भयता से) हाँ ! अगर मेरा प्रेमी नौका के साथ पानी में जायगा तो मेरे उसके साथ जानेमें क्या हानि है ?

वृषल—पागल हो रही हो क्या ? देखती नहीं, पानी मेरे विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगा करके हार चुका है, वह मुझे डुबा नहीं सकता।

रुक्शाना—और इस समय तक वह मुझे भी डुबाने में सफल नहीं हुआ।

वृषल—हठीली लड़की! समय थोड़ा है, यदि मैं तुम्हारा जीवन बचाने में सफल न हुआ तो याद रख, जीता बचकर न जाऊंगा।

रुक्शाना—मेरा जीवन तुम्हारे जीवन से अधिक मूल्यवान नहीं। वृषल! क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे जीवन के सामने एक स्त्री का जीवन अधिक मूल्यवान है? अब तो अगर जीवित रहना है तो भी तुम्हारे साथ और मरना है तो भी तुम्हारे साथ!

इस समय नौका वेग से नीचे जाती हुई जान पड़ी। वृषल ने शीघ्रता से रुक्शाना को कमर से पड़कर उठा लिया और जल में कूद गया। रुक्शाना के सफेद कोमल हाथ उसके गले में थे और वह एक हाथ से जल को हटाता तीरकी ओर बढ़ा चला जा रहा था। आह! उस समय उस ठण्डे जल के अन्दर उसके शरीर में एक गर्मी सी उत्पन्न हो रही थी जिसने उसके अन्दर एक अकथनीय सुख का संचार कर दिया। वह जलके साथ संग्राम कर रहा था, परन्तु समझता था कि यह जल उसका शत्रु नहीं वरन् एक प्रिय मित्र है जिसे वह हाथ के संकेत से रास्ता छोड़ने को कह रहा है। "जीवित रहना है तो तुम्हारे साथ" यह वाक्य उसके कानों में बराबर गूंज रहा है। जल का वेग उसे सोचने का समय नहीं देता परन्तु उसका वह हाथ जो रुक्शाना की कमर के साथ लिपट कर उसे थामे है, बार बार इस कोमल शरीर को खींचने की चेष्टा करता है। इधर रुक्शाना के हाथ भी किसी अदृश्य शक्ति से खिचे जाकर अधिकाधिक शक्ति से उसके गले में लिपट रहे हैं। तीर निकट आ रहा है परन्तु

कदाचिन् उन दोनों नवयुवकों के लिये अब इसका निकट आना सुख का कारण नहीं रहा। परन्तु नहीं, वृषल अपने आपको जल्दी से संभालकर तट पर रुक्शाना को रक्षकों के हाथ सौंप कर अन्य विपद्ग्रस्तों की सहायता के लिये फिर नदी में कूद गया।

सातवां परिच्छेद

परीक्षा की घड़ी

"रुक्शाना ! रुक्शाना ! क्या सचमुच हम 'जीवित रहेंगे तो इकट्ठे और मरेंगे तो इकट्ठे' यह वाक्य भविष्यद्वाणी समझूं या इसे उस समय के लिये ही कहा गया था। क्या वास्तव में हमारा जन्म एक दूसरे के लिये हुआ है? नहीं, यह सम्भव नहीं है, भारत और यवन देश का क्या सम्बन्ध? हम इस समय बिल्कुल एक दूसरे के विरुद्ध खड़े हैं। हमारा मिलाप क्या अर्थ रखता है? और क्योंकर सम्भव हो सकता है? तो मुझे क्या करना चाहिये, इस विचार को हृदय से निकाल देना चाहिए? निस्सन्देह यह कह देना बड़ा सहज है, और इसके कहने वाले भी बहुत हैं, परन्तु क्या वे जानते हैं कि इस कहने को कार्य्यरूप में परिवर्तन करना क्या अर्थ रखता है।

हां, तो फिर मेरे लिये कौनसा रास्ता खुला है। क्या मेरा और रुक्शाना का मिलाप हो सकता है? हाँ, हो सकता है और इसका एक उपाय है। (नाक भौं चढ़ाकर) क्या मैं क्षत्रिय होकर यह कर्म करूंगा? क्या जिस अपराध के लिये मैं दूसरों को अपराधी ठहराता रहा हूँ उसी को स्वयं करूंगा? नहीं, नहीं, यह सिर कट कर भूमि पर गिर जायगा, उससे पहले कि भारत के किसी शत्रु के सन्मुख झुके, इससे पहले कि अपने देश से विश्वास घात करे।

तो फिर ? हां फिर क्या ? वृषल हृदय के लिये शिर की बलि नहीं चढ़ाएगा, प्रेम के अर्थ कर्त्तव्य की अवहेलना नहीं करेगा। ऐसा करना उसकी सामर्थ्य से बाहर है, ऐसा करना अपने धर्म से पतित होना है, और यदि मैं ऐसा करूँ तो क्या मेरा ही मन मेरी भर्त्सना न करेगा ? करेगा, अवश्य करेगा। मैं अपने मन को जानता हूँ। यह उन दुमुखिये राजाओं का मन नहीं जो अपने क्षात्र धर्म को लाज लगा कर भी सन्तोष से बैठ सकते हैं। यह मेरे जीवन को किरकिरा कर देगा, मुझे अपनी दृष्टि से गिरा देगा, मुझे सदैव नीचा दिखाता रहेगा।

तो हां ! कर्तव्य, कर्तव्य, कर्तव्य, यही मेरे जीवन का लक्ष्य रहेगा। रुक्शाना ! रुक्शाना ! तुम्हारा विचार पीछे उत्पन्न हुआ है, कर्तव्य के विचार ने शरीर के साथ जन्म लिया है, नहीं, नहीं यह आत्मा का एक अंश है, इस लिये इसका पल्ला भारी रहेगा। रुक्शाना ! प्यारी रुक्शाना ! विदा ! वृपल वह कर्म करने को उद्यत नहीं हो सकता जो उसे उसकी अपनी दृष्टि में गिरा दे, भारत इस समय अश्रुपरिप्लुत नेत्रों से उसकी ओर एकटक देख रहा है, वह उसकी प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सकता। इस पुण्य भूमि में अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं, उन्हें मिटाना है। भारत को यवनों के पंजे से छुड़ाना है और यह वह काम है जिसके लिये अनेक मनुष्यों की आवश्यकता है।

इस लिये रुक्शाना ! एक बार फिर कहता हूँ, विदा ! सम्भव है वह जगदीश्वर कोई उपाय बना दे, अन्यथा अगले जन्म में मिलेंगे, उस समय तक विदा !

देवी ! मैं जानता हूं, सिकन्दर के मन में भारत को विजय करने की लालसा है, वह जिधर जाता है लोग उसके सन्मुख ऐसे झुक जाते हैं जैसे आंधी के सामने नदी के तीर पर उगी

हुई कांस। यदि एक बार वह पंचनद की सीमा को पार कर गया तो भारत के लिये कोई आशा न रहेगी, इस लिये यदि उसे रोका जा सकता है तो इसी देश में। पचनद की भूमि में कितनी जातियां हैं जिनके अन्दर क्षत्रियों की आन अभी तक विद्यमान है। उन्हें यदि एक बार अपना कर्त्तव्य सुझाया जाय तो वह एक भयंकर शक्ति सिद्ध हो सकती है, उन्हें वास्तविक रहस्य से सावधान करना है।

जीवन स्वल्प और कार्य्य महान्, इस लिये प्रिये! अनुज्ञा दो ताकि मैं उस ऋण से उऋण हो जाऊं जो मेरी मातृ भूमि ने मेरे सिर पर रखा है। हम मिलेंगे, निस्सन्देह। यदि हमारा प्रेम सच्चा है तो संसार की कोई शक्ति हमारे प्रेम-पथ में बाधक नहीं हो सकती, इस जन्म में, अगले जन्म में, उससे अगले जन्म में, मिलकर रहेंगे। अनादि और अनन्त आत्मा के लिये काल और देश की कोई मर्य्यादा नहीं, काल और देश उसके सन्मुख कोई रुकावट नहीं?"

यह विचार थे जो पिछले परिच्छेद में वर्णन की हुई घटनाओं के पश्चात् अकेले जंगल में बैठे हुए वृषल के मस्तिष्क में फिर रहे थे। इस समय उसके जीवन में वही समय आ चुका था जो महाभारत के महा युद्ध के आदि में अर्जुन पर आया था, क्योंकि उस समय उसके सन्मुख भी ठीक इसी प्रकार एक ओर प्रेम था और दूसरी ओर कर्तव्य। प्रेम को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेने में उसे केवल थोड़े से त्याग की आवश्यकता थी और वह सम्पूर्ण सांसारिक सुखों से भरपूर हो सकता था, परन्तु परमात्मा ने उसे किसी और कार्य के लिये जन्म दिया था, इस लिये उसने अपने से सहस्रों वर्ष पश्चात् आने वाले वीर प्रताप की नाईं प्रेयस-मार्गको लात मार कर कर्त्तव्य का विकट मार्ग अङ्गीकार कर लिया, यह परीक्षा की घड़ी थी, यह परख का समय था

जिसमें अचल और सुरक्षित रहने के लिये भक्त मसीह ने भी परमपिता से प्रार्थना की थी, परन्तु जो उसकी प्रार्थना करने पर भी प्रायः प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आया करती है, उसमें सफलता व असफलता से पार होना ही महान् पुरुषों की कसौटी है।

आठवां परिच्छेद

रुक्शाना की प्रार्थना

जल के प्रबल धक्के, प्राणों का भय, मृत्युका आतंक और अन्तिम समय में वृषलका इस प्रकार पहुंचकर जीवन बचाना, यह सारी बातें बिचारी रुक्शाना की सहन-शक्ति के बाहर थीं। उसका कोमल हृदय एक के पीछे दूसरी होने वाली इन घटनाओं के भार को सहन करने के योग्य न था। यही कारण था कि वह जल से निकलने से पहले ही बेसुध हो चुकी थी। वृषल जानता था कि उसका जीवन अब खतरे से बाहर है, इसलिये इधर से निश्चिन्त होकर वह दूसरी बार जल में कूदा था। उसके पश्चात् विपद्ग्रस्तों के प्राण बचाने के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर उसे उधर जाने का अवसर नहीं मिला था और अन्त में जब उसे काम से अवकाश मिला तो रुक्शाना अपने शिविर में पहुंच चुकी थी। उसका वहां जाना उसके लिये भय से खाली न था, इसलिये वह उस भयानक दुर्घटना के स्थान से अलग होकर अपने मित्रों में चला गया था। इधर शिविर में पहुंचकर रुक्शाना को जब होश आया, तो पहला वाक्य जो उसके होंठों से निकला यह था—'वह कहां है'। उसे चैतन्य में देखकर नौकर चाकरों की बाछें खिल गयीं, सैल्यूकस को तत्काल सूचना दी गयी क्योंकि वह पल पल के समाचार पूछ रहा था।

सैल्यूकस—कहो बेटी क्या बात है ?

रुक्शाना—वह कहां है ?

सैल्यूकस—कौन, वह कौन ?

रुक्शाना—तो क्या यह स्वप्न था ? क्या मैं ख़्वाब देख रही थी ?

सैल्यूकस—नहीं बेटी, ख़्वाब कैसा ? नदी को पार करते समय तुम्हारी नौका डूब रही थी, बारे खुदा ने मेहरबानी की, कि किसी नामालूम शख्स की मेहरबानी से तुम्हारी ज़िन्दगी बच गयी।

रुक्शाना—शुक्र है वह ख्वाब नहीं था। अब्बाजान क्या सचमुच आपको यह मालूम नहीं हो सका कि मेरी जान बचाने वाला कौन था ?

सैल्यूकस—बेटी अगर मुझे पता होता तो इस वक्त तक मैं उसके अहसान से सुबकदोश न हो गया होता।

रुक्शाना—अब्बाजान ! अफसोस, कि आप उसके ऐहसान का बदला न कभी दे सकते हैं और न दे सकेंगे। क्योंकि वह वह शख्श है जो हमें दूध पिलाता है लेकिन जिसे हम डंक मारते हैं, जिसने पहले मेरी ज़िन्दगी बचाई थी और बादशाह के हुजूर से ज़लील हुआ था और जिसने अब मेरी जान बचायी है मेरी ही नहीं बल्कि कई लोगों की जानें अपनी जान को ख़तरे में डालकर बचाई हैं। लेकिन उसका बदला यह है कि उसे मालूम नहीं कहाँ छिपकर जान बचानी पड़ी है।

सैल्यूकस—तो क्या इसके मानी यह हैं कि दूसरी बार तुम्हारी ज़िन्दगी के लिए मैं वृषल का शरमिन्दाए-अहसान हूं।

रुक्शाना—बिलकुल यही।

सैल्यूकस—बिलाशुबह हमारी तरफ से उसके साथ सख्त जुल्म किया गया है, क्योंकि उस रोज मैं उसे बादशाह के हुजूर में न लेजाता तो उसकी खुद्दारी को सदमा न पहुँचता। शाहंशाह ने उसकी क़द्रोमञ्जलत को नहीं पहचाना वर्ना यह

मुमकिन नहीं था कि उससे वह ग़लती सरज़द होती। वृषल हमारा दुश्मन है और शायद बहुत सख़्त दुश्मन है; लेकिन उस दुश्मनी के लिए मैं उसे कोई इलज़ाम नहीं देता, अपने वतन की मुहब्बत यक़ीनन कोई जुर्म नहीं और अगर मेरे मुल्क पर कोई इस क़िस्मका फ़ातह कभी हमला करने की कोशिश करे, जिस क़िस्म का हमारा शाहंशाह है तो बिलाशुबह मैं पहला शख़्स हूँगा जो वृषल की मिसाल की पैरवी करने को तैयार हूंगा, मगर बावजूद दुश्मन होने के उस में एक वस्फ़ है जिसकी शायद हम लोगों में कमी है, और वह यह है कि वह एक बाअसूल दुश्मन है।

रुक्शाना—अब्बाजान! जब आप यह तस्लीम करते हैं, तो क्या एक ऐसे मुल्क को तबाह और बर्बाद कर देना नेकी का काम है, जो इस किस्म के इन्सान पैदा कर सकता है, जिसने कभी हमें दुःख नहीं दिया, जिसे हमसे कोई अनाद नहीं।

सैल्यूकस—बेटी! इसमें हमारी मर्ज़ी को कहां दख़ल है? शांहशाह की मर्ज़ी हमारे लिये क़ानून है।

रुक्शाना—शाहंशाह को तो फ़तेह-आलम की हवस है और उस हवस के पूरा करने में उसे किसी बात की पर्वाह नहीं, लेकिन क्या आप उसे सलाह नहीं दे सकते? आप शांहशाह के दस्ते-रास्त हैं, यक़ीनन वे आपके कहे को आम लोगों के कहे की तरह सुना अनसुना नहीं करेंगे।

सैल्यूकस—बेटी! बिना पूछे सलाह देना बेवक़ूफ़ी है।

रुक्शाना—लेकिन जहां ख़ल्के ख़ुदा की बेहतरी का सवाल हो वहां शायद ऐसी बेवक़ूफ़ी अक्लमंदी से बेहतर है।

सैल्यूकस—लश्कर में भी जहां तक मैंने सुना है यह ख़्याल ज़ोर पकड़ रहा है, लोगों को वतन छोड़े कई साल हो चुके हैं और वह वतन को वापस जाने के लिये घबरा रहे हैं।

रुक्शाना—तो फिर आप उनके ख़यालात की तर्जमानी क्यों नहीं करते।

सैल्यूकस—सुल्तान की राय के ख़िलाफ़ कहना अपनी जान के ख़िलाफ़ कहना है।

रुक्शाना—लेकिन क्या जान हमेशा इतनी ही क़ीमती होती है ?

सैल्यूकस—बेटी ! आज तुम्हें क्या हो गया है, तुम क्यों इस अम्र पर इतना इसरार कर रही हो ?

रुक्शाना—महज़ इसलिये कि हमारा मोहसन सिर्फ़ इसी लिये हमारा मुख़ालिफ़ है, महज़ इसलिये कि इसने अपनी क़ीमती ज़िन्दगी को महज़ इसलिये मिट्टी में मिला रखा है और महज़ इसलिये कि हमारी ज़िन्दगी उसकी ज़िन्दगी का अतिया है।

सैल्यूकस—अच्छा बेटी ! तुम जीती मैं हारा, मौका पड़े पर शाहंशाह से इसका तज़करा करूंगा, आगे जो करे मौला।

नवां परिच्छेद

वृषल की वक्तृता

पंचनद के निवासियों से सांगला का नाम भूला हुआ नहीं हो सकता। आजसे कुछ वर्ष पूर्व यह केवल एक अप्रसिद्ध स्थान था यद्यपि किसी समय में यह एक विचित्र सजधज और ऐश्वर्य्य से भरपूर था जिसके बराबर भारत वर्ष में बहुत थोड़े नगर होंगे।

हमारी कथा के समय में यह एक भारी दुर्ग था, जिसके एक ओर सांगला की पहाड़ी और दूसरी ओर दलदल ने इसे अजेय बना रखा था, परन्तु इसकी सबसे अधिक दृढ़ता कदाचित् उस जाति के कारण थी जिसने इसे अपनी राजधानी बना रखा था। पंचनद के बार के इलाके की भीषण गर्मियों ने जिसके अन्दर यह दुर्ग बना है काठी राजपूतों की दिगन्तव्यापिनी वीरता साहस और पराक्रम के साथ मिलकर इसे वह शक्ति दे रखी थी जो रूस जापान के युद्ध से पहले पोर्ट आर्थर को प्राप्त थी।

काठी जाति के क्षत्रिय किसी राजा के आधीन रहना अपने क्षात्र धर्म के लिये कलंक का कारण समझते थे! यही कारण था कि उनके देश का प्रबन्ध प्रजासत्तात्मक राज्य के ढंग पर जाति के वृद्धों की एक सभा के आधीन था जिसके मेम्बर देहाती और कसबाती पंचायातों के मुखिया होते थे। इन पंचों के शासन में देश का प्रबंध ऐसी सुन्दरता से होता था कि किसी ओर से कोई शिकायत सुनाई न देती थी। देश का एक एक बच्चा अपने कष्ट को

अपने अपने मुखियों के पास कह सकता था, जो इनके अन्दर रहता हुआ, इनमें से एक होता हुआ इनके दुख दर्द का साथी हुआ करता था और इस प्रकार जाति के प्रत्येक जन की आवाज़ बिना किसी कष्ट के देश की सबसे बड़ी सभा तक पहुंच जाती थी।

देश को किसी बाहर के शत्रु से भय होने पर ऐसे प्रत्येक मुखिया को केवल अपने अपने दल के लोगों तक समाचार पहुंचाना होता था और सहस्त्रों शस्त्र धारी हलों को छोड़ छोड़कर देश के झण्डे तले पहुंच जाते थे।

किसी नये नियम को देश में प्रचलित करना होता था तो यही मुखिया बड़ी सुगमता से उसे स्त्रियों तक को समझा कर उन्हें इसके लाभ बतला देते थे।

देश का कर इकट्ठा करना इन्हीं पंचों का कर्तव्य था।

इस रीति से गवर्नमेन्ट की मशीनरी सहज ही में अपना काम किये जा रही थी कि एकाएक सारे देश में यह समाचार जंगल की आग की तरह फैल गया कि जातियों की स्वाधीनता का एक शत्रु भारत वर्ष में आया है और उसकी आंख सांगला पर है।

इस समाचार का फैलना था कि वीर राजपूतों के खड्ग म्यानों में तड़पने लगे। तुरंत पंचायत बुलाई गई, आस-पास के ग्रामों और नगरों से पञ्च इकट्ठे होकर आने लगे। देश और जाति को खतरे में देखकर बड़े बड़े बूढ़े पंचों की आज्ञा के लिये उत्सुक हुये तलवारों को साफ़ करने लगे।

× × × ×

पंचायत सजी हुई है, छोटे बड़े सब नवयुवक वक्ता के मुंह की ओर निहार रहे हैं, जिससे प्रायः सबके सब अपरिचित प्रतीत होते हैं। नवयुवक कह रहा है:—

"पूजनीय वृद्धो तथा क्षत्रिय कुल भूषणो!

अपनी जातीय सभा में मुझे वक्तृता करने के लिये खड़ा देखकर कदाचित् आप सबके मन में नाना प्रकार की कल्पनायें उठती होंगी, क्योंकि मैं आपसे अपरिचित ही नहीं हूं वरन् आप सब लोगों से अल्पवयस्क भी हूं इसलिये मेरा आपकी सभा में बोलना शोभा नहीं देता, परन्तु सौभाग्य कहो वा दुर्भाग्य से मुझे भारतवर्ष की स्वतंत्रता के शत्रु के दर्शनों का सुयोग मिल चुका है और मैं अभी अभी उसे चन्द्रभागा को पार करते देख आया हूं। इस कारण आपकी रज्यसभा के अधिकारियों ने मुझे आपके सन्मुख खड़े होने की आज्ञा दे दी है।

मुझे कदाचित् यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरे जीवन का उद्देश्य भारत को उसके शत्रुओं के पंजे से मुक्त करना है, वे शत्रु उसके अन्दर से उत्पन्न हुये हों अथवा बाहर से आये हों। भारत की प्रजा को उनके अत्याचारों से बचाना मेरा कर्तव्य है और इसी पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये मैं भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण कर चुका हूं और कर रहा हूं। मेरे पूजनीय वृद्धो! क्या आपने वृषल का नाम सुना है? यदि सुना है तो कदाचित् आप उन खतरों को भी जानते होंगे जो उसने और उसके वीर साथियों ने इस पवित्र उद्देश्य को पूरा करने के लिये सहन किया है।"

"वृषल......वृषल........ क्या यह वही पवित्र आत्मा है जिसके साखे बच्चा बच्चा गा रहा है।?" सुनने वालों की जिह्वा पर यह शब्द फिरने लगे।

"सज्जनों! मैंने यह इसलिये नहीं कहा कि मैं आपके मुख से प्रशंसा सुनना चाहता हूं, प्रत्युत केवल इसलिये कि इस प्रकार के आवश्यक विषयों में आपका विश्वास पात्र बन सकूं। वृद्धजनों! मैं तक्षकशिला में आपके देश के शत्रु से भेंट कर चुका हूं और उस से दो बातें भी कर चुका हूं। इस मिलाप में मैंने

जो परिणाम निकाला है वह यह है कि वह चक्रवर्ती राजा बनना चाहता है और इस उद्देश्य की पूर्ति में वह उचित अनुचित सब प्रकार के साधनों का प्रयोग करेगा।

उसकी सेना उसका बल है जिस बल के आधार पर उसने भारत की सीमा को पार किया है और उसे अपने वश में रखने के लिये उसे सब प्रकार की स्वतन्त्रता दे रखी है।

जिस स्थान से उसकी सेना गुजरती है आस-पास मीलों तक के लोग निर्धन निस्सहाय और निराश्रय हो जाते हैं। लोगों की बहू-बेटियों का सतीत्व उन जङ्गली सैनिकों की दया पर (जिस दया को वे जानते ही नहीं) निर्भर हो जाता है।

मशाका के वीरों को जिस प्रकार अभयदान देकर उसने तलवार के घाट उतारा उसका वर्णन करते हुए मेरा रक्त जोश मारने लग जाता है और कदाचित् कोई भी क्षत्रिय ऐसा नहीं होगा जो ठण्डे दिल से इसे सुन सके। इसलिये मैं इसका कथन नहीं करूंगा। तक्षकशिला में उसके सिपाहियों ने जो जो अत्याचार किये उनको मैंने अपने नेत्रों से देखा है। उस सच्चे क्षत्रिय पौरुष की जिस प्रकार कमर तोड़ी गई जिसने भीषण कठिनाइयों को सहते हुये भी इस यवन राजा को बता दिया कि भारत के क्षत्रिय किस मिट्टी से बने हैं, उसका वृत्तान्त भी आप सुन चुके हैं।

क्षत्रियो! हमारा दुर्भाग्य है कि यह वीर क्षत्रिय—"रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय वरु बचन न जाई" के अनुसार बचनों के तागे से बंधा हुआ और उस यवन राजा के उपकारों के नीचे दबकर अपना अस्तित्व खो बैठा है।

अब देश हितैषियों की आंखें तुम पर हैं, अलक्षेन्द्र इस बात से अनभिज्ञ नहीं; इसलिये वह तुम्हारी स्वतन्त्रता का अन्त

करने के लिये चला आता है और कदाचित् थोड़े दिनों में यहां पहुंच जाने वाला है।

देश भक्तो! क्या आप अपनी स्वतन्त्रता को खोना पसन्द करते हैं? क्या इन पवित्र क्षेत्रों को यवनों के हाथ में अर्पण करने को उद्यत हैं? नहीं नहीं, क्षत्रियों का रक्त अभी ठण्डा नहीं हुआ, अभी दधीचि की संतान जीवित जाग्रत है जिसने बुढ़ापे में अपनी हड्डियां तक दे दीं परन्तु देश व जाति को उभार लिया।

हां क्षत्रियो! मुझे आपकी वीरता पर विश्वास है, मुझे आपके शौर्य और पराक्रम पर भरोसा है, परन्तु...आपको इस बात से सावधान करना मेरा धर्म है कि आपका संग्राम संसार के सबसे बड़े सेनाधिपति के साथ है जिसने देश-देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में अपनी रणकुशलता का सिक्का बैठा दिया है।

आप कदाचित् यह समझते होंगे और ऐसा समझना उचित भी है कि आपका यह दुर्ग अजेय और अभेद्य है जिसे महाराज पौरुप और महाराज अभिसार की मिश्रित सेनायें भी विजय नहीं कर सकीं थीं, परन्तु इतने पर ही आपको संतुष्ट रहना उचित नहीं, क्योंकि आपको स्मरण रखना चाहिए कि इस समय जहां आपके विरुद्ध पौरुप और अभिसार की सेनायें आरहीं हैं, वहां उनके साथ वह शूरवीर भी है जिसने रानी शिला के अभेद्य दुर्ग को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था।

वृद्ध जनों! मैं सब कुछ आपको डराने और भयभीत करने के लिये नहीं कह रहा हूं, क्योंकि मैं जानता हूं क्षत्रिय भय को जानते ही नहीं, परन्तु मैं अनुभव और बड़े तीक्ष्ण अनुभव के आधार पर यह जानता हूं कि भारत की भूमि ने जहां दधीचि जैसे देशहितैपी उत्पन्न किये हैं वहां अम्भी जैसे देशघातकों ने भी इसी पवित्र रज से जन्म लिया है और यह आप जानते ही हैं

कि जब लङ्का जैसा दृढ़ दुर्ग एक विभीषण के द्रोह से सुरक्षित न रह सका तो सांगला की स्थिति ही क्या ।

सज्जनों ! मेरे साथी हथेली पर सिर रखे यवन सेना में फिर रहे हैं और मैं तुम्हें घटनाओं के आधार पर यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि तुम्हारे यहाँ के सम्पूर्ण समाचार अलक्षेन्द्र तक पहुंचते हैं, जिनसे वह लाभ उठा रहा है ।

इसलिये मैं आपसे यह प्रार्थना करूंगा कि आप अपने अन्दर के शत्रुओं का भी पता लगायें, ऐसा न हो कि बना बनाया खेल बिगड़ जाय ।

एक बात और, वह यह कि इस समय आप और आपके पड़ोसी मालव और क्षुद्रक ब्रह्मा, विष्णु और महेश के समान तीन प्रबल शक्तियां हैं और भारत के सौभाग्य से यदि यह तीनों मिल जांय तो संसार को हिला सकती हैं । परन्तु हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि यह तीनों शक्तियां बिखर बिखर कर एक दूसरी का बल तोड़ रही हैं । क्या कौरव और पाण्डव एक सम्मिलित शत्रु के सन्मुख भाई भाई नहीं बन सकते ? या कथा के सिंह की नाईं अलक्षेन्द्र उन्हें अलग अलग फाड़ कर खा जायगा ? वृद्ध पुरुषो ! कदाचित् आप उस भय का अनुभव नहीं करते, जो आने वाला है । परन्तु मैं जो उसके अन्दर और बाहर घूम रहा हूं उसे प्रत्यक्ष देख रहा हूं । मुझे भारत की स्वतन्त्रता लुप्त होती देख पड़ती है । मैं स्वप्न में, हाँ जागृत अवस्था के स्वप्न में, देश के उस कोने से इस कोने तक यवन-पताका लहराती हुई देखता हूं और चौंक पड़ता हूं । क्या आप उस भय को उसके वास्तविक रूप में नहीं देखेंगे ? क्या आप सम्मिलित जातीय शत्रु के साथ युद्ध करने में अपने साधारण भेद भाव को भुला कर एक नहीं होंगे ?

वृद्ध पुरुषो ! इस समय मैं सीधा मालव लोगों के देश की

ओर जा रहा हूँ। उन्हें इस भय से सावधान करूंगा और उनसे भी यही प्रार्थना करूंगा जो आपसे की है, यदि भारत के दुर्भाग्य के दिन सचमुच नहीं आ गये तो मेरी यह प्रार्थना सुनने वाले कानों पर पड़ेगी, अन्यथा विधाता के लिखे को टालना मनुष्य की शक्ति से बाहर है !"

वृषल की वक्तृता ने क्षत्रियों के शरीर में आग सी लगा दी। सैकड़ों तलवारें शत्रु को कुचलने के लिये म्यान में झनझनाने लगीं और थोड़े से विचार के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि देश में युद्ध की दशा की घोषणा कर दी जावे और सब के सब शस्त्रधारी जातीय पताका के नीचे अपने आपको बलिदान करने को एकत्र हो जायं।

दसवां परिच्छेद

साकल-पतन

दूर तक जिधर दृष्टि जाती है, खेमों का एक नगर बस रहा है। इस निर्जन वन में जहां कोसों तक बस्ती का नामो-निशान नहीं था, नगर सा बसा हुआ दिखाई देता है। यह यवन-सैन्यदल है जो सांगला के चहुं ओर घेरा डाले पड़ा है। नगर वासी लोग अत्यन्त कष्ट के साथ दुर्ग के अन्दर रहने पर विवश हुए हैं, वे वहां बैठ कर शत्रु के साथ निःशंक होकर संग्राम करेंगे।

परन्तु एक घटना ने उनके साहस को तोड़ दिया है और वह यह कि सिकन्दर ने अपनी असाधाणर रण कुशलता से पीने के पानी वाली झील पर अधिकार जमा रखा है और नगर वासियों में से कोई भी प्राणों को संकट में डाले बिना वहां तक नहीं पहुँच सकता।

इसके साथ ही सिकन्दर ने उस दूरदर्शिता और युद्ध-विद्या की जानकारी से काम लेते हुए जिसने उसे संसार का सब से बड़ा सिपाही बना दिया, सांगले के द्रोही तथा जाति और देश के शत्रुओं को अपने साथ गांठने में अद्भुत चातुर्य्य से काम लिया है, उन लोगों से उसे नगर के अन्दर का पल पल का समाचार पहुँचता है और उन्हीं से उसे यह पता लगा है कि इस भीषण गर्मी से तंग आकर जो इस प्रदेश के पशु-पक्षियों के मुखसे भी त्राहि त्राहि करवाती है, आज रात को नगर निवासी चुपके से इस झील पर आक्रमण करेंगे।

तीन पहर रात्रि व्यतीत हो गई है, चौथा आरम्भ होने वाला है। यह वह समय है जब कि और तो और, वे लोग भी जिनका कर्त्तव्य ही स्वयं जाग कर औरों की रक्षा करना है, हां, वे लोग भी, जो "पहरेदार" कहलाते हैं और रात्रि भर जागने की ही नौकरी लेते हैं, सुख स्वप्न में मग्न हो जाते हैं। यही वह समय है जब कि मनुष्य का वह वफादार साथी भी जो अपने वंश का कट्टर शत्रु, परन्तु मनुष्यों के लिये अपने प्राण तक लड़ा देने में प्रसिद्ध है, ऊंघने लग जाता है। यही समय है जिसे चोरों ने अपने लिये सब से अच्छा समझ रखा है, इस समय हम सांगले के उस फाटक को जो झील की ओर है शनैः शनैः खुलता देखते हैं और इसके साथ ही पांच सौ सवारों का एक दल अत्यन्त सावधानी से चारों ओर देखता हुआ आगे बढ़ता दीख पड़ता है जिसके साथ इतने ही मनुष्य पानी लाने का सामान लिये चलते दीख पड़ते हैं। यह लोग चुपचाप और पूरी सावधानी से शनैः शनैः झील की ओर बढ़ते हैं। रात यद्यपि अंधेरी है तो भी उन्हें अपनी सफलता का पूरा विश्वास है क्योंकि नगर उनका है, झील उनकी है और समय पड़े पर दुर्ग की सहायता पीछे है।

झील बहुत दूर नहीं है इसलिये आश्चर्य्य नहीं यदि वे अपने भयानक उद्देश्य में सफल हो जायं। इतने में......हवा में सरसराहट का शब्द होने लगा, लोगों ने समझा वायु का झोंका आया परन्तु दूसरे क्षण ही पता लग गया कि यह कोई वायु से बढ़ कर भयानक वस्तु थी क्योंकि चलते चलते कई मनुष्य चीख मारकर पृथ्वी पर लेट गये।

इस आकस्मिक विपत्ति का किसी को भी ज्ञान न था, न आशा थी। इसलिये अभी यह पहली हैरानगी मुश्किल से दूर हुई थी कि सहसा यवन-सेना में भय सूचक एलार्म बजता सुनाई दिया

और मिनटों में ही पानी भरने वाला दल शत्रुओं के एक बड़े दल के घेरे में फस गया।

वीर क्षत्रियों ने जान तोड़कर मुकाबिला किया, परन्तु यवन सेना सारी की सारी अपने अनुभवी सेनाधिपति की कमाण्ड में वीरता से लड़ रही थी। इधर अंधेरा अपने पराये की पहचान को मिटा रहा था और सांगला निवासी इस आक्रमण से जानकार न थे। तिस पर भी शत्रु सब प्रकार से सुसज्जित थे, क्योंकि उन्हें इन सब होने वाली घटनाओं का पहले ही से पता मिल चुका था।

यवन-सेना का मुख इस समय दुर्ग की ओर था। सिकन्दर ने टालमी (Ptolmy) को पांच सौ वीरों के साथ संग्राम करने के लिये छोड़कर स्वयं दुर्ग की ओर चढ़ाई कर दी थी क्योंकि इस समय फाटक खुले थे और अन्दर दाखिल होना सहज था।

फाटक पर पहुँच कर बड़ा ही घमासान युद्ध हुआ। दुर्ग-सैनिक शस्त्रों की झनकार सुनकर सावधान हो चुके थे परन्तु शोक! उनकी यह सावधानी कुसमय की थी। क्योंकि घोर युद्ध के होने पर भी यवन-सेना दुर्ग के अन्दर घुस ही गयी !!

दिन निकलना चाहता था, प्रभात का वह सुहावना समय आने वाला था जब योगिजन भक्ति में तत्पर होते हैं। उस समय चारों ओर यह समाचार सुनाई दिया कि महाराज पौरुष सहस्रों वीर सैनिकों और दुर्ग तोड़ने वाले इंजनों के साथ सहस्रों हाथियों को लिये हुए यवनों की सहायता को पहुँच गये। इस समाचार ने दुर्गस्थ सैनिकों का रहा सहा साहस तोड़ दिया। अब जोड़ बराबर का न रहा, क्योंकि इस समाचार ने यवन-सेना के साहस को सहस्र गुना बढ़ा दिया।

सांगला जीता गया। वह दुर्ग जिसे अभेद्य और अजेय समझा जाता था कुछ एक देश द्रोही जनों की कृपा से जीता गया

और अब वह विजेता की दया पर था। परन्तु सिकन्दर के अन्दर प्रतिकार का भाव पूरे जोर से भड़क चुका था। इस लिये उस दया की आशा रखनी एक झूठा विचार था। सुतरां परिणाम यह हुआ कि सांगला को अग्नि देवता की भेंट होना पड़ा।

नगर एक सिरे से दूसरे सिरे तक धड़ाधड़ जल उठा, बालक, वृद्ध, स्त्रियां और पुरुष इस दृश्य को देखते थे और जिगर का लहू पीकर रह जाते थे। उनके नेत्रों में आँसू थे परन्तु जिह्वा गूंगी थीं। हा! वह काठी राजपूत जिनकी तलवारें बड़े बड़े साहसी वीरों के जी छुड़ा देती थीं, आज केवल उनकी स्वाधीनता ही नहीं छीनी गई थी वरन् उनके नगर को भी केवल इसलिये अग्नि के अर्पण कर दिया गया ताकि उनको अपनी पराधीनता का भली भांति ज्ञान हो जाय!

इस दृश्य को देखने वाले यदि वे लोग होते जिनके अन्दर सैकड़ों वर्षों से दासत्व चला आता हो तो निस्सन्देह उनकी कमर टूट जाती परन्तु काठी लोगों को अपनी तलवारों के समान स्वतंत्रता भी प्यारी रही थी और यही कारण था कि जहां समस्त भारतवर्ष में अनेक राजा राज्य करते थे, वहां काठियों का देश पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहा था, इसलिये अनुमान किया जा सकता है कि उनके अन्दर उस स्वतन्त्रता को नष्ट होते देखकर क्या क्या भाव उत्पन्न हुये होंगे। उनका रक्त किस प्रकार अन्दर ही अन्दर उबलता होगा और किस प्रकार उस गयी हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के लिये उनके मन ही मन इच्छायें उत्पन्न हुई होंगी।

ग्यारहवां परिच्छेद

आकस्मिक आक्रमण

चन्द्रभागा के शीतल जल की डुबकियों ने बिचारी रुकशाना पर बिल्कुल उल्टा असर किया है। उस दिन से जबसे वह जल से निकली है उसकी कोमल देह में आग सी लग रही है जो उसके शरीर को जला देने की धमकी दे रही है। वह जल जिसे कवि लोग जीवनदान कहते हैं, उसके जीवन का संहार करने वाला बन गया है। वह जल जिसे अञ्जलि में लेकर वैदिक धर्म के अनुयायी उसमें जगदम्बा जग जननी की भावना करके शान्ति और सुख की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वही जल इस बिचारी के रहे सहे सुखों को उड़ाकर उसे अशान्त करने का कारण बन चुका है। वह बैठती है तो मन व्याकुल रहता है, उठती है तब भी शान्ति नहीं मिलती, लेटती है तो भी चैन नहीं पाती। सेना के कूच के दिनों में यात्रा के कारण कुछ चित्त ठिकाने हुआ था परन्तु जब से सांगला विजय हुआ और सेना को लूट-मार और भोग विलास के आनन्द लूटने के लिये छुट्टी मिली है उसकी पुरानी बेचैनी ने फिर उसके हृदय पर आसन जमा लिया है।

पाठकों को कदाचित् यह बतलाने की अवश्यकता नहीं कि उठते बैठते चलते फिरते उसकी आंखों के सन्मुख वही माधुरी मूर्ति फिरती रहती है जिसने दो बार उसे मृत्युके मुख से खींच-कर निकाला था।

पिता उसके कुम्हलाते हुए मुख को देखता है किन्तु उसका कारण समझने में असमर्थ है। क्योंकि उसे इस बात की कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि यूनान देश में जन्मी हुई एक कन्या के मन में सुदूरवर्ती भारतवर्ष के अन्दर विद्यमान एक शत्रु के साथ प्रेम हो सकता है।

सच है, प्रेम के देवता को शत्रु और मित्र, छोटे व बड़े, अपने और पराये में कोई भेद नहीं है। संसार के अन्दर इससे बढ़कर समानता का पक्षपाती कोई भाव नहीं है। लोग बुद्ध, मसीह, मुहम्मद और दयानन्द की इस विषय में प्रशंसा करते नहीं थकते और कहते हैं कि उन्होंने सार्वभौमिक समानता का प्रचार किया, उन्होंने संसार में से ऊंच नीच का भेद उड़ा दिया परन्तु मैं कहता हूं संसार में से प्रेम के देवता को निकाल दो और फिर एक बुद्ध नहीं एक लाख बुद्ध ले आओ, एक मसीह नहीं एक करोड़ मसीह ले आओ, एक मुहम्मद नहीं एक अर्ब मुहम्मद ले आओ, एक दयानन्द नहीं दस अर्ब दयानन्द ले आओ और उन से कहो कि वे संसार में समानता का प्रचार करके देखें, देखें कहां तक उनको सफलता होती है।

इस देवता ने रुक्शाना के कोमल हृदय पर अपना आसन जमाया था। वृषल का विशाल हृदय, उसके कमल समान सुदीर्घ नेत्र और उसका सरु सा क़द और सबसे बढ़कर उसके सदाचार ने रुक्शाना के शरीर और आत्मा को बलात् अपनी ओर खींच लिया था। वह अपने आपको संभालती थी, कई बार एकान्त में बैठे बैठे उसने अपने आप से यह कहा था कि "यह मुफ़्त का दर्द क्यों सहेड़ बैठी है—तू इस मुल्क में एक मुसाफिर, आज नहीं तो कल चली जायगी। फिर क्यों यह क़ज़िया अपने गले का हार बना रही है, क्या यह मुहब्बत मुझे कभी फ़ायदामन्द हो सकती है, क्या तेरा बाप जो तुझे इस तरह अज़ीज़

समझता है, तुझे इस दूर-दराज़ मुल्क में छोड़ जाने को तैयार होगा और क्या वह तेरी जिन्दगी को एक गुमनामोनिशान आदमी के साथ, जिसकी जायदाद जहां तक मालूम हो सका है एक तलवार और घोड़े के सिवा और कुछ नहीं, हां ऐसे शख्स के साथ तेरी जिन्दगी को वाबस्ता कर देने को तैयार हो जायगा? नहीं, हरगिज नहीं। तो फिर अगर तू जिद करेगी तो क्या इससे अपनी और अपने अज़ीज़ बाप की जिसने तुझे इस क़दर मुहब्बत से पाला है, जिन्दगी को तलख़ न कर देगी। क्या वह ज़िन्दगी जिसके सीने के अन्दर हजारों उमंगें और हजारों ख़्वाहिशात भरी पड़ी हैं, इस तरह तबाह व बरबाद नहीं हो जायगी?

नहीं, नहीं! मैं इस गुनाह की मुरतकिब नहीं हूंगी। मुझ पर जो भी मुसीबत आये मैं उसे बर्दाश्त करने को तैयार हूँ लेकिन अपने लिये दूसरों को मुसीबत में नहीं डालूँगी। मैं जानती हूं कि वृषल के बग़ैर मेरी तमाम खुशियां ग़म में तबदील हो जायंगी। मेरी उमर भर की उमंगें ग़म के दरिया में डूब जायंगी, लेकिन मैं इस मुसीबत को मर्दानावार सहूंगी।

हां, हां, मैं दुख उठाऊंगी, तकलीफ उठाऊंगी लेकिन बाप की खुशियों के शीरीं प्याले में जहर नहीं मिलाऊंगी। वृषल! प्यारे वृषल! मेरे दिलोजान के प्यारे वृषल! अलविदा! अलविदा! मैं तुम्हें भूल नहीं सकती लेकिन तुम मुझे याद न करना, ऐसा न हो कि मेरी तरह तुम्हारी खुशियों का भी ख़ात्मा हो जाय!!!"

यहां पहुंच कर सहसा विचार रुक जाते, नेत्रों से अश्रुओं की अविरल धारा बहने लगती और बिचारी रुक्शाना मुंह लपेट कर लेट जाती।

एक बार नहीं, बीसों बार उसने इस प्रकार अपने मन को समझाने की चेष्टा की। कई बार उसने अपने हृदय की सुलगती

हुई आग को शान्त करने का उपाय किया परन्तु किसी कवि ने क्या अच्छा कहा है कि :—

"मर्ज़ बढ़ता गया ज्यूं ज्यूं दवा की"

यह अग्नि ऐसी है कि ज्यों ज्यों इसको शान्त करने का यत्न करो त्यों त्यों अधिकाधिक देदीप्यमान होती जाती है और परिणाम यह होता है कि न उठते चैन, न बैठते चैन। कई बार उसने इस बेचैनी को दूर करने के नये नये उपाय सोचे हैं। परन्तु किसी से भी मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ। हां, आज इसे एक उपाय सूझा है और जहां तक उसने सोचा है इसमें उसे सफलता के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया।

बालकपन में उसने शस्त्रों को चलाने में अच्छा अभ्यास किया था। घोड़े की सवारी में वह बड़ी निपुण थी। आखेट में जिस मृग के पीछे बाण छोड़ दिया अथवा घोड़ा दौड़ाया वह कभी बच कर नहीं जा सका। भारतवर्ष में आकर पहले पहल घूम फिर कर और आखेट करके अपना मन ही बहलाया करती थी, परन्तु शाही सेना ज्यों ज्यों देश के अन्दर प्रवेश पाती आई और शत्रुओं की संख्या बढ़ती चली गई, स्त्रियों और बालकों का शिविर से निकलना अपने आप छूट गया था।

आज रुक्शाना के हृदय में वही पुरानी आकांक्षा जाग उठी है। वह जानती है कि शिकार की लगन में चंचलवृत्ति एकाग्र हो जाया करती है। इसलिये आज इस औषधि की परीक्षा करने के लिये कुछ सिपाहियों के साथ जिनका काम ही उसकी रक्षा करना है, मांगले से बाहर निकल आई है।

शिकारियों का यह छोटा सा दल दुर्ग से बाहर निकला, उस दुर्ग से जिसकी जली हुई छतें और गिरी हुई दीवारें काठी वीरों की आंखों से आंसू बहा देती थीं। आस पास दूर तक बस्ती का

चिह्न तक न था क्योंकि उस चटियल मैदान की रही सही बस्ती का भी यूनानी सेना ने विनाश कर दिया था।

इस समय रुक्शाना का घोड़ा सब सिपाहियों के आगे था। खुले वायु में निकल कर उसके हृदय की कलियाँ कुछ खिल गई थीं और उसने घोड़े को पूरे वेग से चलने पर विवश कर दिया था।

अचानक सामने एक हरिण दिखाई दिया। रुक्शाना ने बाण को धनुष पर चढ़ाया, परन्तु इससे पहले कि मृत्यु का यह दूत धनुष से छूटे, हरिण चौकड़ियां भरता हुआ उन टीलों की ओट में था जो सामने दिखाई दे रहे थे।

रुक्शाना ने घोड़े को एड़ लगाई, वेगवान घोड़े ने कभी एड़ी नहीं खाई थी इसलिये पवन के समान उड़ा और साथी सिपाहियों को पीछे छोड़ कर वह बहुत दूर आगे निकल गया।

रुक्शाना ने इधर उधर देखा, चारों ओर दृष्टि दौड़ाई परन्तु कहीं कोई प्राणी दिखाई न दिया। आगे बढ़ी तो अब वह उन टीलों के मध्य में थी जिनमें हरिण लुप्त हुआ था। और आगे बढ़ी तो वह मनुष्य की दृष्टि से बिल्कुल ओझल थी।

इस समय यदि उसे सोचने का अवसर मिलता तो उसे इस बात का ज्ञान हो जाता कि वह आगे बढ़ने में गलती कर रही है, परन्तु अब वह समय कहां था, इस वक्त उसके मनमें केवल एक ही लक्ष्य था और वह आखेट का हरिण था, इस समय वह सब प्रकार के खतरे से लापर्वाह हो रही थी।

एकाएक हल्की सी सीटी की आवाज़ आई और इससे पहले कि उसे सोचने का अवसर मिले कि यह कहां से आ रही है, कोई पन्द्रह बीस मनुष्य उसका रास्ता रोक रहे थे।

रुक्शाना ने घोड़े की बाग खींचली और अपने शत्रुओं को देख कर बाण को धनुष पर चढ़ाते हुए कहा—"छोड़ दो मेरा रास्ता, वर्ना अपनी जानों से हाथ धो लो।"

शत्रुओं में से एक जो इस दल का मुखिया जान पड़ता था, इस आह्वान का उत्तर देते हुए बोला—जो कुछ तुम्हारे पास है यहां रख दो और फिर हम तुम्हारा रास्ता छोड़ देंगे, हम जानते हैं कि तुम यवन-सेना से सम्बन्ध रखती हो और हम उस सेना के किसी पुरुष व स्त्री को निःशंक गुज़रने नहीं दे सकते।

रुक्शाना के नेत्र लाल हो गये, "कम्बख्त, बेहया, नामर्दो आओ, एक औरत का मुकाबिला करो" यह शब्द कहकर उसने सनसनाता बाण छोड़ा और आंख झपकते ही एक मनुष्य लहू-लुहान हुआ भूमि पर लोट रहा था।

परन्तु मुक़ाबिला बराबर का नहीं था, कहां एक राजमहलों में लाड़ प्यार से पली हुई अबला स्त्री, और कहां पंद्रह बीस जवान, तथापि रुक्शाना की चुटकी से बाण आंधी की तरह निकल रहे थे। स्वयं उस पर बाणों की वर्षा हो रही थी परन्तु उसके स्वामिभक्त घोड़े ने इस प्रकार का चक्कर बांध रखा था कि बहुत थोड़े बाण उसकी देह को छू पाते थे।

कोई पाव घण्टा तक भीषण संग्राम होता रहा। चारों ओर बाणों के लोहे के सिवा और कुछ दिखाई न देता था। रुक्शाना का घोड़ा लहू-लुहान हो गया, उसके शरीर पर कई घाव हो गये, तरकश भी बाणों से खाली हो गया, परन्तु उस वीर कन्या का साहस अपूर्व था, धनुष को हाथ से फेंक कर उसने तलवार खींच ली और विद्युत-प्रभा की नाईं घोड़े से कूद कर अलग हो गई।

न जाने अगले कुछ क्षणों में इस बेजोड़ के संग्राम का परिणाम क्या होता कि एकाएक सामने की ओर से आवाज़ आई:—

"ठहरो, यह क्या कोलाहल है!"

लड़ाकों के शस्त्र किसी वैद्युतिक शक्ति से खिंच खिंच कर

पहलू में लटक गये क्योंकि सामने एक लम्बा और सुन्दर नवयुवक घोड़ा मारे आ रहा था।

नवयुवक ने दोनों प्रतिद्वन्दिओं के मध्य में आकर घोड़ा खड़ा कर दिया। इस समय उसकी एक आंख उन मनुष्यों पर थी और दूसरी भूमि पर बिखरे हुये शस्त्रों की गिनती कर रही थी।

एक क्षण चुप रहने के पश्चात् उसने कहा—हैं? क्या मैं अपने सन्मुख उन लोगों को देख रहा हूं जिनकी नसों में काठी क्षत्रियों का रक्त बह रहा है? क्या मेरे सन्मुख वे राजपूत वीर खड़े हैं जिन्होंने एक नवोढ़ा बालिका से मुंह की खाई है? क्या सचमुच शत्रु की एक ही झड़क ने क्षत्रियों को क्षात्र-धर्म से विमुख कर दिया है? क्या अब वे स्त्रियों पर भी हाथ उठाने को पाप नहीं समझते? परमात्मन्! मेरी आंखें क्या देखती हैं!!

शत्रु—(एक स्वर से) यह कन्या यवन है!

नवयुवक—यवन है वा कोई और; वह स्त्री है, अबला है। क्या मैं यह शब्द भीष्म के वंशजों के मुख से सुन रहा हूं, क्या प्रतिकार की अग्नि में दग्ध होते हुये वे धर्म से पतित हो गये हैं, क्या उनके अन्दर धर्माधर्म का ज्ञान नहीं रहा? हा! यह पृथ्वी क्यों नहीं फट गई जिसपर क्षत्रिय के हाथ से एक स्त्री का रक्त गिरा!!

शत्रु—परन्तु हमारी स्त्रियों के रक्त बहाये गये हैं। हमारी बहू बेटियों का अपमान किया गया है!!

नवयुवक—निस्सन्देह यह सत्य है, परन्तु यदि शत्रु अपने धर्म से गिर गया है तो क्षत्रिय भी धर्म से पतित हो जायंगे? क्या मिर्च की कटुकता को देख कर मधु भी अपने माधुर्य्य को छोड़ देगा? क्षत्रियो! मुझे तुम्हारे मुख से यह शब्द सुनकर लज्जा आती है, क्या अभी तक तुमने अपने धर्म को नहीं समझा? क्या अभी तक क्षात्र-धर्म का महत्व तुम्हारे हृदय पर

अङ्कित नहीं हुआ ? क्षत्रियो ! धर्म से पतित क्षत्रियो ! यदि तुम्हें प्रतिकार ही लेना है, यदि बिना रक्त बहाये तुम्हारे प्रतिकार की अग्नि शान्त नहीं हो सकती तो मेरी छाती तुम्हारे सन्मुख है, आओ अपने शस्त्रों को वृषल के रक्त से पवित्र करलो।

"वृषल ! वृषल !! क्या हमारे सामने वृषल खड़ा है ? क्या हमारे सामने वह मनुष्य खड़ा है जो भारत की स्वतन्त्रता के लिये घर से बेघर हुआ है" यह शब्द सारे क्षत्रियों के मुख से एक स्वर से निकलते सुनाई दिये।

वृषल ने अपना आवरण उठा दिया जो उसके सुन्दर चेहरे को ढांप रहा था, और कहा—वृषल—हां वीर पुरुषो ! तुम्हारे सन्मुख वृषल खड़ा है जिसने भारत को स्वतन्त्र कराने की शपथ उठाई है परन्तु इस स्वतन्त्रता को स्त्रियों की हत्या करके प्राप्त नहीं करेगा। इसके लिये अन्य बहुत से साधन पड़े हैं।

क्षत्रिय—(लज्जित होकर) वृषल ! हमें क्षमा कर दो, हमसे भूल हुई है।

वृषल—क्षमा मांगनी है तो मुझसे नहीं उस देवी से मांगो जिसका तुमने रक्त बहाया है।

क्षत्रिय—(रुक्शाना की ओर लक्ष्य करके) देवी ! हमें क्षमा कर दो, प्रतिकार के आवेश में हमसे पाप हुआ, हम इसका प्रायश्चित्त करने को उद्यत हैं, जिस प्रकार कहो, हम इस पाप को धो देंगे।

रुक्शाना आश्चर्य्य से इस सारे दृश्य को देख रही थी। उसे यह ज्ञान न था कि वह जागती है वा स्वप्न देख रही है, उसने कहा—तुम्हारा इसमें कोई क़सूर नहीं, क़सूर मेरे हमवतनों का है जिन्होंने फतह के जोश में आगा पीछा नहीं देखा, इसलिये जाओ, मैंने तुम्हें मुआफ किया; लेकिन अगर तुम इस गुनाह का जो तुम्हारे खयाल में गुनाह है, प्रायश्चित करना चाहते हो

तो इसका सिर्फ एक ज़रिया है और वह यह कि इस नौजवान की ज़िन्दगी की हिफ़ाज़त करो। मैं जान चुकी हूं कि यह किसी रोज़ तुम्हारे बड़े काम आयेगी।

क्षत्रिय इस कथन का अभिप्राय समझ गये, उनके अपने मन उसी ओर चल रहे थे जिधर रुक्शाना ने संकेत किया था, उन्होंने हाथ जोड़ कर वृषल से प्रार्थना की—वीर शिरोमणि! हमें भी अपने साथ भारत की स्वतन्त्रता का भागी बनाओ, शत्रु ने हमसे हमारा घर बार सब कुछ छीन लिया है, हमारे देश को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है, सांगले के ऊंचे ऊंचे और सुन्दर भवनों तथा अभेद्य दुर्ग को जलाकर राख का ढेर बना दिया है। हम इसका प्रतिकार लेना चाहते हैं, हमारी आत्मा मरकर भी उस समय तक विश्राम न लेगी जब तक वे अपना प्रतिकार न कर लेंगी, जब तक इस साकल देश का पुनरुद्धार न होगा। इसलिये हमें इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायता दो।"

वृषल -वीर पुरुषो! यदि तुम साकल देश का पुनरुद्धार होता देखना चाहते हो तो उसके लिये केवल एक ही साधन है। तुम्हारे अलग अलग प्रयत्न इस उद्देश्य की पूर्ति में कभी सफल नहीं हो सकते, इसलिये कहानी के कबूतरों की न्याई सबके सब सारे देश के लिए यत्न करो और फिर यह उद्देश्य सहज ही में पूरा हो जायगा।

यह कह कर उसने उनके मुखिया के कान में कुछ कहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि तुरन्त ही यह स्थान जहां इतना लोहा बजा था, सर्वथा जनशून्य हो गया। अब वहां वृषल और रुक्शाना के सिवा तीसरा कोई न था।

बारहवां परिच्छेद

बिछड़ों का मिलाप

इस क्षणिक घटना से रुक्शाना का मन अपने आपे में नहीं रहा था, उसकी दमनशक्ति इस विचित्र घटना ने हर ली थी। वह अग्नि जो इस समय तक उसकी हड्डियों के अन्दर सुलग रही थी, एकाएक भड़क उठी। इस प्रकार अचानक .... वृषल का ऐसे समय पहुँच जाना ऐसा न था जिससे एक बारगी सब दुख दर्द भूल न जाते।

इधर वृषल की आंखों ने जब से रुक्शाना को देखा था, हां जिस समय से उसने उसके घावों को देखा था उसका मन उसके वश में न रहा था। उसका हृदय कह रहा था कि आगे बढ़कर अपने होंठों से उस बहते हुये रक्त को चूस ले जिसके निकलने से रुक्शाना का गोरा गोरा रङ्ग (जिस पर जङ्ग की गर्मा गर्मी में लाली झलकने लगी थी) पीला पड़ रहा था।

काठी क्षत्रियों के जाने के साथ ही वह तड़प कर घोड़े से उतरा और जल्दी से रुक्शाना को गले लगाकर उसके घावों को साफ़ करने लगा।

जब यह काम हो चुका तो कमर बंद खोलकर एक डिबिया निकाली और उसमें से एक मरहम निकाल कर घावों पर लगा दी।

इधर यह काम हो रहा था उधर उसके मुख से यह शब्द निकल रहे थे—रुक्शाना ! तुम यहां कैसे आ गई।

रुक्शाना—(मुस्करा कर) आपके दर्शन के लिये।

वृषल—झूठ ! अभी आध घण्टा पहले मैं यहां से कई मील के फ़ासले पर था और जो मुझे सांगला के पतन का समाचार न मिलता तो न जाने और कितने दिनमें आता इसलिये तुम्हारा यह कहना झूठ है।

रुक्शाना—हुआ करे ! अन्दर बैठे बैठे तबियत उकता गई थी, दिल में आया, चलो शिकार ही खेल आयें, मगर यह मालूम न था कि (वृषल की ओर कनखियों से देखकर) खुद ही शिकार हो जाऊँगी। तुम्हारी मरहम कैसी अच्छी है, इसने तो जलते हुए जख़्मों में ठंडक डाल दी है।

वृषल—शत्रु के देशमें इस तरह अकेला आना बुद्धिमत्ता नहीं है।

रुक्शाना—वृषल ! क्या मैं तुमसे एक सवाल पूछूं, जवाब दोगे ?

वृषल—पूछो !

रुक्शाना—मैं तुम्हारे दुश्मन की लड़की हूं, उस दुश्मन की जिसने तुम्हें सख़्त नुकसान पहुंचाया है, फिर तुम अपने आप को खतरे में डाल कर क्यों बार-बार मेरी जान बचाते हो ?

वृषल—इसलिये कि मैं क्षत्रिय हूं और विपत्तिग्रस्त की सहायता करना क्षत्रिय का धर्म है, और............

रुक्शाना—और क्या ?

वृषल—बस तुम्हारे लिये इतना ही पर्य्याप्त है, शेष मेरे साथ सम्बन्ध रखता है।

रुक्शाना—मैं भी तो सुनूं।

वृषल—पुरुष का भेद तुम्हारे कानों के लिये नहीं है।

रुक्शाना—(उसके चेहरे की तरफ गौर से देखकर) यानी ?

वृषल—इसे सुनकर तुम मुझसे घृणा करने लग जाओगी, तुम मुझे स्वार्थी कहने लग जाओगी।

रुक्शाना—तुम्हें ? मैं स्वार्थी कहूंगी, क्या यह मुमकिन हो सकता है ?

वृषल—तो फिर निश्शंक होकर कहता हूं कि मेरा आत्मा तुम्हारे आत्मा की पूजा करता है, मैं तुम्हारा दास हूं इसलिये तुम्हारी रक्षा करना मेरा धर्म है। रुक्शाना ! तुम्हारे हठ ने मेरे मुख से यह शब्द निकलवा दिये हैं जो कदाचित् कभी न निकलते इस लिये मुझे क्षमा कर दो। उसी दिन से जिस दिन मैंने तुम्हें पहले पहल देखा था, मेरा मन तुम्हारे लिये व्याकुल हो रहा है; मैं अपने मन से कितना लड़ा हूं, यह मैं ही जानता हूं, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि तुम्हें भी मुझ से प्रेम है या नहीं ?

वृषल के शब्दों को सुनकर रुक्शाना के मुख-मण्डल पर लज्जा, मान और प्रेम के भाव क्रम-क्रम से अपना प्रभाव दिखा रहे थे, उसके मुखपर ज़र्दी की लहरें दौड़ रही थीं !

रुक्शाना—क्या इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए जरूरी है, क्या मैंने इस सवाल का जवाब उस रोज चंद्रभागा के तूफ़ान में नहीं दिया था ? वृषल ! अब मैं तुम्हारे गुलामों की गुलाम हूं, तुमने अपनी मर्दाना सफ़ात से मुझे जीत लिया है, अब यह दिल और कहीं नहीं जा सकता।

वृषल—(आकाश की ओर आंखें उठाकर) क्या मेरे जैसे निर्धन और निस्सहाय परदेशी को एक शहज़ादी स्वीकार कर सकती है ? परमात्मन् ! यह विश्वास करना मेरे लिये असम्भव है।

रुक्शाना—वृषल, प्यारे वृषल ! तुम निर्धन और निस्सहाय नहीं हो, मेरे सर के ताज हो, मैं शहज़ादी नहीं एक भिखारनी हूं, तुम देवता सिफ्त हो, मैं एक मामूली ज़मीनी हस्ती हूं, लेकिन आज तुमने मेरा सर इक़रार से बुलन्द कर दिया है, अब मुझे

यक़ीन हो गया है कि मैं दुनियां में फ़ख़र से अपना सर ऊँचा कर सकती हूं।

वृपल ने आगे बढ़कर जोश से रुक्शाना को गले से लगा लिया और प्रिय-प्रीतम के स्नेह भरे चुम्बन ने दोनों के प्रेम पर मोहर लगा दी। इस समय उनको ऐसा प्रतीत होता था मानों वह इस मृत्युलोक के रहने वाले नहीं वरन् उस कल्पित लोक के निवासी हैं जिसे लोग स्वर्ग कहते हैं।

न जाने कितना समय इस मुग्ध अवस्था में व्यतीत हो गया और कितना और व्यतीत हो जाता, यदि वृषल का अनुभवी और स्वामि भक्त घोड़ा हिनहिना कर उन्हें स्वर्गलोक से फिर मृत्यु-लोक में आने पर विवश न कर देता।

इस समय वृषल ने ठण्डी सांस भरकर कहा—रुक्शाना! अफ़सोस हमारा यह सुख कुछ क्षणों का है। मैं जानता हूं कि मैं तुम्हारे बिना अधिक समय तक जीवित न रह सकूंगा परन्तु ऐसा होते हुये भी तुम्हें इस बात के लिये विवश नहीं करूंगा कि तुम अपने प्यारे माता पिता को मेरे लिये त्याग न कर दो, क्योंकि मैं अपनी इस प्रकार की अशक्त अवस्था में तुम्हें हृदय से लगाने का साहस नहीं कर सकता। इस समय मेरा जीवन को एक एक पल भय से भरपूर है, मैं एक दिन के लिये भी निश्चय से नहीं कह सकता कि अगले दिन जीवित रह सकूं वा नहीं इसलिये तुम्हें माता पिता के सुख से निकाल कर दुःख और विपत्ति में नहीं डालूंगा।

रुक्शाना—(आंखों में आंसू भरकर) प्यारे वृषल! तुम्हारे बग़ैर मुझे शाही महल, अमीराना पोशाक, ऐशो इशरत के सामान सबके सब कांटों की झाड़ियों से भी बदतर हैं, लेकिन फिर भी मैं अपनी खुदग़रज़ी पर करोड़ों जानों की आज़ादी को कुरबान नहीं करूंगी। प्यारे वृषल! मुझे फ़ख़र है कि मैंने जिसे दिल

दिया है वह अपने मुल्क व कौम की खातिर अपने सारे ऐश व आराम को तिलाञ्जली दे रहा है, लिहाजा बावजूद दिली जज़बात के ज़ोर के भी तुम्हारे इस पाक मकसद की राह में रुकावट नहीं बनूंगी। हां वृषल ! मैं दुनियां को दिखाऊंगी कि जहां मेरा प्यारा अपने मुल्क व कौम पर अपनी तमाम खुशियों को निसार कर रहा है वहां मैं भी उसके मुल्क की खातिर—हां उस चीज़ की खातिर जो उसे प्यारी है, अपनी उमर भर की खुशी को खैरबाद कह सकती हूँ, हां मैं तुम्हारी इष्ट देवी के आगे दिल की कुर्बानी चढ़ाती हूँ।

वृषल—(आकाश की ओर दृष्टि उठा कर प्रेम के आवेग से) भारत माता ! तुझपर उमरभर की खुशियाँ कुर्बान ! तुझपर आयु भर के सुख का बलिदान ! और वृषल का जीवन तेरे चरणों की भेंट ! माता ! जब तक तेरे पुत्र की स्वतन्त्रता डाँवाडोल है, जब तक तेरे पुत्रों पर अत्याचार हो रहे हैं, वृषल सारे सुखों का त्याग करता है । माता ! इस बलिदान को स्वीकार कर ! स्वीकार कर ! स्वीकार कर !!!

रुक्शाना ! तुमने अपने इस बलिदान से मेरे आत्मा को पूर्ण रूप से जीत लिया है। मेरे तन और मन की स्वामिनी रुक्शाना ! तुम मेरे शत्रु के देश की हो, उसके सबसे बड़े जरनैल की पुत्री हो, तुम मेरे प्रेम से फायदा उठा कर मुझे उस देश जाति की सेवा से वंचित कर सकती थीं, जिसे तुम्हारा राजा अपने पावों में लताड़ना चाहता है, परन्तु तुमने ऐसा नहीं किया । तुमने पुरुष की दुर्बलता का लाभ उठाना स्वीकार कर दिया है, परमात्मा तुम्हें इसका फल देगा।

रुक्शाना—वृषल ! प्यारे वृषल ! तुमने औरत के दिल को नहीं समझा, तुम नहीं जान सकते कि औरत अपने प्रीतम के लिये क्या कुछ कुर्बानी कर सकती है। प्यारे मैंने तुम्हारे यहां

की औरतों को अपने मुर्दा खाविन्दों के साथ जलते देखा है, लेकिन मैं समझती हूँ कि जिन्दा रहते हुये जलने में जो लुत्फ़ है वह कुछ और ही है। प्यारे वृषल ! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, तुम अपने देश को प्यार करते हो, इसलिये यह मुमकिन नहीं हो सकता कि मैं तुम्हारे देश को प्यार न करूं। तुम्हारा प्यारा मेरा प्यारा है, तुम्हारा देश मेरा देश है ! मैं अपने बादशाह के इशारे पर तुम्हारे देशवासियों का खून बहाया जाता देखती हूँ और मेरी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली है। मैंने कई बार पिता जी से अर्ज की है कि वह इन्सानी कुर्बानियों को बंद करने की कोशिश करें, लेकिन बादशाह की बढ़ी हुई उमंगें कुछ नहीं होने देती, तो भी मुझे यह तसल्ली है कि मेरे ख़यालात की लहर सारे लश्कर में फैल रही है और फ़ौज का एक बड़ा हिस्सा अब मजीद लड़ाइयां लड़ने से इन्कारी होने पर तुला हुआ है।

वृषल—रुक्शाना ! तुम धन्य हो ! मुझे आज विदित हुआ तुमने मेरे देश की क्या क्या सेवा की है, परन्तु हा ! मेरे देश-वासी आज तुम्हारा लहू बहा रहे थे।

रुक्शाना—इसका जिकर न करो ! वे सच्चे थे, क्योंकि उन्हें किसी अमर का पता नहीं। उनके साथ जो ज़ुल्म किये गये हैं उनकी सजा यही हो सकती है। मुझे तो इस वक्त सिर्फ़ यह ख़याल है कि हमारी यह मुलाक़ात शायद आखिरी मुलाक़ात होगी।

वृषल—हैं ! क्या ? क्या सचमुच हम आख़रीबार एक दूसरे से मिल रहे हैं।

दोनों के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली और देर तक बन्द न हुई। इतने में दूर फ़ासले पर घोड़े की हिनहिनाहट का शब्द सुनाई दिया।

वृषल ने जल्दी से आगे बढ़कर फिर रुक्शाना को गले से लगाया, दोनों के हृदय प्रेम से उमड़े हुये एक दूसरे से मिले। रुक्शानाने उस समय कहा—प्यारे! अब विदा! मेरे मुहाफ़िज़ सिपाही अब आ रहे हैं ग़ालिबन उनकी भी झड़प किसी से हो गई होगी जो इतनी देर लग गई। अब तुम जाओ मैं सही सलामत लश्कर में पहुँच जाऊंगी। पर देखना, अपनी रुक्शाना को भूल न जाना।

वृषल—भूल जाना! क्या यह हो सकता है ? कभी नहीं। वृषल जीता ही जलकर राख हो सकता है, परन्तु अब वह किसी अन्य स्त्री की ओर आंख उठा कर नहीं देख सकता। उसकी रुक्शाना के सिवा संसार भर की स्त्रियां उसके लिये माता और भगिनी के समान हैं।

सवार निकट आ गये। रुक्शाना भी उस समय तक सवार हो चुकी थी। वृषल ने उसे उनके हाथ सौंपते हुये अन्त में कहा—रुक्शाना अपने पिता जी को मेरा नमस्कार कहना।

रुक्शाना चली गई, परन्तु वृषल के पांव भूमि में गड़ चुके थे। उनकी आंखें वापिस जाते हुये घोड़ों की पीठों पर लग रही थी और जबतक वे दृष्टि पथ से ओझल न हो गये उसी तरह लगी रही, इसके पश्चात् निन्द्रा से जागते हुए मनुष्य की तरह उसने अंगड़ाई लेकर घोड़े को थपकी दी और देखते देखते हमारी दृष्टि से ओझल होगया।

तेरहवां परिच्छेद

पूर्व और पश्चिम का मिलाप

एक प्रहर रात्रि बीत गई। चारों ओर मौन्यका साम्राज्य है। किसी ओर कोई पत्ता तक हिलता दिखाई नहीं देता। इस शून्य रात्रि में सांगला से थोड़ी दूर पर एक उजड़े से गांव में हम कुछ मनुष्यों को बात चीत करते देखते हैं। उनकी बातें बहुत ही धीरे धीरे हो रही हैं जिनसे ज्ञात होता है कि कोई रहस्य की बात है। आओ ज़रा सुनें तो सही परन्तु सावधानी से काम लेना, कहीं हम तुम दोनों ही पकड़े न जायँ।

पहला—इन्दु! कहो पाटली पुत्र का क्या समाचार लाये?

इन्दु—सर्दार! पाटली पुत्र नहीं प्रत्युत सारे का सारा मगध भारत की स्वाधीनता के रक्षक की ओर आंखें लगाये बैठा है नन्दवंश के घोर अत्याचार से पीड़ित हुए लोग उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर के दर्बार में जो दीनों की टेर सुनता है, गिड़गिड़ा कर प्रार्थना कर रहे हैं और उसी दिव्य दर्बार से मगध को नन्दवंश के अत्याचार से मुक्त कराने का काम भारतीय सुपूतों के शिरमौर वृषल के हाथ दिया गया है। इसी उद्देश्य से मगध देश के मस्तक का तिलक विष्णुगुप्त चाणक्य मेरे साथ आया है ताकि इस देश के ब्राह्मणों, क्षत्रियों और साधारण प्रजा की ओर से आपको निमंत्रण दे।

"चाणक्य! चाणक्य! यहां? क्या महाराज चाणक्य यहां पधारे हैं?"

"हां सर्दार। वे मेरे साथ यहां पधारे हैं और अभी सेवा में उपस्थित होते हैं।"

यह कहकर इन्दु बाहर निकल गया और दो मिनट पीछे वह पंडित विष्णुगुप्त चाणक्य कौटिल्य को साथ लिये हुए अन्दर दाखिल हुआ। ब्राह्मण क', हां उस ब्राह्मण को जिसका बुद्धिबल भारत भर में विख्यात् था, अन्दर आता देख कर वृषल अभ्यर्थना के लिये उठ खड़ा हुआ, आगे बढ़कर हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और आदर सहित उच्चासन पर बैठा कर—अहोभाग्य मेरे! जो मुझे आप के चरणों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

चाणक्य—अहोभाग्य इन नेत्रों के! जो आज भारत की स्वाधीनता के रक्षक के दर्शन कर रहे हैं। वृषल! मगध देश की भूमि पर अत्याचार हो रहे हैं। अन्याय हो रहे हैं। राजवंश ने प्रजा जनों की बहू बेटियों का सतीत्व भ्रष्ट करना ही अपना धर्म समझ रखा है। राजपुत्र अपनी शक्ति के मद में उन्मत्त हुए दीन प्रजा पर अत्याचार करना अपना धर्म समझते हैं। "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुसार राज्य कर्मचारी उनसे भी दो हाथ आगे बढ़ रहे हैं और जब रक्षक ही भक्षक बनने लगें तो उससे ईश्वर के बिना दूसरा कौन त्राण करने वाला हो सकता है। वृषल! मगध भूमि इन अत्याचारों से पीड़ित हुई गो रूप में सर्व व्यापक घट घट के अंतर्य्यामी भगवान् विष्णुजी की शरण में गई। उन्होंने उसके दुखको सुनकर उसे दूर करने का कार्य्य आपके हाथ में दिया है और मैं भगवान् के उस संदेश का लाने वाला हूँ। राजपूत दुखी के दुख को सुनकर अपने आपको भूल जाते हैं, क्षत्रिय अत्याचार को देखकर कांप उठते हैं, क्या तुम एक ब्राह्मण को निराश करोगे?

वृषल—(कांपकर) भगवन् अहोभाग्य इस पराकृत शरीर के! जिसे मातृभूमि की सेवा का काम सौंपा जाय, वृषल इस

परीक्षा से डरता नहीं। भगवन् ! मेरे कान नन्दवंश के अत्याचारों का वृत्तान्त सुन चुके हैं प्रत्युत मैं स्वयं उनको प्रत्यक्ष देख चुका हूँ इसलिये आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है, परन्तु इससे पहले कि मगध भूमि की सेवा का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो पंचनद में मेरी उपस्थिति अधिक आवश्यक है। भगवन् ! मैं शपथ उठा चुका हूं कि जब तक पंचनद देश का एक भी दुर्ग यवनों की सत्ता में है, संसार के सुख मेरे लिये नर्क के समान हैं। इसलिये किसी दूसरी ओर ध्यान देने से पूर्व पचनद देश को स्वतंत्र कराना मेरा प्रथम कर्तव्य है। भगवन् ! आपको संसार सर्वज्ञ कहता है इसलिये मुझे आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं कि पंचनद देश भारत का फाटक है, जब तक इसकी अवस्था डावांडोल है तब तक मैं सुख की नींद नहीं सो सकता।

चाणक्य—वृषल ! चाणक्य प्रतिज्ञा का मूल्य जानता है इसलिये वह किसी की प्रतिज्ञा भंग होते देखना उचित नहीं समझता। वह आपकी प्रतिज्ञा पूर्ति में सहायक होगा और इस समय उस सहायता के रूप में यह थोड़ी सी रत्नों से भरी हुई खच्चरें आपकी भेंट करता है जो मगध की स्वतन्त्रता के रक्षकों ने अपनी उद्देश्य-पूर्ति में सहायता देने के लिये भेजी हैं।

"स्वर्णकोष, मणि माणिक्य, सहस्रों सिपाहियों की भर्ती के साधन।"

यह शब्द एक स्वर से उपस्थित जनों के मुख से निकले। इस समय उनके मुख मण्डल पर लाली बरसने लगी।

चाणक्य—क्षत्रियो ! बिना रुपये के आपकी शक्ति अत्यन्त थोड़ी है क्योंकि इसके बिना यवन राजा के साथ युद्ध करना अतीव कठिन था। उस कठिनाई को यह रुपया कम कर देगा।

उपस्थित लोग—सत्य है ! सत्य है ! हम इससे एक बड़ी सेना सजा सकते हैं ।

चाणक्य—हां, अब मैं आप को उन गान्धार-नरेश पर्वतेन्द्र का (पर्वतेन्द्र की ओर लक्ष्य करके) परिचय देना अपना कर्तव्य समझता हूँ जो अलक्षेन्द्र के अत्याचारों से पीड़ित हुए मगधाधीश की शरण में जा रहे थे परन्तु अब जिनका देश और कोष आपकी भेंट है ।

यह समाचार पूर्व समाचार से भी अधिक आह्लादकर था वृषल ने उठकर पहले तो पर्वतेन्द्र को गले लगाया और फिर चाणक्य के चरणों में शीश नवाकर कहा—भगवन् ! आज आपने अपने इन शब्दों से हमारे साहस दुगुने कर दिये हैं । वह कार्य्य जो पहले इतना कठिन देख पड़ता था अब अत्यंत सुगम प्रतीत हो रहा है, निस्सन्देह परमात्मा की दया का हाथ हमारी पीठ पर है जिसने आपको यहां पर भेज दिया ।

चाणक्य—परमात्मा की दया उन पर होती है जो सत्य पथ पर चलते हैं, जो निर्बलों को आश्रय देते हैं, जो ईश्वर की सृष्टि की सेवा अपना धर्म समझते हैं । भारत-सुपूतो ! आपने दूसरों के लाभ के अर्थ अपने जीवन त्रास में डाल रखे हैं, फिर कोई कारण नहीं कि वह परमपिता परमेश्वर तुम्हारा सहायक न हो । देखो ! इस समय आपके साथ देशभक्ति है, राजा हैं, वीर योद्धा हैं, कोष है, सब कुछ विद्यमान है, अब केवल आपकी शक्तियों को एक सूत्र में पिरोने की आवश्यकता है और यह कार्य्य शीघ्र ही हो जायगा । यवनाधीश की सेना अपने शाह की ओर से परांमुख हो रही है और किसी न किसी स्थान पर पहुँच कर राजा और उसकी सेना की परस्पर बिगड़ जानी बहुत संभव है । इसलिये उस समय के लिये तैयार हो जाओ जब कि तुम्हें अपने उद्देश्य की पूर्तिके लिये शस्त्र संभालने होंगे, क्योंकि अब वह समय निकट आ रहा है जब कि तुम्हारी देशभक्ति की परीक्षा होगी ।

सबके सब—हम तैयार हैं, हम भारत माता का ऋण अपने रक्त से उतारने को तैयार हैं।

चाणक्य—भगवान् तुम्हारे दायें हों।

वृषल—जिसके आप जैसे ब्राह्मण सहायक हों, भगवान् क्यों न उनके दायें होंगे। भगवन्! जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र की सहायता से अर्जुन ने दुर्योधन को जीत लिया था उसी प्रकार आपकी साहायता से हम शत्रु को नीचा दिखा सकते हैं। भगवन्! जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय मिल जाय जहां सिर और भुजायें एक हो जायं उनके सन्मुख किसी का ठहरना सम्भव नहीं।

सबके सब—सत्य है! सत्य है! भारत के सर्वोत्तम मस्तिष्क की सहायता से हम असभव को संभव बना सकते हैं।

चाणक्य—भगवान् सत्य के स्वयं सहायक हैं, वे सत्य के पक्ष को अपने बल से बलवान् बनाते हैं। भारत-सुपूतो! धैर्य्य रखो, विजय का छत्र तुम्हारे सिर पर है क्योंकि तुम्हारा पांवों सत्य की चट्टान पर है। *

* व्यास नदी के तटपर पहुंच कर यूनानी सेना ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सिकन्दर को अपनी बढ़ती हुई उमगों का खून करके वापस लौटना पड़ा। यद्यपि यह कहानी एक बड़ी ही रहस्यपूर्ण और मनोहर कहानी है, परन्तु हमारी कथा का उसके साथ कोई संबन्ध नहीं इसलिये हमने इसे जान बूझकर छोड़ दिया है।

चौदहवां परिच्छेद

पौरुष बध

आधी रात आगे आधी पीछे। चुपचाप, चारों ओर अन्धकार अमावस की रात्रि और इस पर घनघोर घटा, हाथ पसारा दिखाई नहीं देता। आकाश की ओर देखो तो यही जान पड़ता है कि आज इसे कोई चोर चुराकर ले गया, पशु पक्षी और हिंस्र जन्तु, सब के सब निद्रा देवी की गोद में अचेत पड़े सो रहे हैं। इस समय हम अपने आप को तक्षशिला की छावनी में घूमते पाते हैं जहां पहरेके सिपाहियों की लालटेनें कहीं कहीं अन्धेरे को तोड़ती हुई दिखाई देती हैं। किसी ओर से यदि कोई कूक सुनाई पड़ती है तो वह इन्हीं पहरेदारों की आवाज़ है, इसके सिवा पृथ्वी और आकाश के अन्दर कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती। हां बीच बीच में मेघ की गर्जना होती है।

सहसा एक ओर से आवाज़ आई "कौन"?

उत्तर में कहा गया —"सर्दार !"

पहरेदार की आवाज़ चुप हो गई और वह पूर्ववत् रौंद पर चल दिया। उत्तर देने वाला आगे बढ़ा, वह सिरसे पांव तक काले लबादे में लिपट रहा था जिससे वह ऐसा दीख पड़ता था मानों कोई श्मशान का भूत हो। यह मनुष्य चलते चलते यूनानी कमाण्डर-इन्-चीफ के महलों के निकट पहुँच गया। वहां पहुँच कर वह एक मिनट के लिये ठहर गया, जेब से एक चाबी निकाली और एक गुप्त दरवाजा खोलकर अन्दर चला गया।

इतने में बिजली चमकी और हमें इस मनुष्य का आकार बहुत से पेचीले रास्तों में से होकर एक खास कमरे के बाहर ठहरता हुआ दिखाई दिया। उस समय वह बड़े ग़ौर से किसी आवाज को सुनने की चेष्टा कर रहा था।

अचानक बिजली की एक और चमक ने उसके मुख पर हर्ष की एक झलक का पता दिया और उसके पांव कमरे के अन्दर दाखिल होते हुए दिखाई दिये। कमरे में दीवट पर दीपक लट-लट जल रहा था और बीच में एक कोमल और सुन्दर बिस्तर पर एक लम्बा मनुष्य सुख की नींद सो रहा था। मसहरी के साथ एक ओर एक लम्बी तलवार लटकी थी, दूसरी ओर खूंटी पर लटकते हुये लम्बे लम्बे कपड़े अपनी बनावट से पता देते थे कि इनका पहनने वाला कोई भारतवासी है। मसहरी के सिरहाने पहुँचकर वह आकर ठहर गया, उसकी कमर से चमकता हुआ खञ्जर निकला, जिसे हाथ में लेकर देखते हुए कहा "पौरुष पौरुष !! अपने आप को शाहंशाह की भुजा समझने वाले'! अपने आपको अजेय जाननेवाले ! देख इस समय तू किस निस्सहाय अवस्था में अचेत पड़ा है। तू समझता है कि तू यूडीमोस की उमंगों के राह का कन्टक बन सकता है, तेरा विचार है कि तू उसे भारत का सम्राट बनने से रोक सकता है। हा ! दुर्बल मनुष्य ! अपने अस्तित्व को पहिचान, अपनी शक्ति को समझ, क्या तू जानता है फ़िलिप सूबेदार सिंध का पेट किसने फाड़ा था ! संसार यूनानी सिपाहियों के माथे दोष लगाता है परन्तु यूडीमोस इस भेद को भलीभांति जानता है, उसकी उमंगों के रास्ते में खड़ा होकर कोई मनुष्य बच नहीं सकता। फ़िलिप अपने आपको बहुत समझता था, अपनी सूबेदारी के मद में उन्मत्त हुआ संसार को तुच्छ समझता था, परन्तु उसे पता न था कि

यूडीमोस के हाथ का एक वार उसे अनन्त काल के लिये संसार से विदा कर सकता है।

"तुम मेरे मार्ग में खड़े हुए थे, इस झूठे विचार पर कि सिकन्दर तुम्हारा पृष्ठपोषक है अथवा इस विचार से कि भारतीय प्रजा तुमसे अनुराग रखती है! हां हां अब बताओ तो सही, तुम्हारी यह दोनों शक्तियां कहां हैं जिनके भरोसे पर तुम यूनानी कमाण्डर-इन-चीफ के रास्ते में खड़े हुए थे?

"पौरुष! तुम समझते थे कि अगर यूडीमोस तुम्हारी बातों को सुनकर टाल जाता है अथवा उन्हें सुनकर मुस्करा देता है तो वह तुमसे दबता है। हा! हा! हा!! अभिमानी पुरुष! तू अपने अभिमान में अपने आप को उससे बहुत बढ़कर समझता है जितना कि तू है!

क्या तुझे यह विचार नहीं आया था कि संभव है इन हरे भरे वृक्षों के नीचे एक आग्नेय पर्वत दबा हुआ हो, इस लहलहाती हुई हरियाली के अन्दर एक ज्वालामुखी छिपा हो।

"नहीं तू अपने अभिमान में किसी को कुछ न समझता था, तुझे कभी स्वप्न में भी यह विचार न था कि यूडीमोस तुझे आज भोज के छद्म से वश में ला सकता है।

मूर्ख! निर्बुद्धि!! अब अपनी मूर्खता का फल उठा, अपने अभिमान का दण्ड पा!"

उसका चमकता हुआ खञ्जर ऊँचा हुआ और आंख झपकते में पौरुष का पेट फाड़ना चाहता था कि ठीक उसी समय सोने वाले ने करवट ली।

यूडीमोस फुर्ती से अन्धेरे में हो गया। पौरुष का हाथ तलवार की ओर बढ़ा। उसके कानों ने स्वप्न में कुछ आवाजें सुनी थीं इसलिये वह उठकर बैठ गया, चारों ओर दृष्टि डाली परन्तु कुछ दिखाई न दिया।

"स्वप्न, केवल स्वप्न !" यह कहकर वह फिर मसहरी पर लेट गया।

यूडीमोस का खञ्जर फिर अंधेरे में चमका।

वह आवाज़ निकालने का परिणाम पहले ही देख चुका था इसलिये अबके उस के होंठ न हिले।

दूसरे क्षण में उसका तीक्ष्ण खञ्जर पौरुष के हृदय में घुसता हुआ दिखाई दिया।

एक साधारण और दिव्य शक्ति से पौरुष स्वप्न से जागा परन्तु यूडीमोस उस समय दरवाजे पर पहुंच चुका था। पौरुष ने उसे देखा, क्रोध से आंखें लाल हो गईं "निर्लज्ज, नीच, अतिथि के साथ यह बर्ताव ! चोरों की न्याईं छिपकर वार !"

यूडीमोस —(जाते जाते मुस्कराकर) शन्ति से लेट जाइये, आप मेरे अतिथि हैं इसलिये मैं नहीं चाहता कि आपको उठने में कष्ट हो।

पौरुष की छाती से लहू का फुआरा उछल रहा था, वह बुरी तरह घायल हो चुका था और पल पल में उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी परन्तु फिर भी बहादुर का हाथ तलवार पर था और उसने फुर्ती से उछलकर यूडीमोस की कलाई को पकड़ कर कहा "निर्लज्ज, चोरों की न्याईं वार करके भागा जा रहा है ? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है, तनक यह तो बताता जा।"

यूडीमोस—पौरुष ! तू मेरे भारत-सम्राट् बनने की राह में कन्टक था और मेरे रास्ते में खड़े होने वाले को इससे कम दण्ड नहीं हो सकता जो तुझे दिया गया है।

पौरुष की चमकती हुई तलवार यूडीमोस के सिर पर पड़ी और यदि उसके सिर पर फौलादी टोप न होता तो कदाचित मरते हुये वीर की यह तलवार अपने शत्रु को दो टूक कर देती परन्तु यूडीमोस सारा प्रबन्ध करके आया था, वह सब प्रकार से

सुसज्जित था इसलिये पौरुप की चेष्टा उसका कुछ न बिगाड़ सकी। पौरुप के गले में उस समय केवल एक महीन कुर्ता था जो सोते समय पहना गया था, वह भी रक्त से लत पत हो रहा था और उसका बल भी क्षण क्षण में कम होता जा रहा था। उस वार ने उसके रक्त का फव्वारा और भी उछाल दिया और यदि यूडीमोस अपने विषभरे खञ्जर से वार पर वार न किये जाता तो भी वह अधिक समय तक अपने आप को सम्भाल नहीं सकता था, परन्तु यूडीमोस के वारों ने उसकी देह को छलनी कर दिया और इससे पहले कि वह अपने बचाव के लिये दूर पड़ी ढाल को उठा सके वह लड़खड़ा कर धम्म से पृथ्वी पर गिर गया।

यह उस वीर का परिणाम था जो सिकन्दर के साथ युद्ध में लड़ते हुए बीसियों बार घायल हुआ और हाय तक मुख से न निकाली, जो भारत वर्ष में सिकन्दर का सबसे बड़ा सहायक था, जिसने भारत वर्ष में सिकन्दर की विजय को सुगम बना दिया था और जो जीता रहता तो निस्सन्देह भारतवर्ष में यूनानी राज्य को अचल कर देता।

पंद्रहवां परिच्छेद

भुस में चिंगारी

"महाराज पौरुष मारे गये" इस समाचार से सारे भारत में हाहाकार मच गया। बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, और पुरुष सबके सब आश्चर्य से एक दूसरे का मुह ताकने लगे। क्या हुआ, क्या हो रहा है और क्या होने वाला है, यह किसी की समझ में न आता था। आश्चर्य के पश्चात् शोक और क्रोध की एक लहर चली। लोग महाराजा के घातक से बदला लेने पर जोर देने लगे, परन्तु जब यह पता लगा कि घातक स्वयं यूडीमोस ही है; जिसे महाराजा पौरुष और अम्भी के साथ सूबेदारी सौंपी गई थी, जिसको यवन भारत के सम्भालने का काम सौंपा गया था, तो लोग अवाक् रह गये।

भारत-सपूतों के शिविर में यह समाचार पहुँचा तो सब के हाथ तलवारों की ओर बढ़ गये, नेत्र क्रोध से रक्तमय हो गये बाण कवचों में पड़े "प्रतिकार" "प्रतिकार" पुकारने लगे।

महाराज विष्णुगुप्त चाणक्य ने इस अवसर पर एक हृदय विदारक वक्तृता दी, जिसमें उन्होंने कहा कि महाराज पौरुष की हत्या कोई साधारण घटना नहीं है जिसे देखा अन देखा और सुना अन सुना कर दिया जाय, उस भारतीय महापुरुष की हत्या भारतवर्ष से यवन राज्य को उखाड़ कर दम लेगी। यही मनुष्य था जिसने वचन बद्ध होकर भारत में यवन राज्य की नींव रखी थी, अब उसी का रक्त उसे बहाकर सप्तसमुद्र पार पहुंचाएगा।

भारत सपूतो ! तुमने बहुत कुछ सहन किया; तुमने भाइयों की स्वतन्त्रता को मिट्टी में मिलते देखा है, तुमने अपनी माताओं और भगिनियों को अपमानित किये जाते देखा है, तुमने अपने नेत्रों के समक्ष ब्राह्मणों को शूली पर चढ़ाये जाते और सन्यासियों को तलवार के घाट उतरते देखा है, परन्तु तुमने हाय तक नहीं की, क्योंकि तुम्हारी शक्ति न्यून थी, तुम परस्पर खण्ड खण्ड हो रहे थे !!

"परन्तु इस अंधेर का उदाहरण संसार भर के इतिहास में नहीं मिलता कि एक मनुष्य को धर्म पर चलने का दण्ड मिला हो; एक मनुष्य को प्रेम का पारितोषिक खञ्जर मिला हो, एक मनुष्य का मित्रता और केवल मित्रता के दण्ड में वध किया गया हो !!!

"हां ! पौरुष का वध किया जाय और भारतवासी मौन धारण किये रहें, भारतवासियों की तलवारें कोष में पड़ी रहें। नहीं, यह नहीं हो सकता और न ही होने का। आज अलक्षेन्द्र इस संसार में नहीं है जिसके साथ मित्रता का महाराज पौरुष ने वचन दिया था। आज उसके सेनानी रोटी के टुकड़े पर लड़ने वाले कुत्तों की न्याईं उस राज्य के लिये जिसके अर्थ लाखों बालक अनाथ किये गये थे, जिसकी प्राप्ति के निमित्त करोड़ों स्त्रियां विधवा हो गई थीं, जिसे प्राप्त करने के लिये असंख्य परिवार नष्ट कर दिये गये थे, हां, उस राज्य के लिये एक दूसरे से गल हस्त हो रहे हैं। महाराज पौरुष ने आज तक भारत में यवन प्रदेशों को संभाल रखा था, क्योंकि हम लोग उनका आदर करते थे, परन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और है, वह कार्य्य जिसमें हाथ डालते हम झिझकते थे, यवन सेनाधिपति के खड्गने स्वयं आरम्भ करा दिया, अब प्रकृति तुम्हें उसकी पूर्ति के लिये आह्वान कर रही है।

"भारत-सपूतो ! क्या तुम परमात्मा की वाणी को सुनोगे ? मेरे कान उस वाणी को स्पष्टतया सुन रहे हैं, मेरे कान उसके प्रत्येक शब्द को सुनकर मनन कर रहे हैं। उठो समय है, महाराज पौरुष की अपनी सेना अपने वीर सेनापति की हत्या का प्रतिकार लेने के लिये अधीर हो रही है। भारत-शत्रु अम्भी का मन भी इस दुःखद समाचार को सुनकर थर्रा उठा है, क्योंकि वह नहीं जानता कि उसकी बारी कब आयेगी और इस प्रकार उसकी सेना में भी वैमनस्य फैला हुआ है।

"यवन सेनापति अपने अपने बल को एकत्र करके एक दूसरे के शत्रु हो रहे हैं, इस अवस्था में तुम्हारा भारत को यवनों से रहित कर देना कोई कठिन काम नहीं है।

"उठो ! थोड़े दिनों में पौरुप, अभिसार, तक्षकशिला, गांधार, मालव, क्षुद्रक, कौलूत, पारसीक, वाह्लीक आदि राजाओं और जातियों के देशों में फिर जाओ। आज से कुछ वर्ष पूर्व यह बिखरे हुये थे, आज तुम्हारे प्रयत्न और अलक्षेन्द्र की कृपा से यह भारत सुपूतों के दल में सम्मिलित होने के लिये व्याकुल हो रहे हैं जाओ उन्हें अपनी अपनी विपत्तियों का प्रतिकार लेने के लिये आमंत्रण दो। यह ईश्वरीय आज्ञा है, यह परमात्माका कथन है। मैं तो केवल उसका सुनाने वाला हूं। मेरी जिह्वा को न देखो, मेरे शरीर को न देखो, उस परिपूर्ण सर्वशक्तिमान परमात्मा का ध्यान करो जो मेरी जिह्वा से यह शब्द कहला रहा है, वह तुम्हारा सहायक होगा, वह तुम्हारी भुजाओं को बल और यश देगा, वह तुम्हारे शत्रुओं का नाश करेगा क्योंकि तुम्हारे शत्रु दुःख देने वाले हैं और तुम उन से दुखी हो क्योंकि वह दुखियों का सहायक है, क्योंकि वह दीनों का नाथ है।

महाराज चाणक्य इस समय अपने आपे में नहीं थे, उनका निर्मल आत्मा इस समय इस लोक से परे देख रहा था, उनके

नेत्रों में इस समय एक बिचित्र तेज था जिसने भारत सपूतों के हृदयों में एक बिजली की लहर दौड़ा दी। सब के हाथ तलवारों की मुट्ठियों पर पड़ गये और सब के मुंह से एक स्वर से निकला- "भारत माता की जय ! इस समय बीच में से किसी ने कहा— "भारत के शत्रुओं की जय !"

सोलहवां परिच्छेद

सेना प्रस्थान

भारत-सुपूतों का सैन्य शत्रु को अपनी क्रोधाग्नि में जलाने के लिये जङ्गली आग की तरह चला। सेना मध्य में चलता हुआ वीर वृपल ऐसे शोभा देता था जैसे चमकते हुए तारामण्डल में पूर्णमासी का चन्द्रमा। दायें बायें गांधारपति पर्वतेन्द्र और काठी वीरों की सेनाएं थीं। महाराज पौरुष के क्रोधाग्नि में जलते हुए साथी नायक थे। मालव और क्षुद्रक वीरों की सेनायें जिन्होंने सिकन्दर की जान लेते लेते छोड़ी थी अलग अलग दलों में साथ थीं।

वाह्लीक (बलखी) सेनाएं और कौलूत (कुल्लू के पर्वतों के रहने वाले राजपूत) झल्ले सांप की तरह फुङ्कार मार रहे थे। महाराज विष्णुगुप्त चाणक्य की स्फूर्ति और साहस इस समय देखने के योग्य और सराहनीय था। उन्हें सेना के रवाना होने के दिन से तक्षकशिला के सामने पहुँचने तक कभी सेना में नहीं देखा गया। सेना से एक दो दिन के फ़ासले पर आगे चलता हुआ आर्य्यावर्त्त का गौरव यह ब्राह्मण आज इस गांव में लोगों को यवन राज्य को समूल उखाड़ फेंकने की प्रेरणा कर रहा है तो कल दूसरे गांव में प्राणों के भय को छोड़ कर ब्राह्मणों, संन्यासियों और योगियों को अपनी पूरी शक्तियां शत्रु के संहार करने में खर्च करने का उपदेश दे रहा है। आज वह क्षत्रियों के क्षात्र-धर्म को उत्तेजित करता दीख पड़ता है तो कल ब्राह्मणों

के आत्म सम्मान और उनकी उत्कृष्टता को उभारता हुआ दिखाई देता है। यही कारण है सैकड़ों ब्राह्मण, साधु और संन्यासी यवन इलाक़ों में घुसते दिखाई देते हैं ताकि लोगों को यवन राज्य का जुआ गले से उतार फेंकने का उपदेश दें।

सुतरां यह उसी के प्रयत्न का परिणाम कहना चाहिये कि तक्षकशिला तक पहुँचते पहुंचते वृषल की सेना में वीर सैनिकों की संख्या दुगुनी से भी अधिक हो गई है और अभी तक नये लड़ाके और पुराने अनुभवी योद्धाओं के आने का सिलसिला जारी है। वे जरनैल जो देश पर यवनों का अधिकार होने के कारण कहीं न कहीं सिर छुपा कर छुप रहे थे आज भारत के पुनरुद्धार के लिये भारत के नवयुवक दल में स्वतंत्रता के झण्डे तले इकट्ठे हो गए हैं। चाणक्य के प्रयत्नों का सिलसिला यहां तक ही बस नहीं हो गया प्रत्युत उसने शत्रुओं के मर्मस्थल पर भी जा चोट की है। उसके दूत और गुप्तचर यूनानी सेना के ठीक मध्य में काम करते हुये दीख पड़ते हैं। उनके द्वारा उसने तक्षकशिला और अन्य यवन प्रदेशों में अपने प्रचार का काम जारी कर रखा है।

उसके दूत जहां कहीं जाते हैं वहां यथासंभव लोगों के भाव को यवनों के विरुद्ध उत्तेजित करने और वृषल के लिये श्रद्धा पैदा करने का प्रयत्न करते हैं।

वह देखो, उन्हीं में से एक कुछ बोल रहा है:—

"आर्य्यवर्ग ! पंचनन्द की स्वाधीनता का समय निकट आ गया, यवनों का उत्तुङ्ग सिर तोड़ने के लिये परमात्मा ने वृषल को यहां भेज दिया है और वह भारत-देशसे यवनों को निकाल बाहर करने के लिये बढ़ा आ रहा है। क्या आप इस भारत रक्षक सेना में सम्मिलित न होंगे? हां, क्या तुम उस वृषल की सेना में सम्मिलित न होंगे, जिसके सन्मुख और तो और वनैले जन्तु भी आदर

से सिर झुकाते हैं ? क्या आप लोगों ने सुना नहीं, किस तरह घोर वन में सोये हुए वृषल की देह का पसीना एक भयानक सिंह ने अपनी जिह्वा से सुखाया था और क्या अभी वह नूतन घटना आपने नहीं सुनी जब कि इसी कूच में एक पर्वताकार हाथी ने वन से आकर वृषल को उठाकर अपनी पीठ पर बैठा लिया था ?

"मित्रो ! मैं अपनी ओर से कुछ नहीं कह रहा हूं, यह सच्ची घटना है। आज भी आप में से कोई मनुष्य उस ऐरावत को देख सकता है जिसने हमारे सरदार को अपने कंधों पर बैठाकर मानों यह भविष्य-वाणी कही थी कि वह संसार में किसी महान् कार्य्य के लिये भेजा गया है।

"मित्रो ! ऐसे नेता की अधीनता में क्षात्रधर्म का पालन करना सौभाग्य का चिह्न है, देवता उस पर प्रसन्न होंगे। यदि जीवित रहे तो सारा का सारा पंचनद देश तुम्हारा है, जो मृत्यु ही आ गई तो सूर्य्य लोक तुम्हारे लिए तैयार है।

"उठो ! अपने देश की रक्षा के लिये, अपने घर-बारकी रक्षा के लिये, अपनी सन्तान की रक्षा के लिये वृषल की सेना में सम्मिलित हो जाओ क्योंकि ऐसा पर्व का समय फिर नहीं आयेगा।

"विजय तो होगी और अवश्य होगी। इसमें संदेह करना भूल है। जिस वृषल के साथ गांधार, वाह्लीक, कौलूत, मालव क्षुद्रक, काठी, अराट, काम्बोज जैसी जातियाँ हों, जिसकी पीठपर भारत भर की सेना हो, जिसकी स्वयं देवता रक्षा कर रहे हों और जिसका मंत्री चाणक्य जैसा अद्वितीय नीतिकार हो, उसकी विजय में संदेह करना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है। विजय होगी और होकर रहेगी। यवन भारत से निकलेंगे, और निकल कर रहेंगे, हां, वे जो इस समय इस कार्य्य में भाग न लेंगे

अनन्त काल तक अपना मुख काला कर लेंगे। क्या तुम उस दशा को पसंद करते हो ?

नहीं, नहीं, मैं यह मान नहीं सकता, मेरा अन्तःकरण इसे अंगीकार नहीं करता। इसलिये उठो ! शस्त्र सँभालो। आज वृषल की सेना, भारतसपूतों की सेना आंधी और तूफ़ान की तरह यवन राज्य को जड़ मूल से उखाड़ने के लिये चली आ रही है। उसमें सम्मिलित होकर अपना जीवन सफल करो ”

सतरहवां परिच्छेद

वृषल का कैम्प

इस प्रकार की वक्तृताओं तथा अन्य कई साधनों से महाराज चाणक्य के दूत अपना काम कर रहे थे और उनके प्रयत्न से वृषल की सेना में दिन दुगुनी और रात चौगुनी उन्नति हो रही थी।

अन्त में कई दिन लगातार चलने के पश्चात् सेना ने पड़ाव डाल दिया और एक विशेष स्थान पर जिसे मौहूर्तकों, नायकों, और वर्धक्यों ने सब प्रकार से देख-भाल कर पसंद किया था कैम्प सजाया गया।

कदाचित् हमारे पाठकों के मन में आज से पचीस सौ वर्ष पूर्व के इस कैम्प को देखने की उत्कंठा होगी; इसलिये हम उन्हें अपनी लेखनी द्वारा दिव्य चक्षु प्रदान कर भारतवर्ष की रणकला के इस एक नमूने की सैर दिखलाते हैं।

कैम्प के चारों ओर गहरी खन्दक खुदी हुई थी, दम दमे बने थे और पहरेदारों के लिये स्थायी बुर्ज बनाये गये थे, राजकीय खेमे १००० धनुष (६०० फीट) लम्बाई और पांच सौ धनुष चौड़ाई में थे, और केन्द्र से उत्तर की ओर नौ भागों में से एक में गड़े थे। इनसे पश्चिम की ओर राजकीय अन्तःपुर था परन्तु इस कारण कि नेता जो राजा के स्थान पर काम कर रहा था, अभी तक ब्रह्मचारी था, यह कैम्प खाली पड़ा था। इसके आगे अन्तःपुर (रनवास) के संरक्षकों की सेना थी उसके सन्मुख

पूजा का स्थान था, दक्षिण दिशा में हिसाब-किताब का दफ्तर और अर्थ सचिव (वज़ीर माल) का कार्य्यालय था, पश्चिम दिशा में राजा की घुड़शाला और गजशाला बनाई गई थी। इससे बाहर कोई एक सौ धनुष के अन्तर पर चार शकट मेढ़ी (गाड़ी के बांस) गाड़े गये और चक्र और दीवार बनाई गई । उन चार चक्रों में जो उन चार बांसों से ज़ाहिर होते थे, एक में महाराज चाणक्य महा मन्त्री विराजमान थे, दायें हाथ भण्डार और पाकशाला थी, बायें हाथ अन्न के कोठे और शस्त्रागार था। दूसरे भाग में पैत्रिक सेना, घोड़े तथा रथ थे । उसके बाहर शिकारी और कुत्तों के रखवाले अपने सामान के साथ मौजूद थे। गुप्तचर और सिपाहियों का कड़ा पहरा था, इन सबके होते हुए भी किसी किस्म के बाह्य आक्रमण से बचाव के लिये कूँए खोदे गये थे, दमदमे बनाये गये थे और चारों ओर लोहे के कांटे बखेरे गये थे ।

नेता के बहुमूल्य जीवन की रक्षा के लिये सिपाहियों के अठारह दस्ते थे जो बराबर पहरा बदलते थे, कैम्पों से बाहर आने और अन्दर जाने के लिये मुद्रालांछन (राहदारी का पर्वाना) लेना पड़ता था।

इस कैम्प में सरदार के खेमे के अन्दर हम वृषल और महाराज चाणक्य को किसी गहरे विचार में बैठे देखते हैं। चाणक्य कह रहा है—

चाणक्य—वृषल ! जो कुछ आपने कहा वह अधिकांश में सत्य है। गुरुजी भी यही कहा करते थे, उनका कथन था कि जोश और सैन्य बलमें से जोश बड़ा है, क्योंकि राजा यदि स्वयं दृढ़ संकल्प, पराक्रमी, जोशीला और शूरवीर हो तो मृतकों में भी जीवन डाल सकता है। एक जोशीला राजा एक भारी सेनावाले को पराजित कर सकता है।

परन्तु कौटिल्य इस मत को स्वीकार नहीं करता, वह कहता है कि जिसके पास सेना की शक्ति हो, जिसके पास धन की शक्ति हो वह जोश को खरीद सकता है। वह वीर सैनिकों और वीर सेनापतियों को ख़रीद सकता है, वह हस्ति, अश्व, रथ और युद्ध की अन्य सामग्री को प्राप्त कर सकता है। इसलिये वह अपने आप चाहे स्त्री हो वा पुरुष, अन्धा हो वा लंगड़ा, वृद्ध हो वा नवयुवक, दूसरे निर्बल राजा पर विजय प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार राजन्! गुरुजी का यह भी मत था कि धन और सेना की शक्ति की अपेक्षा मन्त्र शक्ति तुच्छ है क्योंकि मन्त्रशक्ति रखने वालों के पास यदि धन और सेना न हो तो वह क्या कर सकते हैं? मन्त्र शक्ति बिना धन और प्रजा-शक्ति के इस प्रकार नष्ट हो जाती हैं जैसे अनावृष्टि में बोया हुआ बीज।

परन्तु कौटिल्य इस बात को नहीं मानता क्योंकि वह जानता है कि मन्त्र शक्ति के सन्मुख कोई शक्ति नहीं ठहर सकती। जिसके ज्ञान-चक्षु खुले हैं और जो नीति निपुण हैं, वह थोड़े से परिश्रम से, चतुर गुप्तचरों और रासायनिक उपायों से बड़े बड़े जोशीले और पराक्रमी राजाओं का शासन छीन सकता है। जिस प्रकार महाभारत के युद्ध में श्री कृष्णचन्द्रजी की मंत्रशक्ति ने सप्त अक्षौहिणी सेना को एकादश अक्षौहिणी सेना पर विजय प्राप्त करवाई इसी प्रकार मंत्रविद्या विशारद प्रत्येक स्थानपर सिद्धि प्राप्त करता है। उसके मार्ग में चाहे कितनी ही कठिनाइयां आयें परन्तु वह उन कठिनाइयों को नष्ट भ्रष्ट कर सकता है।

वृषल! मैं तुम्हें और तुम्हारे साथी भारत सपूतों को बधाई देता हूं कि उनकी धन और जन शक्ति बढ़ रही है। परन्तु यह सब कुछ एकमात्र जोश का फल नहीं, नांहीं तुम्हारी सेना की

अधिकता का परिणाम है प्रत्युत इसमें भी मंत्र-शक्ति ही काम कर रही है।

वृषल ! ब्रह्मणों को "मंत्राधिपति" और इसी कारण सम्पूर्ण जगत का "पति" कहा गया है, और यह सत्य है, क्योंकि मस्तिष्क ही संसार पर शासन कर रहा है और मैं तुम्हें यह भी बधाई देता हूं कि यवनों को भारत से निकालने में तुम्हारे साथ ब्राह्मण और उनकी मंत्र शक्ति काम कर रही है।

इस समय मेरे दूत यवनों के देश के बाहर और अंदर काम कर रहे हैं और उनके द्वारा मैंने सर्वसाधारण को यह विश्वास दिला दिया है कि तुम्हें (वृषल को) देवताओं ने भारतभूमि का भार उतारने के लिए भेजा है। वही लोग तुम्हें धन की सहायता दे रहे हैं और उन्होंने ही तुम्हें शस्त्र प्रदान किये हैं जो यवनों के नाश का कारण होंगे।

वृषल ! मैंने इस युद्ध के लिये जो नवीन यंत्र बनाये हैं उन्होंने लोगों को आश्चर्य में डाल दिया, और इसके साथ हमारे उस दिन वाले शिक्षित हस्ति की घटना ने (जिसे वन्य गज बताया था और जो आपको अपने मस्तिष्क पर बैठाकर ले गया था) लोगों को यह पूर्ण विश्वास दिला दिया है कि देवताओं की शक्ति आपके साथ है।

परिणाम यह है कि इस समय जहां चारों ओर हमारे सहायकों के साहस बढ़ रहे हैं वहां शत्रु की सेना जी हार रही है और इसका परिणाम युद्ध के दिन निकलेगा।

मेरे दूत प्राणों का भय त्यागे शत्रु के देश में विचर कर लोगों पर तुम्हारे चमत्कार प्रकट करते हुये तुम्हारे साथियों को देवता बता रहे हैं और इसका फल यह है कि शत्रु की सेना के कितने सेनानी हमारे साथ मिलने के लिये समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

परन्तु समय थोड़ा है और अभी बहुत सा कार्य्य करना है, इसलिये मैं अपने सारे मन्त्रों की व्याख्या तुम्हारे सन्मुख नहीं करता, केवल इतना ही कहे देता हूं कि अपनी ओर से पूरी शक्ति लगाई जा रही है, विजय निश्चयात्मक है, आगे जो ईश्वर की इच्छा।

अठारहवां परिच्छेद

अग्नि पूजा

कल युद्ध का दिन है। सेनायें कील कांटे से सज रही हैं। वीर सैनिक अपने अपने शस्त्र साफ कर रहे हैं। धनुष धारी अपने धनुषबाण की देख-रेख में लगे हैं। वृषल ने आज व्रत रक्खा है, प्रातः से सांयकाल तक एक बिन्दू जल का भी उसके कण्ठ में नहीं टपका, सारा दिन सेना की देख-भाल में व्यतीत हुआ है।

सांयकाल होगया, सन्ध्योपासन का समय आ पहुँचा, महाराज चाणक्य की सम्मति पर यज्ञ-कुण्ड सजाया गया ब्राह्मणों ने अथर्वेद के मंत्र उच्चारण करने आरम्भ किये।

यज्ञ-कुण्ड एक खुले मैदान में बनाया गया है, जहांपर सेना के बड़े सेनापति और वीर भट्ट सशस्त्र सजे बैठे हैं। अग्नि देवता आज मनों घृत खाकर प्रसन्न होंगे, उनकी पाचनशक्ति बढ़ाने के लिये मनों सामग्री तैयार की गई है। खुले मैदान में अग्नि का जाज्वल्यमान होना दिल को हिला देने वाला दृश्य है। रात अंधेरी है, चारों ओर निस्तब्धता का साम्राज्य है। केवल वेद-मन्त्रों की सरस ध्वनि उठ रही है जो वेदपाठियों के मुख से निकल रही है।

स्वस्ति वाचन हुआ, शान्ति पाठ भी हो गया और यज्ञ आरम्भ हुआ, आहुति पर आहुति पड़ने लगी, स्वाहाकार के साथ अग्नि देवता की सैकड़ों जिह्वायें आहुतियों को लेने के लिये चारों ओर आकाश में लपलपाने लगीं।

आजकल का समय न था जब कि लोग बैठे ब्राह्मणों के मुंह को तकते हों और वे नाटक का स्वांग रचकर वेद-मंत्रों के अव्यक्त शब्दों को पढ़कर अपने टके बटोरने का उपाय करते हों।

नहीं नहीं यह समय वह था जब कि महाभारत के युद्ध को हुए केवल तीन सहस्र वर्ष के लगभग हुए थे, जब कि आर्यों का आर्यत्व पूर्णतया नष्ट नहीं हो गया था, यद्यपि बाम मार्ग का भयङ्कर राक्षस उसे अपनी दाढ़ में दबा रहा था फिर भी उसकी स्पिरिट अभी मर न गई थी।

हां यह वह समय था जब कि लोगों की भाषा संस्कृत थी, जब कि लोग देववाणी में बातचीत करते थे, इसलिये वेद मंत्र उनके लिये अगम्य नहीं थे जो उनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर होते।

सुतरां ब्राह्मण के मुख से जो निकलता था, उसे लोग समझते थे।

यही कारण था कि जिस समय अथर्ववेद के मन्त्र पढ़े जाते थे, वीर क्षत्रियों का रक्त उबलने लग जाता था, उनकी तलवारें म्यान में उछलने लग जाती थीं।

और यही कारण था कि आज जिस समय वह अग्नि को साक्षी रखकर परमात्मा से विजय की प्रार्थना कर रहे थे, उनकी देह और आत्मा एक हो रहे थे।

हवन-यज्ञ समाप्ति पर था, पूर्णाहुति के मनोहारी शब्द सब की वाणी से निकले और

"स्वाहा"

शब्द के साथ ही शेष सामग्री अग्निदेवता के उदर में डाल दी गई।

एकाएक अग्नि देदीप्यमान होकर भड़की, और उसके साथ ही ऊंचे होते हुये प्रकाश में एक आश्चर्यमयी दिव्य प्रतिमा यह कहती सुनाई दी—

"भारत-सपूतो ! मांगो क्या मांगते हो ! मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारी श्रद्धा और भक्ति सराहनीय है, बताओ किस लिये यह यज्ञ रचा है ।"

सबके सब आश्चर्य्य से अवाक् रह गये, किसी के मुख से कोई शब्द न निकल सका, दूसरी बार फिर बाणी हुई—

"भारत-सपूतो ? मांग लो, तुम्हारा कार्य्य सिद्ध होगा, मांगो क्या माँगते हो, देवता प्रसन्न हैं, तुम्हारी इच्छायें पूर्ण की जांयगी ।"

देखनेवालों का विस्मय और भी बढ़ गया, परन्तु समय अमूल्य था, इसलिये महाराज चाणक्य ने सबकी ओर से हाथ बांधकर प्रार्थना की—

"देव ! यह भारतसुपूत भारतको यवनों के हाथ से छुड़ाने के लिये अपना सर्वस्व परित्याग करके यहां आये हैं । देव ! यह योद्धा अपने देश व जाति के अपमान का प्रतिकार लेने के लिये यहां आए हैं, उस अत्याचार का प्रतिकार लेने के लिये एकत्र हुए हैं जो भारतवर्ष की पवित्र भूमि पर किया गया है । देव ! इनकी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो ।"

उत्तर में "तथास्तु" की आवाज़ आई और साथ ही आकाश से पुष्पों की वर्षा होती दिखाई दी ।

हवन कुण्ड के कम होते हुए प्रकाश में अग्निदेवता की प्रतिमा अभी तक चमक रही थी, जब कि उसके मुख से यह शब्द निकले—

"विष्णुगुप्त ! वृषल ! भारत–सपूतो ! यहां से एक कोस दूर उत्तर की ओर पर्वत के पश्चिम कोण में जहां तुलसी की क्यारियां लगी हैं, पांच गज गहरा गढ़ा खोदने पर तुम्हें शस्त्रों का एक बड़ा भण्डार मिलेगा, यह पाण्डव सेना के शस्त्र हैं जो अर्जुन की इच्छा पूर्ति के लिये स्वयं अश्विनी-कुमारों ने बनाये थे, उन्हें निकाल कर अपने कार्य्य में लाओ और विजय तुम्हारी है।"

देदीप्यमान अग्नि धुंधली हो गई। लोगों की आंखें तीक्ष्ण अग्नि की प्रखर तर किरणों से चौंधिया रहीं थीं, इस क्षणिक घटनाने उन्हें अवाक् कर दिया था, इसलिये जिस समय वे उस विस्मित दशा से जागृत हुए वहां ठण्डे होते हुए हवन की अग्नि के धूंए के सिवा कुछ भी न था।

योद्धा और सेनापति विदा हुए, अब उस विस्तृत मैदान में जहां अभी अभी दिव्य स्वरों का गान होता था; सिवा वृषल और चाणक्य के कोई नहीं रहा। कदाचित एकान्त में देवपूजा हो रही है, पर नहीं महाराज चाणक्य अपने विश्वस्त सेवकों को उस सुरंग के भरने के लिये कह रहे हैं जिनमें से "अग्नि-देवता" प्रत्यक्ष हुये थे। यह सुरंग यज्ञ कुण्ड के ठीक मध्य में आकर खुलती थी जिसके तीक्ष्ण ताप से उसके अन्दर खड़े होने वाले को सुरक्षित रखने के लिये अनेक मसालों का प्रयोग किया गया था।

सुरंग का मुख बन्द कर दिया गया और ऐसी विधि से बन्द किया गया कि कोई बड़ा चतुर कारीगर ही उसे देखकर यह बता सकता था कि यहां कभी कोई गढ़ा था। महाराज वृषल अपने शयनागार को विदा हुये, परन्तु महामन्त्री को अभी बहुत

काम बाकी था इसलिये वे अपने विशेष कर्मचारियों को उनके काम के निर्देश देने में लग गये।

पाठक ! रात्रि अधिक जा चुकी है, संसार के लोग प्रायः जागनेवाली रात को पसन्द नहीं करते, इसलिये हम भी आपसे कुछ घन्टों के लिये क्षमा मांगते हैं थोड़ा समय बाकी है उसमें विश्राम कर लेने दीजिए, ताकि कल के भयङ्कर संग्राम के लिए ताजा-दम हो सकें।

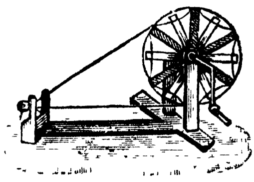

उन्नीसवाँ परिच्छेद

युद्ध से पहले

महाराज चाणक्य की नीति काम कर गई। गत रात्रि की घटना ने भारत-सपूतोंके साहस दसगुना बढ़ा दिये। उन्हें अपनी विजय का दृढ़ निश्चय हो गया। शत्रु के उन जासूसों ने जिनको आया हुआ देख कर भी चाणक्य के गुप्तचरों ने जान बूझकर आंख मीच रखी थी, इस आश्चर्य जनक घटना का समाचार अपने अफसरों तक पहुंचाया और यद्यपि उन्होंने इसको छिपाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु न जाने किस तरह दिन निकलने से पहले पहले सारे यूनानी लश्कर में यह समाचार फैल रहा था। उस लश्कर के सम्पूर्ण यूनानी और भारतीय सैनिक इसकी चर्चा कर रहे थे।

कदाचित् यही कारण था कि दिन निकलने पर उन बहादुरों के वह चेहरे जो वीरता के मद में लाल होने चाहियें थे, फीके पड़ रहे थे, उनके चित्त की दशा बिगड़ रही थी।

वृषल की सेना में सूर्योदय से पहले ही वह शस्त्र बांट दिये गए जो "अग्नि देवता ने अपने अनुग्रह से प्रदान किये थे।" उन शस्त्रों से सुसज्जि होकर वीर सैनिकों के उत्साह सहस्र गुना बढ़ गये।

सुरक्षित सेना के एक प्रबल दस्ते को कैम्प की रक्षा के लिए छोड़कर बाकी सेना को समरभूमि में सुसज्जित किया गया। सवार, पदाति, रथ और हाथियों की पंक्तियां स्थान स्थान पर फौलादी

दीवारों की तरह खड़ी कर दी गई। पदातियों की पंक्तियों में दो दो मनुष्यों के मध्य में १४-१४ अंगुली का अन्तर था। सवारों के मध्य में ४२-४२ इञ्च जगह छोड़ी गई। हाथियों और रथों के मध्य में इससे भी दुगुनी और तिगुनी, ताकि आक्रमण करते समय वे सुगमता से आगे बढ़ सकें। धनुष धारियों की पंक्तियों में पांच-पांच धनुष (एक धनुष=१२० अंगुल) का फासला था। सवारों की पंक्तियों में तीन तीन धनुष का और हाथियों और रथों की पंक्तियों में पांच पांच धनुष का। इस प्रकार दूर तक जिधर दृष्टि जाती थी मनुष्यों, घोड़ों, रथों और हाथियों की एक दीवार दिखाई देती थी जिनकी देह पर चमकते हुये फ़ौलाद की चमक आंखों को चौंधिया रही थी।

युद्ध का शंख जोर से फूंका गया। वृषल का घोड़ा पूरे वेगसे चक्कर काटता हुआ आगे बढ़ा। इस समय वह सिरसे पांव तक फौलादी वेष से परिवेष्ठित था।

उसे आता देख कर सेना ने एक स्वर से गर्जना की।

"भारत माता की जय, भारत रक्षक की जय"

वृषल ने सिपाहियों को लक्ष्य करके कहा :—"वीर पुरुषो! आज वह समय आ गया है जिसकी हम इतने समय से प्रतीक्षा कर रहे थे, जिसकी प्रतीक्षा में रातों जागते रहे, जिसकी प्राप्ति के लिये इतने वर्ष व्याकुलता में व्यतीत किये। वीरो! यवन सेना के पीछे भारत माता का तेजोमय मुख-मण्डल मुझे दिखाई दे रहा है। चलो, बढ़ो उस माता के चरणों में गिरने के लिए, उस इष्टदेवी की आराधना के लिये सिर हथेली पर लिये हुए आगे बढ़ो।

"क्षत्रिय-कुल-दीपको! अलक्षेन्द्र छल, कपट और धोखे से इस भारत माता के मुख-मण्ड को कलुषित करने का यत्न कर गया,

चलो उस कलंक को धोने का समय निकट आ गया, अपमान के जीवन से मानकी मृत्यु सहस्र गुनी अच्छी है।

"मैं जानता हूं, तुम्हारी तलवारें आगे ही म्यानों से बाहर हो रही हैं, इसलिये तुम्हें अधिक समय नहीं ठहराऊँगा। चलो, मशाकाके रण वीरों (शहीदों) का प्रतिकार लेने के लिये आगे बढ़ो। मालव और क्षुद्रक देशभक्तों के अपमान का बदला चुकाने के लिये बढ़ो, सिन्धुपार के ब्राह्मण और संन्यासियों का रक्त अभी तक प्रतिकार के लिये पुकार रहा है। आज हमारी तलवारें उन सारी बातों का बदला लेंगी, आज हमारे रक्त उन सारे कलंकों को भारत माता के मुख से धो डालेंगे। नरशार्दूलो! यूडीमोस ने धोखे से वीर पौरुष के रक्त से हाथ रंगे। उसका सिर लाने वाले के लिये एक लाख पण*। कौन इस पारितोषिक को प्राप्त करेगा ?"

सहस्रों शब्द इस अपील के उत्तर में सुनाई दिये। वृषल के चेहरे पर मुस्कुराहट आ गई और उसने कहा :—"वीर पुरुषो! मैं भी तुम्हारी तरह भारतमाता का एक सेवक हूँ, मैंने भी तुम्हारी तरह माता की सेवा में कई वर्ष व्यतीत किये हैं, इसलिये मैं आशा करता हूं कि आप लोग मुझे भी इस प्रतिष्ठा का अधिकारी बनायेंगे जिसे आप स्वयं प्राप्त करना चाहते हैं।"

फिर सेना ने एक स्वर से निनाद किया—"ले चलो, ले चलो हमें, मृत्यु में व जीवन में हम तुम्हारे साथ साथ हैं।"

इस शत्रु हृदय-विदारिणी भीषण गर्जना में महाराज चाणक्य की जोरदार आवाज़ यह कहती हुई सुनाई दी :—"वीरो! वेद भगवान् बतलाते हैं कि जो गति सहस्रों यज्ञ करने से, लाखों ब्राह्मणों को दान देने से, लाखों वर्ष घोर तपस्या करने से प्राप्त

* उस समय का भारतीय सिक्का।—लेखक।

होती है, वह रण भूमि में मरने वालों को अनायास ही मिल जाती है।

"यह भगवान् का कथन है यह ईश्वरीय वाणी "श्रुति" का वचन है और इसके अनुसार उभय लोक में तुम्हारा लाभ है। यदि आज तुम लोग यवनों को भारत भूमि से निकाल देने में सफल हो गये तो भारत तुम्हारा है और जो बलि हो गये तो बलिदान का मुकुट पहने, सूर्य्यलोक का राज्य तुम्हारे लिये है, अन्यथा शास्त्रों का कथन है कि जो पुरुष समर भूमि से भागता है ऐसे पुरुष के लिये जल देना भी पाप है क्योंकि वह नर्कगामी है।

"वीरो! अग्निदेवता स्वयं तुम्हें निश्चय दिला चुके हैं। देवताओं के अस्त्र शस्त्र आज तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं इसलिये भय काहे का। चलो, भारत माता आज तुम से अपना दूध सफल कराना चाहती है।"

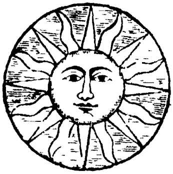

बीसवां परिच्छेद

युद्ध

महाराज चाणक्य और वृषल के शब्दों ने बारूद में चिंगारी का काम किया। वह राजपूत जो वर्षों से दुःख और शोक की अग्नि में जल रहे थे, जिनके हृदय देश प्रेम की ईश्वरीय अग्नि के प्रकाश से प्रकाशमान हो रहे थे उनके लिये वे शब्द असह्य हो रहे थे। उनका क्रोध से उबलता हुआ रुधिर पहले ही अधीर हो चुका था। धनुष धारियों की सेना आगे बढ़ी, ठीक उसी समय पूर्व की ओर से (जिधर वृषल की सेना की पीठ थी) आंधी का एक तूफ़ान उठा जिसने उसके बाणों में दुगुनी शक्ति भर दी।

यूनानी बहादुरों ने वायु के प्रतिकूल होते हुये भी भारतीय धनुष धारियों की तुंदी और तेज़ी का धैर्य और साहस से मुकाबिला किया। भारतीय सेना को आगे आते देख कर यूडीमोस ने एक ओजस्विनी वक्तृता देते हुए कहा:—

"बहादुरो! वह देखो, हिन्दुस्तानी गीदड़ यूनानी शेरों के मुंह में दाखिल होने के लिये बढ़े चले आते हैं। यह खुदा की देन है, यह उस बरतर हस्ती की तुम लोगों पर मेहरबानी है। चलो, आगे बढ़कर उनका इस्तक़बाल करो। वे लोग आज उस सबक़ को भूल रहे हैं जो सिकन्दर आजम ने अभी थोड़ा अरसा नहीं गुजरा इन्हें सिखाया था। तुम्हें इन्हें फिर से सबक़ देना है, तुम्हें, जो सिकन्दर की मुहिम्मों में उनके शरीक़ थे, तुम्हें, जो उसके जायज़ वारिस हो, इन वहशी हिन्दुस्तानियों

के कान खींच कर इन्हें इनकी असली पोजीशन बतानी है। इसलिये चलो हौसला और हिम्मत से इस खुश गवार फ़र्ज को पूरा करो ताकि दुनियां को मालूम हो जाय कि सिकन्दर का जिस्म अगर हमसे अलहदा हो गया तो उसकी रूह अभी तक उसी तरह हमारे अन्दर मौजूद है।"

दोनों सेनाएं गुत्थम-गुत्थ हो गईं, अपने पराये की पहचान जाती रही। सिपाही और घोड़े रक्त में नहा गये। रथ और हाथी मृतकों पर पांव रखते हुये बढ़ने लगे।

वृषल की तीक्ष्ण दृष्टि उस समय चारों ओर देख रही थी, और उसका पवन का सा उड़ने वाला घोड़ा जहां आवश्यकता होती थी, पलक मारते पहुँच जाता था। उसकी तलवार आज बिजली सी चमकती थी, उसके हाथ आज बड़ी दृढ़ता से शत्रु के दलों के दल साफ़ कर रहे थे।

लड़ाई का ज़ोर और बढ़ गया। लड़ते लड़ते सूर्य्य सिर पर आ गया। यूनानी बहादुरों की आंखें सामने पड़ती हुई सूरज की किरणों से चौंधिया रही थी परन्तु उनकी वीरता की प्रशंसा करते हुए यह कहना पड़ता है कि इतनी बाधाओं के होते हुये भी उनके साहस उसी तरह अचल थे। गत रात्रि की अपूर्व घटना से जो भय उनके हृदय पर युद्ध से पहले छाया हुआ था वह इस भीषण मार काट के जोश में दूर हो चुका था और वे इस समय वीरता, साहस और दलेरी के कारनामों के अतिरिक्त अन्य सब बातों की ओर से बेपर्वाह हो रहे थे। यही कारण था कि विजय का पूरा भरोसा होते हुए भी वृषल के मुख से उनकी वीरता की प्रशंसा के वाक्य निकल ही जाते थे।

इधर काठी वीर आज अपने वंश के कारनामों को पूरे तौर पर प्रत्यक्ष कर रहे थे। उनकी तलवारें आज सांगले को विध्वंस करने वालों से बदला लेने पर तुली हुई थीं। उनके दिलके अन्दर

आज एक आग सी जल रही थी, उनकी आंखों के सामने सांगले के मकानों से निकलते हुए चिंगारे फिर रहे थे यही कारण था कि इस समय उनके आक्रमण के वेग को रोकना मनुष्य-शक्ति से बाहर था। उनकी तलवारों में आश्चर्य्यजनक फुर्ती थी। कदाचित् उन्हीं की प्रशंसा में कवि ने कहा है:—

"वे पांव जिधर हाथ से चलती हुई आई।
नदी उधर इक खून की उबलती हुई आई।
दम भर में वह सौ रङ्ग बदलती हुई आई।
पी पी के लहू लाल उगलती हुई आई।
हीरा था बदन रङ्ग जुमर्रद से हरा था।
जौहर न कहो पेट जवाहर से भरा था।
मौजूद थी हर ग़ौल में और सबसे जुदा भी।
दम ख़म भी लगावट भी सफ़ाई भी अदा भी।
इक घाट पे थी आग भी पानी भी हवा भी।
अमृत भी हलाहल भी मसीहा भी कज़ा भी।
क्या साहबे जौहर थी अजब ज़र्फ़ था उसका।
मौका था जहां जिसका वहीं सर्फ़ था उसका॥

मालव बहादुरों की तलवारें जिनकी मार से सिकन्दर ने भी कानों हाथ धरा था आज गाजरों की तरह यवन सेना को काट रही थीं। जो सामने आया बचकर नहीं जा सका, जो मुकाबिले पर पहुँचा जीवित बचकर नहीं जा सका।

खट खट खट खट तेगा बाजे, बाजे छपक छपक तलवार।
फट फट फट फट पटा फरक रहे, सर सर परत सैफ़ की मार।
जैसे लोहे को घन बाजे बख़्तर पोश बजे तलवार।
सूंड लपेटा हाथी भिड़ गये ऊपर पड़त महावत मार।
घोड़े के सङ्ग घोड़े मिल गये ऊपर पड़ी बज्र की मार।

पैदल के सङ्ग पैदल भिड़ गए और असवारन से असवार।
मिली पालकी रजपूतन की बीते पेश कब्ज की मार।
जो ठाढ़ा है जहां दङ्गल में तासो तहां बजे तलवार।
कट कट मास गिरे धरनी पर बिजली चाल चले तलवार।
बंधे चौतरा हैं मूण्डन के और लाशों के उठे पहाड़।

एकायक वृषल की आँखें यूनानी लश्कर के पीछे दूर फासले पर उड़ती हुई गर्द की ओर उठ गईं। एक क्षण के लिए उसका हृदय धड़क गया। क्या शत्रु को सहायता पहुँच गई? इस कल्पना ने उसे सोच में डाल दिया। दोनों सेनायें मारकाट करतीं हुईं इस तरह ठहर गईं मानों किसी अदृश्य शक्ति ने बीच में आकर भुजाएं पसार कर उन्हें रोक दिया। एक साझे विचार से विचलित होकर सब की आंखें उस अज्ञात मित्र व शत्रु की ओर उठ गयीं जो दौड़ते हुए घोड़ों के खुरों से उड़ती हुई धूली को भी पीछे छोड़ता हुआ चला आता था, कुछ क्षणों तक दोनों पक्षों पर निस्तब्धता सी छाई रही जिसके पश्चात् एकाएक वायुमंडल में

"भारत माता की जय"

की शत्रु हृदय बिदारक ध्वनि गूञ्ज उठी। वृषल ने गौर से देखा तो सिरसे पांव तक लोहे से परिवेष्ठित उस तेजस्वी ब्राह्मण की सूरत देख पड़ी जो आज परशुराम की तरह भूमण्डल से यवनों का बीज नाश करने के लिये इस प्रबल सेना का परिचालन कर रहा था। यह चाणक्य था।

महाराज चाणक्य के मुख से निकला—"सावधान, एक भी मनुष्य बचकर न जाय" और उनकी वह सेना भूखे सिंह के समान यवन दल पर टूट पड़ी।

मारकाट का मैदान गर्म हुआ, क्षणमात्र में लाशों के ढेर लग गये परन्तु यूनानी सेना के लिये उभय मुख शत्रुसे लड़ना

असम्भव सा हो रहा था। यद्यपि यूडीमोस ने उसके टूटते हुये साहस को स्थिर रखने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु वृषल की विद्युत गति खड्ग और चाणक्य की भीषण मारकाट के सामने उसका शब्दजाल निष्फल था।

एक कवि ने इस समय का चित्र इस प्रकार खींचा है :—

तन लोटता यहां तो तड़पता था सिर उधर,
ज़ख्मी पिदर इधर था तो बेजां पिसर उधर,
इक बेहवास इस तरफ़ इक बेख़बर उधर,
दरिया लहू का बहता था रण में इधर उधर,
इस नहरे खूं में सर जो दलेरो के गिरते थे,
मिस्ले हुबाब चार तर्फ बहते फिरते थे।

भारत-सपूतों ने आज महाराज चाणक्य के युद्ध को देखा तो सहसा मुंह से वाह वाह निकलने लगी। आजतक उन्हें यही पता था कि वे केवल नीति के अवतार हैं, उनके मंत्र के सामने किसी की नहीं चलती, परन्तु उन्हें यह ज्ञान न था कि इनकी भुजाओं में भी उतना ही बल है जितना कि मस्तिष्क में। उन्हें यह पता नहीं था कि यह निहत्था कृष्ण समय पड़ने पर दूसरा द्रोणाचार्य्य बन सकता है। उन्हें यह आज पहली बार मालूम हुआ कि इस साधारण सी देह के अन्दर एक महान् योद्धा का आत्मा छिपा हुआ है। उन्हें अब ज्ञान हुआ कि मंत्र विद्या के पण्डित यंत्र विद्या से अपरिचित नहीं हैं।

थोड़े ही समय में यूनानी सेना के पांव उखड़ गये और ऐसे उखड़े कि यूडीमोस के जी तोड़ प्रयत्न करने पर भी न संभल सके।

वीर वृषल और उसके रणबांकुरे साथियों ने भागते हुए शत्रुओं का पीछा करना चाहा परन्तु महाराज चाणक्य की

सम्मति ने उन्हें इससे रोक दिया। उन्होंने कहा—"शत्रु को अतिशय कष्ट देकर उसे अंतिम शस्त्र उठाने पर विवश न करो, क्योंकि जीवन से निराश हुई सेना के आक्रमण को रोकना असम्भव है।

इक्कीसवां परिच्छेद

घेरा

विजयमाल भारत-सपूतों के कण्ठ में पड़ी। चारों ओर से बधाइयाँ आने लगीं। आस-पासके प्रान्तों के लोग अपनी आधीनता प्रगट करने में एक दूसरे से बढ़ने लगे।

परन्तु वृषल और चाणक्य अभी सन्तुष्ट न थे। क्योंकि यद्यपि यवन सेना के पांव उखड़ चुके थे और वह समर भूमि से पशुओं की भांति जिधर तिधर भाग खड़ी हुई थी, तथापि उन्हें यह मालूम था कि यूडीमोस कच्चा खिलाड़ी नहीं, इसलिये उन्हें कुछ भी आश्चर्य न हुआ जब यह पता लगा कि यह तक्षकशिला के दृढ़ दुर्ग में बैठ गया है।

इस दृढ़ दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल दिया गया। चारों ओर सेना के दल बादल छा गए, जिससे पक्षी का भी पर मारकर बाहर निकल जाना असम्भव था।

परन्तु यूडीमोस ने कई मास की सामग्री एकत्र कर रखी थी, इसलिये उसे भरोसा था कि वह बहुत समय तक निश्चिन्त होकर दुर्ग में रह सकता है और कौन जाने इतने समय में क्या कुछ देखने में आये।

दूसरी ओर कमाण्डर-इन-चीफ और उसके चतुर मन्त्री भी रण विद्या में अपने समय के अद्वितीय नीतिकार थे। इसलिये वे चिरकाल तक इस तरह मैदानों में पड़े रहकर अपने बल को क्षीण करना नहीं चाहते थे।

सुतरां एक प्रबल सेना को जिसकी संख्या दिन पर दिन बढ़ रही थी, घेरे पर नियुक्त करके वृषल ने दूसरे यूनानी नगरों और किलों पर आक्रमण कर दिया और थोड़े दिनों में ही निकाया, व्यूसीं, फीला और अन्य यूनानी नगर और प्रदेश भारत-सपूतों के अधिकार में आ गये। इस प्रकार शत्रु की सहायता को यथा सम्भव नष्ट करके उसने फिर तक्षकशिला की ओर मुख किया, जहां इतने समय में उनके वीर सेनापतियों और गुप्तचरों की सेना ने बहुत सा रास्ता साफ कर रखा था।

तीन प्रहर रात्रि बीत चुकी है। नीले आकाश पर घिरते हुये मेघों से घटाटोप अंधेरा छा गया है। प्रायः सबके सब लोग सो चुके है। चारों ओर कोई शब्द सुनाई नहीं देता। केवल पहरेदारों के पांवों की चाप कभी कभी सुनाई देती है जो दुर्ग की प्राचीर पर इधर उधर टहलते हुये दुर्ग की रक्षा पर लगे हुए हैं। इस समय प्राचीर के नीचे हमें कुछ मनुष्यों की सूरत दिखाई देती है, जिनकी संख्या एक एक करके बढ़ रही है। चुपचाप यह मनुष्य समूह दुर्ग के एक ओर एक बड़ के नीचे पहुंच गया, जहां पहुंचते ही उनमें से एक ने बहुत ही हल्की सी सीटी बजाई। सबके कान इस इशारे का उत्तर सुनने में लग गए। एक मिनट दो मिनट बीत गये और कोई उत्तर न आया। ओह! यह चन्द मिनट कितने लम्बे समय के बराबर बन रहे थे इसे कुछ वही लोग जान सकते हैं जिन्होंने इस प्रकार कभी किसी की प्रतीक्षा की हो। कुछ मिनट और बीत गये और दुर्ग की प्राचीर पर खड़े हुए पहरेदार की लालटैन चमकी, परन्तु यह सब के सब घने बड़ के नीचे हो रहे थे। इसलिये उनकी आँखें उन्हें न देख सकीं।

पहरेदार आगे चला गया, लालटैन का चमकता हुआ

प्रकाश आंखों से ओझल हो गया, तो एक और महाकाय मनुष्य का आकार उनकी ओर बढ़ा, जिसके होंठों पर यह था।

"भारत"

यह शब्द इतनी सावधानी और इतने धीमे स्वर से कहा गया था कि यदि सुननेवालों का ध्यान पूर्णरूप से इधर न होता तो कदाचित् कोई ही इसे सुन सकता।

उत्तर में भी यही शब्द कहा गया। फिर आवाज आई—'इन्दु'

"हां वृषल।"

"ठीक-ठाक?"

"चले आइए।"

सबके सब बिना कुछ मुंह से कहे, बोलने वाले के पीछे हो लिये। रात्रि अंधेरी और रास्ते का ज्ञान नहीं था, इसलिये बड़ी चाकसी से चलना पड़ता था। ख्याल यह भी था कि एक भी क़दम फिसलना और एक भी ठोकर का लगना सब के विनाश का कारण हो जायगा। इसलिये भी अतिशय सावधानी की आवश्यकता पड़ती थी।

पेचीले मार्गों से होता और चक्करदार पगडण्डियों से गुज़रता हुआ, इन्दु इस छोटे से दल का परिचालन कर रहा था। कभी कभी वह दुर्ग की प्राचीर से बहुत दूर हट जाता, जैसा कि पहरेदारों की लालटैनों के प्रकाश के दृष्टि से ओझल हो जाने पर मालूम होता था और कभी किसी समय उनके बहुत निकट पहुँच गया प्रतीत होता था।

लग भग एक घण्टा तक यह कठिन यात्रा जारी रही, जिसके पश्चात् इन्दु ठहरता हुआ दिखाई दिया। इस समय उसके हाथ कान के पीछे थे।

कुछ देर चुप चाप रहने के पश्चात् उसने जिह्वा को दोहरी

करके गीदड़ की आवाज की नकल की । तत्काल कई ओर से कई गीदड़ों का 'मम पिता राजा भूत' का कोलाहल सा होने लगा ।

इस कोलाहल में कई मनुष्यों के अलग अलग दल इस ओर बढ़ते हुये देख पड़े, जिधर वह लोग खड़े थे ।

"सीढ़ियां तैयार हैं ?"

"बिलकुल तैय्यार । संतरी कत्ल कर दिया गया, अब हमें अपने काम के लिये आधा घन्टा और मिल सकता है ।"

इन शब्दों को सुनकर सारे के सारे वीरों के चेहरे आनन्द से चमकने लगे । सीढ़ियाँ उठा ली गईं और जहां इन्दु के आदमियों ने बताया था, कुछ मिंटों में दीवार के साथ खड़ी करदी गई । दूसरे क्षण सैकड़ों वीर दुर्ग की दीवार पर चढ़ कर दूसरी ओर फाँद रहे थे ।

परन्तु ऐं ! यह क्या हुआ ! दुर्ग में अलार्म बज गया । क्या उनकी हरकतों को देख लिया गया ।

कुछ क्षण और व्यतीत हो गए और बहुत सी मिसालें उस तरफ बढ़ती हुई दिखाई दीं जिधर हमारे वीर उतर रहे थे ।

परन्तु वृषल और उसके साथी अपना काम कर चुके थे । इस समय तक वह दुर्ग के अन्दर थे, एकाएक वृषल के होंठों से—

"भारत माता की जय"

की ध्वनि गूंजती हुई सुनाई दी, जो एक मिनट में गुम्बज की आवाज़ की तरह सैकड़ों होठों से निकल रहीं थीं ।

वीर राजपूतों ने जोश में आकर आक्रमण कर दिया । पलक मारते काली और अंधेरी रात रक्त से रंग गई, भूमि पर लाशों के ढेर लग गये ।

अन्धेरी रात में युद्ध ! सोये हुये वीर बिस्तरों से उछल पड़े

चारों ओर कोलाहल मच गया। शत्रु यहां वहां सब स्थानों पर था, इसलिये कोई न कह सकता था कि वह अपने मनुष्य पर शस्त्र चला रहा है या पराये पर।

वृषल की सेना इस समय लड़ती भिड़ती दुर्ग के फाटक की ओर बढ़ रही थी। दुर्ग का फाटक उनका उद्दिष्ट स्थान था।

इधर उन्हें दुर्ग के अन्दर पहुंचाकर इन्दु और उसके साथी नगर की गलियों में लोप हो चुके थे और उनके द्वारा यह समाचार बच्चे बच्चे के कानों तक पहुँच गया था कि भारत-सपूतों की सारी सेना दुर्ग के अन्दर है।

साधारणतया अन्धेरे में खड़ा हुआ मनुष्य अपने साधारण क़द से दुगुना दिखाई देता है, फिर भय से कांपते हुए मनुष्यों को यदि वृषल के पांच सौ वीर पांच सहस्र से अधिक दिखाई दे रहे थे तो आश्चर्य्य क्या?

और आश्चर्य्य से बढ़कर आश्चर्य्य यह था कि स्वयं दुर्ग के अन्दर सेना का एक बड़ा भाग इन्दु के निरन्तर प्रयत्न से वृषल के साथ मिलने का अवसर ढूंढ रहा था।

इसलिये "भारतमाता की जय" की ध्वनि सुनते ही और इस समाचार के पहुँचते ही कि भारतीय सेनायें दुर्ग के अन्दर घुस आई हैं उनकी पंक्तियों में भी भारत का जातीय जयकार गूंजने लगा, जिसने वृषल की थोड़ी सी सेना की आवाजों के साथ मिल कर यवन सेनापति और उनकी सेना को विश्वास दिला दिया कि अब दुर्ग हाथ में नहीं रह सकता।

सब ओर घबराहट फैल रही थी, चारों तरफ शत्रु ही शत्रु दिखाई देते थे। सुहृद् मित्र सब के सब यह सम्मति दे रहे थे कि भाग जाने में ही बचाव है, इसलिये उनकी सम्मति से यडीमोस केवल ३००० सहस्र प्यादों, पांच सौ सवारों और १२५

हाथियों की छोटी सी एक सेना लेकर दुर्ग के चोर फाटक से बाहर निकल गया।

पाठक ! यह प्यादे और सवार वह थे जो अपने सर्दार के लिये प्राण तक पर खेल जाने को तैयार थे।

इस प्रकार तक्षकशिला का प्रबल दुर्ग एक बार फिर भारतीय राज्य का भाग बन गया।

बाईसवां परिच्छेद

यूडीमोस का परिणाम

तक्षक शिला विजय हो गई और उसके साथ ही भारत वर्ष से यवन राज्य का अन्त हो गया। यवन सेनापति के भाग जाने से यवनों की रही सही आशायें टूट गईं। छोटे छोटे दो चार नगर बाकी थे, बारी बारी वे भी वृषल के अधिकार में आ गये।

इस प्रकार मिस्टर विन्सैन्ट ए स्मिथ साहब (V. A. Smith) के शब्दों में सिकन्दर आजम की मृत्यु के "तीन वर्ष के अन्दर अन्दर ही" भारतवर्ष से यूनानी राज्य के सब चिह्न मिट गये। वह राज्य जिसे प्रसिद्ध विजेता ने इतते रक्तपात से प्राप्त किया था, उसकी मृत्यु के तीन वर्ष पर्य्यन्त भी उसके उत्तराधिकारियों के हाथ में न रह सका।

यूडीमोस भारत से चला। चाणक्य की सर्वदर्शी आंख से उसका भागना छिपा नहीं रह सकता था, परन्तु उसे बिना रोक-टोक के चले जाने दिया गया, क्योंकि उस सर्वज्ञ नीतिकार से यह बात छिपी हुई नहीं थी कि मकदुनियां (Macedonia) पहुँचने तक रास्ते में सैकड़ों शत्रु विद्यमान हैं, जो यूडीमोस को उसके पापों का दण्ड दे सकेंगे।

सुतरां हुआ भी यही। भारत से रवाना होकर वह सीधा सिकन्दर के एशियाई राज्यों के प्रधान शासक यूमीनीज़ (Eumenese) के पास पहुँचा जो उस समय सिकन्दर के दूसरे

जरनैलों, तालिमी, पैथून, सैल्यूकस, नरचोज़ और ऐन्टीगोनोज के साथ लड़ रहा था।

इस युद्ध में पहले पहले यूमीनीज़ का पासा भारी था और कदाचित् इसी लिये यूडीमोस ने उसकी शक्ति में अपनी शक्ति को मिला देना उचित समझा, परन्तु कहावत है—"चरण पड़े शनिचर के और बस्ती भई उजाड़।" उसके पहुँचने के कुछ समय पश्चात् ही यूमीनीज़ के भाग्य ने पल्टा खाया और वह शत्रु के हाथ मारा गया।

स्वामी के साथ यूडीमोस की भी बारी आ गई और ऐन्टीगोनोज ने अन्त में उसे भी फांसी पर लटका दिया।

यह परिणाम था उस मनुष्य का जो भारत का सम्राट बनना चाहता था, जिसने इस लालसा को पूर्ण करने के लिये महाराज पौरुष के प्राण लिये। जो इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये उचित अनुचित सब कुछ कर गुजरता था। जो अपने रास्ते की संपूर्ण बाधाओं को अपने ख़ञ्जर से दूर करना चाहता था। परन्तु हाय!

"आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं,
सामान सौ बरस का है पलकी ख़बर नहीं।"

जिसे यह मालूम न था कि वही हथियार जिसे इसने अपने शत्रु के गले पर फेरा है, उसका ही नहीं वरं यूनानी राज्य के विनाश का कारण होगा। यही हाथ जिसे वह अपने शत्रु के विरुद्ध उठा रहा है; अंजान में उसके अपने ही विरुद्ध उठ रहा है।

सच है सर्वशक्तिमान परमात्मा की रचना का आर पार नहीं। मनुष्य अपनी अल्पज्ञ बुद्धि से उस सर्वज्ञ परमेश्वर का भेद जानना चाहता है, हाथ की अंजलि से समुद्र को पीना चाहता है।

मनुष्य! प्राकृतिक पदार्थों की चमक से चौंधियाई हुई आंखों वाला मनुष्य! समझता है कि वह अपने भाग्य का स्वामी है उसे कर्मों की मर्य्यादा में रखने के लिये कोई शक्ति विद्यमान

नहीं परन्तु उसकी आंखें खुलती हैं, उस समय जब कि न्यायकर्ता का दण्ड उसकी पीठ पर पड़ कर कमर तोड़ देता है।

परन्तु ऐसा मनुष्य मूर्ख है, उस कबूतर के समान जो बिल्ली को देख कर आंखें मीच लेता है और यह समझकर कि अब उसके सामने संसार नहीं है अपने आपको धोखा दे रहा है। वह ईश्वरीय नियमों को समझता नहीं, इसलिए नहीं जानता कि कब और किस समय उसके पापों की नौका भरने वाली है और मन-मानी करने के लिये अपने आपको स्वच्छन्द समझता है।

परन्तु एक समय आता है जब ईश्वरीय हाथ उठता है और बड़े ज़ोर से उठता है। उस समय ऐसा मनुष्य रोता है पछताता है सिर धुनता है परन्तु अब पछताये क्या होत जब चिड़ियां चुग गईं खेत।

इसलिये अय संसार के लोगो! इतिहास को पढ़ो और उसकी शिक्षा को अच्छी तरह रट लो कि पछताने सोचने और समझने का समय वह नहीं है जब कि दण्ड मिल रहा हो, प्रत्युत् वह जब कि तुम कोई कर्म करते हो। कर्म करके यदि तुम परमेश्वर से प्रार्थना करते हो कि वह तुम्हारे पापों को क्षमा करदे, तो उसका अर्थ सिवा इसके और कुछ नहीं कि तुम नियम भंग कर लो, पाप करलो, अपराध करलो, परन्तु मैजिस्ट्रेट तुम्हारी चीख़ पुकार को सुनकर, तुम्हारे रोने और सिर धुनने को सुनकर, तुम्हें दण्ड न दे।

निश्चय जानो, यह भूल है। सर्व शक्तिमान परमात्मा स्वयं अपने नियम को कभी भंग नहीं करता कहां यह कि यह नियम के तोड़ने वालों को प्रोत्साहन दे। इसलिये डरो, उस समय से जब कि तुम्हें तुम्हारे पापों का दण्ड दिया जायगा और पापों से बचने का प्रयत्न करो ताकि—

न हो बांस न बजे बांसुरी

फिर तुम्हें किसी से डरने की आवश्यकता नहीं, और तो और सर्व शक्तिमान परमात्मा से भी डरने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उन्हें शासन करने की इतनी इच्छा नहीं कि तुम्हारे अन्तः करण और आत्मा को जकड़ कर अपने वश में रखने की चेष्टा करें ।

तेईसवां परिच्छेद ।

राज्य-सभा का निर्णय

भारत सुपूतों के नेता एकत्र हैं । आज इस प्रस्ताव पर विचार होगा कि अब जब कि उनका उद्देश्य पूरा हो गया है । भविष्य के लिए उनकी नीति क्या होनी चाहिए । भविष्य के लिए विचार करने की आवश्यकता हुई है और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए आज की सभा निर्धारित की गई है ।

वृषल, चाणक्य, इन्दु, काठी राजपूतों के सर्दार, मालव, क्षुद्रक वीरों के प्रतिनिधि, कौलूत, गांधार, तक्षक शिला, सुभीत राष्ट्र, अभिसार प्रदेशों के मुखिया विद्यमान हैं और भविष्य की नीति पर विचार किया जा रहा है । महाराज चाणक्य ने प्रस्तावना के प्रारम्भिक वचनों में कहा :—

"इस माननीय सभा के सभासदो ! यवन राज्य भारत से निर्मूल हो गया । वह उद्देश्य जिसके लिये आपके नेता ने घरबार छोड़कर बनवास ग्रहण किया था, पूरा हो गया । अब भविष्य में जो कुछ करना हो आपकी इच्छा पर निर्भर है ।

वृषल का उद्देश्य पूरा हो गया अब मगध उसको उसकी सेवाओं के लिए आमन्त्रण दे रहा है, भारत के अन्य प्रदेश जिनमें अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं दुहाई देते हुए उसकी चित्त वृत्ति को अपनी ओर खेंच रहे हैं ।

इसलिये मैंने उसे उसकी प्रतिज्ञा याद दिलाई है (जिसे वह आज तक भूला नहीं था) और उसने बड़ी प्रसन्नता से उसे पूरा करने के लिए अपनी इच्छा प्रगट की है ।

परन्तु यहां से चलने से पहले वह अपने उन परिश्रमों को सार्थक होता देखना चाहता है जो पंचनद देश से यवनों को निकालने में लगे हैं। वह पंचनद देश को मित्रता की दृढ़ रज्जु में बांध कर एक दूसरे की सहायता करता देखना चाहता है।

इसलिए आप कोई ऐसा प्रबन्ध सोचें जिससे भविष्य में किसी प्रकार का भय न रहे।

आप जानते हैं कि इस समय यवनों के सेनापति एक दूसरे से लड़ रहे हैं, परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि वे चिरकाल तक लड़ते नहीं रह सकते। उनका परस्पर युद्ध समाप्त होगा और अवश्य समाप्त होगा और फिर उनकी दृष्टि भारत की ओर मुड़ेगी। हमें उस समय के लिए कटिबद्ध रहना चाहिए।

भारत को जबतक अन्य देशवासियों ने नहीं देखा था, उसे तनक भी भय न था; परन्तु अब तो अलक्षेन्द्र ने उसका द्वार खोलकर संसार को बतला दिया है कि इस देश के वासी एक दूसरे से लड़ते हुए आक्रमण करने वाले की सहायता करने के लिए उद्यत रहते हैं, तो यह अधिक समय तक स्वाधीन नहीं रह सकता।

हां, मैं कहता हूं, संसार को पता लग गया है कि भारतवासी (जिनके खड्ग ने कभी संसार को कंपायमान कर दिया था) एक दूसरे के प्राण लेते हैं, इसलिए इस देश को विजय करना कोई कठिन नहीं।

सुतरां प्रथम इसके कि हमारी शक्तियां विसर्जित हों, हमें भविष्य के लिए कोई प्रबन्ध सोचना आवश्यक होगा ताकि अलक्षेन्द्र के पश्चात् उसके आनेवाले उत्तराधिकारी हमारे परिश्रमों पर इस प्रकार धूल न डाल दें जिस प्रकार अलक्षेन्द्र के परिश्रम पर हमने डाल दी है।"

चाणक्य की सारगर्भी वक्तृता को सुनकर सबके सिर सोच में झुक गए।

निस्सन्देह वह प्रस्ताव बड़ा ही महत्वपूर्ण था, और पूरा सोच-विचार के योग्य भी।

थोड़ी देर पीछे काठी राजपूतों के प्रतिनिधि ने सिर ऊँचा करके कहा :—

"पूज्यनीय गुरुजी, माननीय नेता और सन्मान के योग्य सभासदो! जो कुछ कहा गया है वह सर्वथा सत्य है। संसार आज महाराज चाणक्य को सर्वज्ञ कहता है और इस नाम के योग्य भी है क्योंकि उनकी सतर्क बुद्धि वह कुछ देखती है और सोचती है जिसे हमारी स्थूल बुद्धियां देख और सोच नहीं सकतीं।

निस्सदेह जब तक भारत को किसी अन्य देशवासी ने नहीं देखा था, हम आपस में लड़ते और झगड़ते हुए भी सुरक्षित थे, क्योंकि बाहर कोई हमारी ओर आंख उठाकर देखने वाला नहीं था।

परन्तु! आज दशा बदल चुकी है, आज हमारे छिद्रों का विदेशियों को पता लग गया है, और हमें या तो उन छिद्रों को बंद करना होगा अथवा सदा के लिए बरबाद हो जाना होगा, क्योंकि सदैव वृषल और चाणक्य उत्पन्न नहीं हो सकते जो हमारी बिखरी हुई शक्तियों को इकट्ठी करके शत्रु का मुक़ाबला कर सकें।

मैंने इस प्रश्न पर सोचा है और मेरे देशवासियों ने भी इस पर विचार किया है और हमारे नेताओं की यह सम्मति है कि भारत वर्ष उस समय तक परस्पर झगड़ों को नहीं छोड़ सकता जब तक कि कोई अधिक शक्तिशाली हाथ उसे उन्हें छोड़ने पर विवश नहीं करेगा।

अर्थात् जब तक हमारी बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में पिरोने वाली कोई शक्ति न होगी, हम एक नहीं हो सकते।

इसलिए हमारी सम्मति यह है कि भारत के छोटे छोटे राज्यों को बलवान बना कर एक दूसरे की सहायता करने के योग्य बनाने के लिए आवश्यकता है कि उनके सिर पर एक प्रबल बलशाली राज्य स्थापित किया जावे, जो उनके परस्पर विरोध को मिटाने की शक्ति रखता हो।

इस राज्य में सारे छोटे छोटे राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों ताकि अपने अपने देशवासियों के विचार और स्थिति का भली भांति वर्णन कर सकें।

सभा जनो! मेरी जाति आरम्भ से लेकर आज तक बिना राजा के चली आई है और वह आजतक कभी किसी मनुष्य को अपना शासक स्वीकार करने को तैयार नहीं हुई, परन्तु वर्तमान युद्ध ने इसे यह विश्वास दिला दिया है, कि उसे इस समय एक मनुष्य ऐसा मिल गया है जो भारतीय राज्यों की सार्वदेशिक सभा का प्रधान अथवा भारत का महाराजाधिराज बन सकता है जो अपनी बलवान भुजाओं से भारत को सदा के लिये शत्रुओं से सुरक्षित रख सकता है और वह हमारा वर्तमान नेता वृषल है।

इस वक्तृता ने सभा-स्थित लोगों के लिए अंधेरे में प्रकाश की एक झलक दिखा दी और अन्तिम शब्दों पर तो जोश का यह हाल था कि चारों ओर से "साधु साधु" के सिवा कोई शब्द कान में न पड़ता था।

कुछ जोश कम हुआ तो मालव सरदार सन्मुख खड़ा हुआ, जिसने कहा :—

"निस्सन्देह आज काठी सरदार ने लक्ष्य पर तीर मारा है। हमारे वर्तमान झगड़ों को मिटाकर हम लोगों को एक-मन बनाने

वाला कौन है ? आपस में लड़ते हुए हम लोगों को मिलाने वाला कौन है ? भारत देश से यवनों को निर्मूल करने वाला कौन है, और भारत को भविष्य में सब प्रकार के शत्रुओं से कौन बचा सकता है ? इन सारे प्रश्नों का उत्तर एक "वृषल" शब्द में बंद है।"

इसलिये भारत माता की स्वाधीनता की खातिर, भारत में शांति और सुख की खातिर, भारत की भावी उन्नति की खातिर मैं अपनी जाति की पूरी सम्मति के साथ उसकी स्वतन्त्रता को इनके चरणों में रखता हूँ।"

"भारत माता की जय" का जातीय जयकार एक बार फिर उस प्रतिष्ठित महा-सभा में गूंज गया। इतने में क्षुद्रक सर्दार ने उठकर कहा :—

"माननीय सभाजनो ! यह हमारा सौभाग्य है कि आज हमारे भविष्य की बाग-डोर उस मनुष्य के हाथ सौंपी जा रही है जिस पर हमें पूर्ण विश्वास है, जो दुख में सुख में हमारा साथी रहा है, जिसकी हम भलीभांति परीक्षा कर चुके हैं। निस्सन्देह भारत को इस समय एक बलवान बुद्धिमान और शूर वीर राजा की आवश्यकता थी और वृषल सरीखे सर्वगुण-सम्पन्न राजा का मिलना असम्भव नहीं तो सहज भी नहीं है। इसलिये मैं भी अपनी जाति की सेवाओं को अपने स्वयं चुने हुए राजा के श्री चरणों में अर्पण करता हूं।"

कदाचित् सारी वक्तृताओं के उल्लेख करने की यहां आवश्यकता नहीं, इसलिये इतना ही कह देना काफी होगा कि सारे के सारे सभासदों ने एक स्वर से इस सम्मति का समर्थन किया। इस समय सारी की सारी सभा में एक लहर चल रही थी और सब समझते थे कि भारत की स्वतन्त्रता और भावी उन्नति का वृषल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, प्रत्युत दोनों अन्योन्याश्रय

भाव से एक दूसरे के आधार पर हैं। सब के पश्चात् महाराज चाणक्य ने कथन किया :—

"माननीय सभाजनो ! मैं आपको आपके चुनाव पर बधाई देता हूं। आपने इस जटिल प्रश्न का जो उत्तर सोचा है वह बहुत ही उचित और उत्तम है। आप इस पर प्रसन्न हैं और मैं आपकी प्रसन्नता को यह बतलाकर दुगनी करना चाहता हूँ कि आपने जिसको चुना है वह न केवल अपने गुणों के कारण ही इस आदर के योग्य है प्रत्युत अपने वंश और कुल के विचार से भी पूर्णरूप से इसका अधिकारी है।

आप कदाचित् अभी तक यह नहीं जान पाये कि वह व्यक्ति जिसे आप इस समय तक वृषल के नाम से पुकारते हैं, वास्तव में मगध राज्य का सूर्य्य मुरापुत्र चन्द्र गुप्त मौर्य्य है, जिसने भारत को अन्याय और अत्याचार, दुर्व्यसन और दुष्टाचार से मुक्त करने का बीड़ा उठाया था, जिसने जन्म भूमि को त्याग कर केवल इस लिये बनवास धारण किया, ताकि राम की न्याईं यवन रूपी राक्षसों का नाश करें।"

"चन्द्र गुप्त मौर्य्य ! चन्द्र गुप्त मौर्य्य ! राज वंश से !"

यह कहते हुए सब के नेत्रों में आनन्द के आंसू छलकने लगे।

सबको धन्यवाद देने के लिये अन्त में महाराजाधिराज वृषल उठे। उस समय उनके नेत्रों में आंसू थे और मुख से बड़ी कठिनता से पहले पहले शब्द निकलते थे जब आपने कहा :—

"पूजनीय वृद्ध जनों ! मैं आज सभाके भाव देखकर आश्चर्य्यित रह गया हूँ। हम लोग यहां पर एकत्र हुए थे, ताकि भारत की भावी उन्नति के विषय पर विचार कर सकें। परन्तु मुझे स्वप्न में भी यह विचार न हुआ था कि इतना बड़ा बोझ मेरे निर्बल कन्धों पर ही रखा जायगा ! न मैं अभी तक आप लोगों पर

अपना वंश-कुल आदि ही प्रकट करना चाहता था क्योंकि मैं इसमें अपना कोई सन्मान नहीं समझता, मुझे यदि मान है तो इस बात का कि आप लोगों ने मुझे शूद्र समझते हुए (जो मेरे नाम से प्रकट है) मेरी सेवाओं को परे नहीं फेंका, आप लोगों ने मुझे तुच्छ समझते हुये भी अपने विश्वास का पात्र बनाया।

हां ! मुझे मान है तो इस बात का कि आपने मुझे शूद्र और छोटा जानते हुये भी भारत माता की लाज की खातिर अपनाया।

मित्रो, और वृद्ध जनो ! मैं शूद्र था, शूद्र हूँ, और शूद्र रहूंगा। पहले भी आप लोगों का सेवक था, अब भी जो कुछ सेवा हो सकती है, कर रहा हूं और भविष्य में भी मुझे जो सेवा कही जायगी, करने से यथा शक्ति पीछे नहीं हटूंगा।

इस लिये मुझे राज वंश पर नहीं वरन् अपने सेवक होने पर मान है और इसी अवस्था में मैं आपके विश्वास का पात्र बनना चाहता हूं।

मैं प्रसन्न हूं कि हमारे सम्मिलित प्रयत्न सफल हुए हैं और भारत देश अब यवनों से रहित हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इसे भविष्य में सुरक्षित रखने के लिए एक शक्तिशाली राज्य-सत्ता की आवश्यकता है और यदि आपने यह सेवा मुझे सौंपी है तो मैं केवल इस शर्त पर इसे स्वीकार कर सकता हूं, कि जिस प्रकार इस समय तक आपने मुझ पर विश्वास किया और मेरी सहायता करते रहे हैं इसी प्रकार आगे भी करते रहें। आप इसी प्रकार मेरी भुजायें बने रहें।

इसके पश्चात् मैं आपको यह भी याद दिलाना चाहता हूं कि मैं मगध को नन्द वंश के हाथों से छुड़ाने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं। स्वयं गुरू जी (चाणक्य) ने भी आज तक शिखा

नहीं बांधी, इस लिये हमारी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करने के लिये आपकी पूरी सहायता की आवश्यकता है, क्या आप इसके लिये तैयार हैं ?"

"निस्सन्देह" "सब प्रकार से" की ध्वनि गूंजने लगी और इस प्रकार अत्यन्त आनन्द मंगल के साथ यह सभा विसर्जित हुई जिसने वृषल को चन्द्र गुप्त बना दिया, जिसने एक साधारण सवार को जिसकी सारी संपत्ति एक घोड़े और एक तलवार से बढ़कर न थी, भारत का प्रबल तथा प्रतापी राजा बना दिया। पाठक ! आप उसके राज्याभिषेक का महोत्सव देखिये, पंचनद देश के आनन्द का दृश्य देखिये, हम अब आपसे कुछ समय के लिये विदा होते हैं।

❀ पहिला भाग समाप्त ❀

वीर वृषल

दूसरा भाग

पहला परिच्छेद

बुद्ध अरिहन्त का उपदेश

संध्या का समय है। दिन भर के परिश्रम से थके हुए लोग सांसारिक काम काज को छोड़ रहे हैं। वे पुण्यात्मा मनुष्य—जिनके मन में अपने प्यारे के दरस का चाव है उस सच्चे प्रीतम से मिलने का प्रयत्न कर रहे हैं। मनुष्य तो मनुष्य पशु भी इस समय एक विशेष रंग में रंगे हैं। वे जो दिन भर हल के नीचे कंधा दे रहे थे इस समय उस बन्धन से मुक्त हो रहे हैं। वे जो दिन भर परिश्रम कर रहे थे इस समय विश्राम के सुख को जानकर उसे प्राप्त कर रहे हैं।

मनुष्यों के मस्तिष्क में इस समय समानासमान दोनों प्रकार की भावनायें दिन भर के संग्राम के पश्चात् सम अवस्था पर पहुँच

गई हैं। इस लिये मनुष्य, हां वे मनुष्य, जो अपने कर्त्तव्य को समझते हैं, समरूप में उस परिपूर्ण सर्वान्तर्य्यामी महा पुरुष का ध्यान कर रहे हैं जो इस सारे ब्रह्माण्ड को एक नियम में चला रहा है, जो छोटे-बड़े सब को एक नियम में पिरो रहा है।

संध्या समय हो लिया। अब छोटे बड़े सबके सब पाटलीपुत्र के विस्तृत चौक में उस बौद्ध महात्मा का उपदेश सुनने के लिए चलेंगे जो थोड़े दिनों से इस राजधानी में विराज रहे हैं और जिनके उपदेशों की धूम नगर भर में फैल रही है। उनकी मधुर वाणी, उनके सरल शब्द और उनका तेजस्वी मुख, कौन है जिस पर प्रभाव नहीं डालता और कौन है जो उनके जीवन के सौन्दर्य्य पर मुग्ध नहीं हो रहा।

स्त्री पुरुष सबको इस महात्मा का आकर्षण खींचे लिये जा रहा है जो इस समय इस चौक में एक चौकी पर विराजमान होकर सहस्रों नर नारियों को इस प्रकार उपदेश दे रहे हैं :—

"सद्गृहस्थो ! मैं आज आप लोगों को भगवान् बौद्ध के उस उपदेश का वह अंश सुनाना चाहता हूं जो उन्होंने श्रवस्थी नगर में शाल के वृक्षों के मध्य में गृहस्थों को सुनाया था। अहो भाग्य हैं उन मनुष्यों के जो इस उपदेश को सुनते हैं और उनसे भी अधिक धन्य हैं वे लोग जो इसे सुनकर अपने जीवन में धारण करते हैं। भगवान् कहते हैं :—

"जो विद्वान दूसरों को बहुत से परमार्थक उपदेश देता है परन्तु अहंकारवश हो कर अथवा आलस्य से स्वयं उन उपदेशों को अपने जीवन में धारण नहीं करता, उस मूढ़ की दशा उस ग्वाले की सी है जो सारा दिन लोगों की गौओं को एक दो तीन ऐसे गिनकर चराता रहता है परन्तु स्वयं उनके दुग्ध से वञ्चित रहता है।"

अतएव हे सद्गृहस्थो ! यदि तुम यहाँ आने के कष्ट का कोई

फल प्राप्त करना चाहते हो, तो जो कुछ सुनों उसे जीवन में धारण करने का यत्न करो।

मैं मानता हूं कि आप लोगों में से बहुत से ऐसे हैं जो विद्या में, धर्मोपदेश करने में, मुझे वर्षों शिक्षा दे सकते हैं परन्तु मैं ऐसे संपूर्ण लोगों को भी भगवान् का वह वचन ही सुनाना पर्य्याप्त समझता हूँ, जिसमें वे यह कथन करते हैं कि :—

"यदि हितकारक धर्म थोड़ा भी जानता हो परन्तु दूसरे को उसका उपदेश करता हो और स्वय अपना चरित्र भी उसके अनुसार रखता हो तो ऐसा विद्वान राग-द्वेष और विरोध को त्याग कर यथार्थ ज्ञानी और मुक्तात्मा होकर लोक-परलोक की आशा रूपी डोरी को तोड़ कर परमोत्तम मुक्ति मार्ग का भागी हो जाता है।

अतएव हे साधारण स्त्री पुरुषो ! और हे वृद्ध जनों ! मैं जो कुछ कहता हूं उसे दत्त चित्त होकर श्रवण करो और श्रवण करके अपने जीवन में धारण करो, क्योंकि निस्सन्देह यह मेरे वचन नहीं प्रत्युत उस आदित्य पुरुष के हैं जिसने संसार को हिला दिया। यह केवल इसी योग्य ही नहीं कि इन्हें दूसरों को दान दिया जाय प्रत्युत इस योग्य भी कि इन्हें जीवन में धारण करके जीवन का एक अंग बनाया जावे।

देवियो और भद्र पुरुषो ! आप गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट हैं और यहां ऐसे भी नवयुवक होंगे जो इस आश्रममें प्रविष्ट होने के इच्छुक होंगे। उनकी यह इच्छा एक प्रशन्सनीय इच्छा है, क्योंकि इस आश्रम के विना जो वास्तव में सबसे श्रेष्ठ आश्रम है जगत की स्थिति असंभव है। यह इसी आश्रम का अनुग्रह है कि मैं और आप छोटे और बड़े यहां बैठे और खड़े दिखाई देते हैं, यदि यह न होता तो एक भी पुरुष यहां दिखाई नहीं देता ! इसलिए मैं आपको इसके विरुद्ध कोई उपदेश करने को उद्यत नहीं

हूं। स्वयं भगवान् बुद्ध ने इस आश्रम में प्रवेश किया है और जितने भी महापुरुष हुए हैं किसी ने भी इससे जी नहीं चुराया।

परन्तु मेरे मित्रो ! जहां यह सत्य है कि गृहस्थ आश्रम सृष्टि का आदि मूल है वहां यह भी सत्य है कि यही आश्रम मनुष्य को नरकगामी भी बना देता है ठीक जिस प्रकार वह खड्ग जो एक क्षत्रिय के हाथ में प्रजा की रक्षा का कारण है जो देश भर को सुरक्षित रख सकता है, जिस समय एक अनजान मूढ़ के हाथ में चला जाता है तो दूसरों के क्या अपने स्वामी के लिये भी भयानक हो जाता है। इसी प्रकार जो पुरुष गृहस्थ होता हुआ काम में अंधा हो जाता है, जिसे काम-वासनाओं के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं वह पुरुष नरक की ओर मुंह उठा भागा जा रहा है जहां वह जलती हुई अग्नि में दग्ध हो जायगा।

मित्रो ! भगवान बुद्ध कहते हैं :—

"काम वासना में लगे हुए, दश इन्द्रियों के हाथ बिके हुए, खान-पान में नियम को हाथ से छोड़े हुए आलसी और निरुत्साही योगी को कामदेव इस प्रकार तपो-भ्रष्ट कर देता है जिस प्रकार आंधी का झकोरा निर्बल वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर परे फेंक देता है।

"परन्तु जिस प्रकार आंधी का वेग पर्वत को हिला नहीं सकता, उसी प्रकार कामदेव की शक्ति उस श्रद्धा और उत्साह वाले पराक्रमी वीर के सन्मुख असमर्थ सिद्ध हो सकती है, जो विषय वासना के तत्व को जानता हुआ इन्द्रियों को वश में रखे और सोच-विचार कर आहार विहार करने वाला है।"

इसलिये सद्‌गृहस्थो ! यत्न करो, इस बात के लिए कि तुम अपनी इच्छाओं को, इन्द्रियों के प्रबल वेग को वश में रख सको ताकि यह तुम्हारे सुख का कारण हो सके, न कि दुख का।

भद्र पुरुषो! जिस दिन से मैं आपके यहां उपदेश करने लगा हूं, कितने पुरुष मेरे पास इस इच्छा से आए हैं कि मैं उन्हें बौद्ध-धर्म में दीक्षित करूं।

परन्तु मैंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि बौद्ध-धर्म में दीक्षित होना योग आश्रम में प्रविष्ट होने के समान है। इसमें आनेवाले को अपने आचार विहार को शुद्ध करके आना होगा, नहीं तो उसके लिये इधर आना वा उधर रहना एक समान है।

भगवान् ने अपने मुखारविन्द से कथन किया है कि:—

"जिस प्रकार मकान पर छत अच्छी तरह न पड़ी हो तो वर्षा ऋतु के आने पर उसमें से जल टपकने लगता है, उसी प्रकार अशुभ योग से असाधित योगी के मन को कामदेव नष्ट कर देता है।

परन्तु:—

"जिस प्रकार दृढ़ छत वाले मकान से जल नहीं टपकता, उसी प्रकार उस योगी के मन को कामदेव चलायमान नहीं कर सकता जो मल मूत्र के बने हुए इस शरीर को सदैव घृणा की दृष्टि से देखकर योगाभ्यास में मग्न हो जाता है।"

हां, प्रिय भ्रातृवर्ग! तत्त्व को समझने की आवश्यकता है। आप लोग कामदेव के हाथों बिक जाते हैं, क्योंकि आनन्द की अन्वेषणा है और वह मिलता नहीं। धन में, सम्पत्ति में उसकी खोज करते हो, स्त्री में उसे ढूंढते हो, परन्तु फिर भी वह आपकी आंख बचाकर कहीं लुप्त हो जाता है। हां! रात्रि दिन स्त्री में रत रहते हो, परन्तु मन नहीं भरता, प्राकृतिक शरीर दुर्बल हो जाता है परन्तु आनन्द हाथ में आया हुआ हाथों से निकल जाता है!!! क्या कभी सोचा, इसके अन्दर क्या भेद है?

मित्रो, आपमें से बहुत थोड़े लोगों ने कभी रेतीले स्थल को देखा होगा और उनमें से भी बहुत ही थोड़े लोगों ने मृग-तृष्णा

के जलको दृष्टि गोचर किया होगा परन्तु श्रवण सबने किया होगा कि मृग रेतीले जंगल में दूर से रेत को चमकते हुए देखता है, प्यास से कण्ठ में कांटे पड़ रहे होते हैं, आंखें जल के अतिरिक्त और कुछ देखना नहीं चाहतीं, इसलिये चमकता हुआ रेत जल के रूप में देख पड़ता है। मृग दौड़ता है, उसके साथ जल भी आगे ही आगे दौड़ता चला जाता है, फिर दौड़ लगाता है, परन्तु जल तक फिर भी पहुंच नहीं पाता। अन्त में एक समय ऐसा आता है कि बिचारा मृग थक कर गिर जाता है और छटपटा कर प्राण छोड़ देता है।

ठीक यही दशा गृहस्थ की होती है। वह इस संसार-सागर में आता है, क्योंकि वह आनन्द से निकल कर आता है इसलिये स्वाभाविकतया आनन्द की इच्छा करता है। परन्तु चारों ओर जहां तक दृष्टि जाती है प्राकृतिक पदार्थों के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। वह उन पदार्थों में से एक एक को उठाता है, एक एक की परीक्षा करता है, पहले उन्हें प्राप्त करने को दौड़ता है, यत्न करता है, घोर परिश्रम करता है, परन्तु परिश्रम करके जब उन्हें प्राप्त करता है, जब उन्हें भोगता है तो पता लगता है कि आनन्द हाथों से खिसक गया, अब केवल उसकी छायामात्र ही शेष रह गई है !!!

समझता है, भूल हुई, कदाचित् आनन्द दूसरी वस्तु में है अब उसे ग्रहण करने के लिये परिश्रम करता है, भागता है, दौड़ता है परन्तु जिस समय उसे भी प्राप्त कर लेता है तो पता लगता है, कि आनन्द हाथों से फिर निकल गया !!!

हा ! कितनी बुरी दशा उस जीव की होती है जो चौरासी का चक्कर काटता हुआ फिर जहां से चला था वहीं का वहीं खड़ा दिखाई देता है !

इसका एक मात्र कारण यही है कि खोज उल्टी शुरू हुई है। जो वस्तु जहां है नहीं, वहां ढूंढ़ी जा रही है, रेत में से तेल निकालने का यत्न है।

प्राकृतिक वस्तु स्वयं आनन्द रहित है, यह सब कोई जानता है। तिस पर भी इन में आनन्द की खोज की जाती है।

इसीलिये तो भगवान् कहते हैं कि यदि आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो आनन्द के भण्डार से लौ लगा। प्राकृतिक शरीर को, मल-मूत्र से बनी हुई देह को, घृणा की दृष्टि से देखते हुए इससे ऊपर उठने का यत्न करो। इस समय कामदेव, हां वह भयानक भूत जो सब को डराता है, तुम्हारा दास हो जायगा, तुम्हारा किंकर बन जायगा, उस समय तुम उससे उसका और अपना ठीक काम ले सकोगे और जिस समय कामदेव अपने कार्य्य में लग गया, जिस समय इस भूत को सीधा कर लिया, समझ लो कि लोक-परलोक तुम्हारा है, उस समय चाहे गेरुए वस्त्र पहनो, चाहे गृहस्थ रहो—एक समान है।

भगवान कहते हैं:—

"यह गेरुए वस्त्र उस पुरुष को पहनने चाहियें जो जितेन्द्रिय हो, सत्य-वक्ता हो, शीलवान् हो और विषय-वासनाओं का त्याग कर चुका हो।"

इसलिये यदि तुम अपने जीवन को सफल करना चाहते हो, यदि इस असार संसार में से सार वस्तु को समझना और प्राप्त करना चाहते हो तो पहले जितेन्द्रिय बनो। जितेन्द्रिय बनने से तुम अपने आपको इस योग्य बना सकोगे कि तुम्हें उस अदृष्ट ब्रह्म के दर्शन की विधि बताई जा सके जो इस संसार-चक्र को अपनी महती शक्तियों से चला और नियम में रख रहा है।"

उपदेश समाप्त हो गया; परन्तु श्रोता लोग फिर भी चित्रवत् बैठे थे। चारों ओर कोई आवाज़ निकलती सुनाई नहीं देती थी कि इतने में एक ओर से एक मनुष्य आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया। सबकी आंखें हठात् उधर गईं, क्योंकि सामने महामन्त्री राक्षस थे।

लोग आश्चर्य में थे कि महामन्त्री का इस समय क्या काम, और अभी उनका बिस्मय दूर न हुआ था कि उसने कहा :—

महामन्त्री—(हाथ जोड़ कर) भगवन् ! यदि अनुचित न हो तो मैं यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि आप मेरे गृह को अपने पवित्र चरणों से पवित्र कीजिए। मैं राज्याधिकारी हूं और ब्राह्मण हूं कदाचित् ये बातें मेरे विरुद्ध बोली जाती हैं, परन्तु मेरे मन के भावों को देखकर मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए।

अरिहन्त—मन्त्री ! भगवान् बुद्ध कथन करते हैं :—

"इसने मुझे गाली दी, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, इसने मेरा धन छीन लिया, इस प्रकार से जो पुरुष शत्रु के अपमान को मन में रखता है, उस मूर्ख के मन से द्वेष कभी दूर नहीं होता।"

परन्तु—

"उसने मुझे गाली दी, इसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा धन हर लिया, जो इस प्रकार की शत्रु की बातों से मन को साफ रखता है उसके मन से बैर और प्रतिकार का भाव स्वयंमेव दूर हो जाता है।"

निस्सन्देह—

"इस जगत में शत्रुता से शत्रुता कभी दूर नहीं होती, प्रत्युत शत्रुता को प्रेम और मित्र-भाव से ही दूर कर सकते हैं। यही सनातन धर्म है।"

इसमें सन्देह नहीं, राज्य की ओर से हमारा अपमान किया

जाता है, ब्राह्मण हमें गाली देते हैं, परन्तु भगवान के कथन पर चलते हुए हम उनके अपमान और निरादर को भूल जाने की चेष्टा करते हैं और भूल जाते हैं। इसलिये न तो तुम्हारा राज्याधिकारी होना, न ब्राह्मण होना हम पर कुछ प्रभाव डाल सकता है परन्तु फिर भी हम यही इच्छा रखते हैं कि हमें यदि तुम लोग स्वतन्त्र विचरने दो तो अच्छा ही होगा। तुम्हारे ऊंचे ऊचे प्रासादों में हम पिञ्जरे के पक्षी की नाईं कैद हो जायेंगे न अपनी इच्छा से कहीं आ सकेंगे न जा सकेंगे और यह सहन होना असम्भव है।

मन्त्री—महाराज! आप मेरे गृह में सर्वदा स्वतन्त्र होंगे, जब चाहें और जहां चाहें आ जा सकेंगे, मैं और मेरे परिजन आपकी सेवा को अपने अहो भाग्य समझेंगे।

अरिहन्त—(थोड़ी देर नीचे सिर डाल कर) जो इच्छा तुम्हारी, परन्तु यह भूल न जाना कि साधु स्वतन्त्र है, परतन्त्र नहीं।

मन्त्री—बहुत अच्छा भगवन्!

दूसरा परिच्छेद

कृष्ण जन्म-उत्सव

महा पुरुष प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति में हुए हैं और होते रहेंगे, अपने अपने देश और अपनी अपनी जाति की परिस्थिति उन्हें उत्पन्न करती है। जिस देश और जिस जाति में जो-जो त्रुटियां हों उनकी चिकित्सा के लिए उन्हीं रोगों के चतुर (Expert) वहां भेजे जाते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक महा पुरुष में दूसरों की अपेक्षा कुछ विशेष गुण हुआ करते हैं।

परन्तु कभी-कभी, चिरकाल के पश्चात्, इस मर्त्य लोक में ऐसे आत्मा भी अवतार लेते हैं जो प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति के लिये भेजे जाते हैं। उनमें सर्व-साधारण जनों से कोई विशेष गुण हों या न हों, परन्तु जिस प्रकार गुलाब का फूल, फूलों में पूर्णता का नमूना है, जिस प्रकार इस फूल के अन्दर फूल के संपूर्ण अंग अपने पूरे लावण्य में देख पड़ते हैं, उसी प्रकार इन असाधारण व्यक्तियों में भी मनुष्यत्व का पूर्ण आदर्श अपने पूरे सौन्दर्य्य में झलकता है। वे

पूर्ण पुरुष

होते हैं, जो संसार के प्रत्येक भाग और प्रत्येक वर्ग के मनुष्यों के पथ-प्रदर्शन के लिए भेजे जाते हैं। परन्तु इस मर्त्य लोक में ऐसे पुरुष थोड़े ही होते हैं और उनके अन्दर वे गुण और वे शक्तियां दिखाई देती हैं जो साधारण अवस्था में मनुष्यों के अन्दर नहीं जातीं, इसलिए सर्व-साधारण लोग ऐसे मनुष्यों की

शक्तियों को देख उन्हें मनुष्यों से बहुत ऊंचा मान लिया करते हैं।

इस अवस्था पर पहुँच कर कोई जाति तो ऐसे व्यक्ति को परमेश्वर का अवतार समझ लेती है और कोई उसे इससे कम दर्जा देकर उसे रसूल पैगम्बर बना डालती है।

कृष्ण इस प्रकार के एक पूर्ण पुरुष थे, जिनके जोड़के मनुष्य प्रकृतिने बहुत थोड़े उत्पन्न किये हैं। वंदी गृह (जेलखाना) की तंग और अंधेरी कोठरी में जन्म लेकर, बालापन में ग्वाल बालों के अन्दर पलते हुए वह ग्वालबाल थे। बड़ा होकर क्षात्र-धर्म के हाथ दिखलाते हुए वह एक सच्चे क्षत्रिय थे। महाभारत में अर्जुन की रथवाही करते हुए शूद्र थे, परन्तु गीता के उपदेश सुनाते समय वह ब्राह्मण ही नहीं प्रत्युत योगिराज योगेश्वर थे।

इस प्रकार के सर्वकला-संपूर्ण मनुष्य की शक्तियों का अनुमान करते हुए बुद्धि थककर बैठ जाती है। कोई उन्हें ग्वालों में रास-क्रीड़ा करते हुए देख कर उन पर मोहित हो जाता है तो कोई उनकी वीरता के साखे सुनकर उन्हें प्यार करता है और कोई उनके दिव्य संगीत को सुनकर उनपर निछावर होता है, अर्थात जिस जिस भी भावना का कोई भारतवासी है, उसने उन्हें अपनी अपनी आंखों से अपने रंग में देखा है।

और यही एक कारण है जिसने कृष्ण को सर्व साधारण में ईश्वर की पदवी दे दी है।

उन कृष्ण का, योगियों के आदर्श कृष्ण का जन्मोत्सव आज पाटलीपुत्र में मनाया जा रहा है, राज मन्दिर की ओर जाते हुए मनुष्यों का तांता बंध गया है जहां आज बड़े समारोह के साथ इस उत्सव को मनाने की तैयारियां हो रही हैं। दूर तक जिधर दृष्टि जाती है मनुष्यों के सिर ही सिर दिखाई देते हैं मानों समुद्र में ज्वार आ रहा है। क्या आज सारा का सारा पाटलीपुत्र राज-

मंदिर में घुस जायगा ? परन्तु इस मन्दिर के थोड़े फासले पर भीड़ कैसी लग रही है ? आओ देखें तो सही मंदिर के बाहर तो जन्मोत्सव का मेला नहीं है ! यहां तो हमारे पुराने मित्र पण्डित इन्दु शर्मा की आवाज़ सुनाई दे रही है। तनक सुनना आप एक गड्डे पर खड़े होकर क्या कथन कर रहे हैं :—

"प्यारे मित्रो ! आज आप भगवान कृष्ण का जन्मोत्सव मनाने के लिए जा रहे है; कहां ? राज-मन्दिर में ! वाह ! उन कृष्ण का जिन्हें राज्यकर्मचारियों ने बंदी-गृह में जन्म लेनेपर विवश किया, जन्मोत्सव मनाया जावे राज्य-मन्दिर में ! यह प्रकृति का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक चक्कर है।

हां, आज आप राज्य-मन्दिर में जाकर भगवान का जन्मोत्सव मनाते हुए उस सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ता का धन्यवाद करेंगे जिसने आजसे पचीस सौ वर्ष पूर्व उस आत्मा को इस जगत के उद्धार के लिए भेजा था; परन्तु मैं आप से कहता हूं और इस बात को ध्यान से सुनलो कि न तो तुम्हारे धन्यबाद से वह जगदीश्वर प्रसन्न होंगे और न भगवान कृष्ण का आत्मा प्रसन्न होगा, यदि तुम अपने आचरण से यह सिद्ध नहीं करते कि तुम परमेश्वर का, भगवान कृष्ण को इस भारत भूमि में भेजने के लिये, धन्य-वाद कर रहे हो और वह केवल इसी रूप में हो सकता है कि तुम भी उन्हीं कृष्ण की तरह अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध, हां बुराई और दुष्टता के विरुद्ध, युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाओ।

मैं कहता हूं, क्या यह उन कृष्ण का जिनने विपत्ति-काल में अबला और निस्सहाय द्रौपदी की लाज रखी, अपमान नहीं है, हां उन कृष्ण के साथ मखौल नहीं, कि आज तुम्हारे इस नगर में दिन-दहाड़े लोगों की बहू बेटियों का सतीत्व भंग हो और तुम्हारे हाथ न हिल सकें !!! क्या तुम लोगों से यह बात छिपी हुई है कि किस प्रकार राजवंश से संबंध रखनेवाले लोग दिन-दहाड़े

राज्यकी स्त्रियों के सतीत्व को जो वास्तव में राज्य की पुत्रियों के समान हैं, कलंकित करते हैं, परन्तु तुम मौन धारण किए हो।

मित्रो! उपनिषद्कार कहते हैं—"वह जो अत्याचार करता है, नरकगामी है, परन्तु उसके साथ ही वह मनुष्य जो चुप-चाप अत्याचार का सहन करता है उससे भी बढ़कर घोर नरक में जाने वाला है क्योंकि वह अत्याचारी को अत्याचार करने के लिये प्रेरणा करता है।"

मैं पूछता हूं, क्या पापियों के पाप की नौका अभी भरी नहीं? क्या अभी तक उसके डूबने के लिये कुछ और पापों की आवश्यकता है? क्या तुमने सुना नहीं, अभी कल जब कि आप लोग शरत सप्तमी का त्योहार मना रहे थे, एक अबोध कन्या के गले पर किस प्रकार छुरी चलाई गई थी? वह मेरी पुत्री थी वा मेरे किसी भाई की, परन्तु क्या इसमें सन्देह है कि वह इस देश की पुत्री थी और इसलिये उसकी रक्षा करना देशवासियों का धर्म था।

कहां हैं वे वीर क्षत्रिय जो कन्याओं के हाथों से रक्षा-बंधन स्वीकार करते हुए उनकी रक्षा की प्रतिज्ञा किया करते हैं? क्या उनकी नाड़ियों के अन्दर आज क्षत्रियों का रक्त नहीं रहा? क्या एक कन्या का सर्वनाश होते देखकर उनके रक्त उछल नहीं पड़ते।

पाटलीपुत्र वासिओ! मैं सामने उन राज्य कर्मचारियों को आते देख रहा हूं जिनको राज्य ने तुम्हारी रक्षा के अर्थ नियुक्त कर रखा है, परन्तु मैं पूछता हूं कि राजा ही जब प्रजा की बहू-बेटियों का सर्वनाश करने के लिये हाथ बढ़ाए तो उससे उनकी कौन रक्षा करेगा।

आप कह देंगे, ऐसी अवस्था में हमारे लिए कोई आशा नहीं, हम विवश हैं।

परन्तु मैं कहता हूं ऐसा कहने वाला नास्तिक है, उसने उस महापुरुष के जीवन का स्वाध्याय नहीं किया जिसका जन्मोत्सव आज मनाया जा रहा है।

मेरे मित्रो! तुम्हारे अन्दर, हां तुम्हारे अकेले-अकेले के अंदर, वह शक्ति विद्यमान है जो बड़े से बड़े पापी को भूमि पर गिराकर पावों के नीचे कुचल सके, केवल उस शक्ति से काम लेने की आवश्यकता है, और बस!

क्या कृष्ण के जन्म के समय पाप की नदी इसी वेग से नहीं चल रही थी, जिस वेग से आज चल रही है? और क्या कृष्ण ने अकेले ही इस पाप की शक्तियों का विध्वंस नहीं किया था?

तो क्या जो कुछ आज से पचीस सौ वर्ष पूर्व हो सकता था अब होना संभव नहीं?

अभी कल की बात है, अकेले वृषल ने—हां, उस वृषल ने जिसके नामसे तुम्हारे कान अनभिज्ञ नही हैं, पञ्चनद देश से यवनों को निकाल बाहर किया है, तो क्या पाप को इस भूमि से निर्मूल नहीं किया जा सकता?

मेरे मित्रो! राज्य-कर्मचारी आ रहे हैं, मैं आपके आनन्द में बाधा नहीं डालना चाहता, इसलिये जाओ राज-मन्दिर में जाओ, जाओ, कृष्ण जन्मोत्सव को बड़े समारोह से मनाओ, परन्तु इस एक बात को भूल न जाना कि भगवान् कृष्णचन्द्र का आत्मा आज भी तुम्हारे अन्दर स्थित है और वह यह चाहता है कि तुम में एक एक, अबलाओं की रक्षा में, पाप के नाश में, और पापियों के सुधार में, उनका रूप हो।

वह समय निकट आ रहा है, जब कि तुम्हें अपने कर्म से यह सिद्ध करना होगा कि तुम्हारी नाड़ियों में आर्य्य ऋषियों का, आर्य्य क्षत्रियों का, आर्य्य वैश्यों का, हां आर्य्य शूद्रों का रक्त बहता है। तुमको अपनी स्त्रियों का सन्मान प्यारा है, तुम पाप के

शत्रु हो और तुम किसी शक्ति से भी भयभीत होने को तैयार नहीं।"

पुलिस निकट पहुँच गई। लोगों का समूह मन्दिर की ओर बढ़ गया, इन्दु शर्मा भी इसी समूह में कहीं लोप हो गया, परन्तु सारे के सारे लोगों के हृदयों पर आज उसके शब्द चित्रित हो रहे थे, सबके सब उन्हीं पर विचार करते चले जा रहे थे।

मन्दिर के अन्दर स्थान स्थान में भगवाग के जीवन की घटनाएं चित्रों द्वारा प्रकट करने का यत्न किया गया था। परन्तु लोग जिस समय कंस के वध को देखते, जरासंध के साथ युद्ध को देखते अथवा द्रौपदी की विपत्ति का दृश्य देखते तो आज के व्याख्यान के शब्द उनके मस्तिष्क में गूंज जाते। उसके शब्द कुछ ऐसे समय में और ऐसे ढंग पर कहे गये थे कि मन्दिर का एक एक दृश्य उनकी व्याख्या करता हुआ प्रतीत होता था और उन सबके अन्दर वृषल का नाम स्पष्ट रूप से सुनाई दे रहा था। छोटे-बड़े सब इसी एक प्रश्न के विचार में थे कि "क्या वृषल नन्दरूपी कंस के लिये कृष्ण सिद्ध होने वाला है ?"

तीसरा परिच्छेद

गुप्त मंत्रणा

एक प्रहर रात्रि बीत चुकी है। बाजारों का धूम-धड़ाका बहुत घट गया है। इक्के दुक्के राह चलतों के सिवा कोई मनुष्य आता जाता दिखाई नहीं देता। दूकानदार भी कुछ ही ऐसे हैं जो इस समय दीपक के सामने बैठे रोकड़ उतार रहे हैं। कदाचित् इनमें से भी कुछ मनुष्य इसलिए बैठे हैं कि एक पैसे की भूल भी लेखे में न रहे चाहे उसे निकालने के लिए दो आने का तेल अग्नि-देवता की भेंट करना पड़ जाय।

पाटली पुत्र के चौंसठ के चौंसठ फाटक बन्द हो चुके हैं। और उन पांच सौ से अधिक बुर्जों पर जो नगर के कोट में पुलिस चौकियों का काम दे रहे हैं, पुलिस प्रजा के धन-जन की रक्षा कर रही है।

इस समय एक विशाल भवन के तंग फाटक को पार कर और एक चक्करदार पेचीले रास्ते में से होकर हम एक विस्तृत आंगन में पहुंचते हैं। इस भवन के बाहर नंगी तलवार का पहरा साधारण लोगों को भयभीत करने के लिये आवश्यकता से भी अधिक है, किन्तु हमने इन तलवारों को युद्ध-भूमि में चमकते देखा है, इन्हें मनुष्यों का रक्त पान करते देखा है, इसलिये वह हमें डरा नहीं सकतीं। सुतरां यदि अन्दर का दृश्य देखना चाहते हो तो आओ हम आपको अपनी जादूगर लेखनी द्वारा "तलिसमी टोपी" पहनादें। इसके गुण बड़े ही अद्भुत और आश्चर्य-जनक हैं

जिनमें से निकृष्टतर यह है, कि आप तो सबको देखेंगे परन्तु आप को कोई न देख सकेगा !

हां साहब आइए स्थान-स्थान में वृहत्काय नंगी तलवार पकड़े पहरेदारों को देखकर भयभीत न हो जाइए, हम आपको सामने के आंगन से आगे चलकर बे खटके अन्दर ले जाएंगे।

आहा, यहां तो झाड़ फानूसों की बहुतांयत ने रात को दिन से अधिक प्रकाशित कर रखा है। जिधर देखो तीक्ष्ण प्रकाश की किरणें आँखों को चुँधियाती चली जाती हैं। भूमि पर पाँव रखो तो घुटनों तक गलीचों में उतरते चले जाते हैं। दीवारों पर प्राचीन आर्य्य वीरों के चित्र इस रात के समय में मन पर एक विचित्र प्रभाव डाल रहे हैं।

परन्तु हैं ! हम विशाल भवन के देखने में इतने क्यों मग्न हो गए, जो हमें इसकी सुन्दर चित्राङ्कित छत और दीवारों के सामान के सिवा कुछ नज़र आने से ही रह गया। ऐं ! यह क्या आवाज़ आई, क्या कोई मनुष्य भी यहां बैठा है, तनिक सुनना, क्या बात है ?

आवाज़—भारत सपूतो ! कहो, अपने अपने विभाग के समाचार सुनाओ, दुष्टों को दण्ड देने का अवसर कब आएगा ? क्या भगवान् चाणक्य और वीर वृषल सदैव के लिये पंचनद देश को ही अपना गृह बनाए रखेंगे ? क्या मगध निवासियों का दुःख उनके हृदय को हिलाने का कारण नहीं हुआ ?

एक मनुष्य—राज-मन्त्री ! न तो भगवान चाणक्य पंचनद देश को अपना गृह बना सकते हैं, न वीर वृषल ही उस समय तक सुख की नींद सो सकते हैं, जब तक कि मगध की भूमि नंदरूपी कंस के चंगुल से नहीं निकलती। महाराज चाणक्य की प्रतिज्ञा न तो उन्हें भूल सकती है, और न उनकी काली नागिन सी लहराती हुई शिखा ही उन्हें उसे भूलने दे सकती है। इसलिए

आप उनकी चिन्ता न कीजिए, अभी कल उनका दूत मेरे पास सब कुछ पूछने के लिए आया था और इसीलिए मैंने आज आप सब को यहां आने का कष्ट दिया है।

भगवान् अपने पत्र में लिखते हैं कि "पंचनद देश आज वीर वृषल पर अपना धन जन सब कुछ न्योछावर करने को उद्यत है। घर घर में उनकी शूरवीरता के राग गाये जाते हैं। एक २ वृद्ध नारी वृषल को अपने पुत्र के समान मानती है। अभी पिछले रक्षा-बन्धन को देश के कोने कोने से महाराजा को इतने रक्षा बन्धन देश की भगिनियों और पुत्रियों की ओर से पहुँचे हैं कि उनका भार मनों तक पहुंच गया था। वृषल ने जिस समय यह सब कुछ देखा तो उनके नेत्रों में अश्रुओं का समुद्र उमड़ आया। मैंने उस समय उसे उसका उत्तरदायित्व याद दिलाया और बताया कि देश और देशवासियों का प्रेम अपने राजा के प्रति इस रूप में आज तक कभी प्रगट नहीं हुआ। वृषल ने यह सुनकर सिर झुका लिया और कुछ सोचने के पश्चात् कहा, "गुरु जी! मुझे राजा न कहिए, मैं इस प्रजा का जो मुझे इस प्रकार प्रेम करती है सेवक हूँ।"

परन्तु दुख और सुख के साथियो! वृषल को उसके राज्य और राज्यवासियों की यह भक्ति उस समय तक पूर्ण सुख नहीं दे सकती जिस समय तक कि उसके पहलू में मगध देश के अन्दर अग्नि प्रज्वलित हो रही है। क्या आप उसे शान्त करने का शीघ्र यत्न नहीं करेंगे? मैं यह मान नहीं सकता कि आप लोग इस समय तक शान्त होकर बैठे होंगे। परन्तु! कुछ हमें भी पता मिलना चाहिए। पंचनद के वीर आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे हैं, उन्हें भी तो कुछ विदित होना चाहिए कि प्राच्य देश में उनके भाई क्या कर रहे हैं?

राजमन्त्री—सिद्धार्थक, सुनाओ इसके उत्तर में तुम क्या कह सकते हो ?

सिद्धार्थक—महाराज ! इस समय सेना में हर जगह वृषल के साखों की चर्चा हो रही है। एक एक सिपाही उस शूर-वीर के दर्शन को आतुर हो रहा है, जिसने भारत वर्ष में से यवनों को उखाड़ बाहर फेंक दिया। सिपाही उसके कारनामों को सुनकर आपे में नहीं रहते।

निपुणक—और नगर भर में भी उनके साखों की चर्चा हो रही है। पाटली पुत्र का एक एक बालक उसके नाम को सुनकर जोश में आ जाता है। तेली तमोली भी उस नरशार्दूल के नाम पर मान करते हैं और चारों ओर यह पूछा जा रहा है कि क्या यवन सेना को भारतवर्ष से निकालने वाला नंद वंश को उसके पापों का दण्ड नहीं देगा।

इन्दु—सेनापति तक इस समय वृषल के लिए नौकरी छोड़ने को उद्यत हैं, हां एक महा-मन्त्री राक्षस है जो किसी तरह भी नंद वंश के प्रेम को छोड़ने पर तैयार नहीं। जिस समय महाराज चाणक्य ने प्रतिज्ञा की थी कि वह नंद वंश की ईंट से ईंट बजाएंगे तो राक्षस ने महाराज नंद को विश्वास दिलाया था कि वह चाणक्य के सम्पूर्ण मंत्रों को सर्वथा निष्फल कर देगा और इस प्रतिज्ञा पर वह इस समय तक अचल खड़ा है।

राजमन्त्री—हां, यह सत्य है, मैं उस राक्षस को चिरकाल से जानता हूं। और मुझे पता है कि वह प्राण दे देगा, परन्तु महाराज नंद से द्रोह न करेगा और यही कारण है कि उसने राजा को कई बार समझाया है कि वह अपने व्यवहार को ठीक कर के प्रजा के मन को हाथों में लेने का प्रयत्न करे। परन्तु भावी अटल है और वह राक्षस के सम्पूर्ण मंत्रों को निष्फल करने पर तुली हुई है। यही कारण है कि राजवंश राक्षस का कृतघ्न होने के

स्थान हृदय से उसके विरुद्ध हो रहा है, उस पर भी राक्षस उनकी सेवा से विमुख नहीं होगा।

इन्दु—तो इसका अर्थ यह है कि हमारे प्रयत्न करने पर भी युद्ध का होना आवश्यक है?

राजमंत्री—निस्संदेह! क्योंकि यह राक्षस और उसके साथी जब तक अपनी शक्ति की परीक्षा न कर लेंगे, पीछे नहीं हटेंगे, चाहे उसमें कितनी ही हानि उठानी पड़े।

इन्दु—तो फिर महाराज को यह सब कुछ विस्तार से लिख दिया जावे।

सब के सब—हां, और उनसे प्रार्थना की जावे कि वे शीघ्र ही पधारने की कृपा करें। नंदवंश के पाप मर्य्यादा से बढ़ रहे हैं और प्रजा की शान्ति का पात्र भरपूर हो चुका है।

चौथा परिच्छेद

वृषल की वक्तृता

युद्ध का शंख बजाया गया। पंचनद देश के जातीय नगाड़ेपर चोट पड़ी। पांच द्वाबों के वीर अपने वीर राजाओं के साथ मगध निवासियों को स्वतन्त्रता का सन्देश सुनाने के लिये कटिबद्ध हो गये। प्रणिधियों ने दूर-निकट सब स्थानों में इस समाचार को पहुँचा दिया, और नगर-नगर व ग्राम-ग्राम से वीर जन अपने पराक्रमी राजा की मित्रता का दम भरते हुये आ पहुँचे। न केवल पञ्जाबी ही, प्रत्युत तक्षकशिला और उसके आस-पास के रहे-सहे यूनानियों ने एक प्रबल सेना के रूप में अपनी सेनाओं को वृषल के चरणों में अर्पण किया। अफ़गानिस्तान के रहने वाले काम्बोज; जेहूँ और सेहुं के इस पार रहने वाले किरात और बलख के आस पास के बाह्लीक ही नहीं वरन् फारस के पारसीक (पारसी) भी इस युद्ध का दृश्य देखने के लिए सहस्रों और लाखों की संख्या में पञ्चनद देश की राजधानी में आ इकट्ठे हुए।

दूर दूर तक चारों ओर शस्त्रधारियों के अतिरिक्त कोई दिखाई नहीं देता था, मानों सारा देश ही क्षत्रियों से बस गया।

सेनायें सज गईं। प्रत्येक जाति और प्रत्येक दल के वीर अपने २ सरदार के झण्डे तले खड़े हो गये। वीर वृषल ने महामन्त्री चाणक्य के साथ सेनाओं का निरीक्षण किया और सबकी ओर लक्ष्य करके एक मनोवेधक वक्तृता में कहा:—

"योद्धाओ ! वीरो ! क्षत्रियो ! तुम जानते हो, तुम कहां जा रहे हो ? निस्सन्देह मृत्यु के मुख में ! वे लोग जो मृत्यु से डरते हैं यदि इस समय भी इस सेना से निकल जाएं तो बहुत अच्छा होगा । हां वह जो मृत्यु को, यमराज को, समर भूमि में ललकारने का साहस रखते हैं, वही और केवल वही इस युद्ध में मेरे साथी होंगे । क्योंकि यह पाप के विरुद्ध युद्ध है, भारत-भूमि को अपने कुपूतों के हाथों से मुक्ति दिलाने के लिए यह युद्ध है, हां यह एक ब्राह्मण की प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिए युद्ध है, क्या तुम इस प्रतिज्ञा की पवित्रता का अनुभव करते हो ?

मित्रो, प्यारो ! दुःख और सुख के साथियो ! नंद वंश के पापों की नौका अब भर रही है, उसकी प्रजा का एक एक पुरुष उनके हाथों दुःखी होकर उस सर्व शक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना कर रहा है, जो "तपः" है, जो पापियों को उनके पापों का दण्ड देनेवाला है, वह "रुद्र" स्वरूप परमात्मा अब इस वंश को इस भारत-भूमि से मिटाने पर तुल रहा है । हमने अपनी ओर से बहुत प्रयत्न किये, बहुत कुछ चेष्टायें कीं, परन्तु नंद-वंश की अवस्था दिन प्रति दिन अधिकाधिक बिगड़ती चली जा रही है । हा ! जब राजा ही जिसे प्रजा को पुत्र के समान समझना चाहिए प्रजा की बहू बेटियों की ओर मलिन दृष्टि से देखे, जब बाड़ ही खेती को खाने लग जाए और जब क्षत्रिय ही दुराचारी हो जाएं तो फिर देश का परमात्मा के सिवा और कौन रक्षक है ।

वीरो ! तुम उस परमात्मा के हाथ में साधन रूप हो । तुम्हें क्षत्रिय बनाया गया है ताकि पापियों को पापों का फल दो, क्या तुम अपने इस कर्तव्य का पालन करने को तैयार हो ?"

"निस्संदेह" "अवश्य" की घोषणा चारों ओर से होने लगी ।

"हाँ क्षत्रियो ! मुझे हर्ष है कि तुम लोग अपने धर्म को जानते हो और उसे पूरा करने को उद्यत हो। लो अब तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया। हमारी ओर से यह प्रयत्न किया गया था कि किसी तरह रक्तपात न हो, किसी तरह नन्द वंश की आँखें खुल जाए, और जो ऐसा न भी हो तो प्रजा में ही इतना बल आ जावे कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करके राजा को दण्ड दे सके। परन्तु जान पड़ता है कि भारत माता अपने कुछ पुत्रों का और बलिदान चाहती है। क्योंकि जहां यह बताते हुये हर्ष होता है कि मगध की प्रजा का एक बड़ा भाग हमारे साथ सहानुभूति रखता है, वहाँ इस बात की ओर से आंखें नहीं मूंदी जा सकती कि नन्दवंश के सहायक भी इस समय तक विद्यमान हैं, जो अपने प्राणों से उसकी रक्षा करेंगे। परन्तु, वीरो ! तुमने बहुत से कड़े समय देखे हैं, इसलिए क्या उनका यह मुट्ठी भर समूह तुम्हें साहस-हीन कर देगा ?"

उत्तर में फिर घोषणा हुई "कदापि नहीं, हम में से एक एक ऐसे लाखों देश द्रोही जनों का मुकाबिला कर सकता है।"

पांचवां परिच्छेद

युद्ध का आरम्भ

पाटली पुत्र के बाहर गंगा के इस पार दूर दूर तक जिधर दृष्टि जाती है, मनुष्यों के दल बादल दिखाई देते हैं, यह मनुष्य वह नहीं, जो नगरों के अन्दर सुख चैन से बसते हैं, प्रत्युत वह जो एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हैं, जिन्होंने एक दूसरे का रक्त बहाने की शपथ ले ली है।

नगर से थोड़ी दूर उस बड़ी प्राकार को गुजर कर जो नगर की रखवाली कर रही है और जिसमें गंगा और सोन का जल जमा होकर उसे दुस्तर बना रहा है महाराज नंद की सेना टिड्डी दल की भांति फैल रही है। ४००० (चार सहस्र) हाथियों की सेना दूर दूर तक एक काली दीवार बना रही है, जिन पर चार चार सैनिक सवार हैं—एक महावत, हौदों में दोनों ओर एक २ योद्धा और एक एक पीठ पर, अर्थात् १२ सहस्र लड़ाके तो हाथियों के सवार ही हैं।

हाथियों के बाद रथ के सवारों की सेना है। एक २ रथ में सारथि के अतिरिक्त दो दो धनुषधारी हैं, फिर अश्वारोही और पदातियों की तो गणना ही नहीं है।

इस बृहत्सेना का संचालन महामन्त्री राक्षस के हाथों में है जो इधर से उधर और उधर से इधर सारे प्रबन्ध को ठीक करने में लगा हुआ है।

दूसरी ओर वृषल के भारत सपूत हैं, जिनकी तर्तीब के लिये महामन्त्री चाणक्य नियुक्त हैं। यह सेना यद्यपि गिनती में थोड़ी

है, परन्तु किरात, काम्बोज, बहूलीक, यवन, पारसीक, मालव क्षुद्रक, सौभीत, कौलूत, गांधार और काठी जातियों के चुने हुए वीरों से रची हुई है, जिन्हें अपने वीर सेनापति के झण्डे के नीचे क्षत्रियत्व के हाथ दिखाने की उत्कट अभिलाषा बढ़ रही है। वृषल के नाम में न जाने कौन सी आकर्षण शक्ति है कि जहां जहां उसकी सेना गई है, लोग अपने आप उसमें सम्मिलित होने के लिए उपस्थित हुए हैं। यही कारण है कि उसके वीर सैनिकों की थोड़ी संख्या होने पर भी उनका साहस बढ़ा हुआ है।

युद्ध का शंख ज़ोर से फूंका गया, दोनों दलों के वीरों की तलवारें तेजी से म्यानों से निकलने लगीं। महा-मन्त्री राक्षस ने अपनी सेना को लक्ष्य करके कहा :—

"वीरो, योद्धाओ, समय आ गया है, अब तुम्हें राजा के अन्न का ऋण उतारना होगा। वही वृषल जिसे अभी थोड़ा समय हुआ, उसके दुष्कार्य्यों के कारण, राज्य से निर्वासित किया गया था वह एक सिड़ी ब्राह्मण की सहायता से पंचनद देश के लुटेरों और डाकुओं को साथ लेकर तुम्हारे सुख और शान्ति को नष्ट भ्रष्ट करने के लिये आ गया है। वही शार्दूल पुत्र जिसे स्वयं महाराजा नन्द ने अपनी गोद में पाला था, आज अपने पालने वाले का रक्त पीने पर कटिबद्ध है। क्या तुम यह देखोगे और उसे इसका दण्ड नहीं दोगे? क्षत्रियो! क्षत्रिय प्राण देते हैं, परन्तु रण से मुख नहीं मोड़ते। क्योंकि वे जानते हैं कि रण में लड़ते हुए मरने से सूर्य्य लोक मिलता है, रण में कट कर गिरने वाले शूर-वीर का आत्मा वाण के वेग से चन्द्रलोक और पितृ लोक को छेद-कर सूर्य्य लोक में पहुँच जाता है।"

राजपूतो! आज तक तुमने राजा का अन्न खाया है, अब उसे सफल करने का समय आ गया है। देखो मुट्ठी भर डाकू तुम्हारे सन्मुख कैसे खड़े हो सकते हैं। निस्सन्देह नौ लाख पदातिओं

और चालीस सहस्र सवारों के सामने इन इने-गिने लुटेरों का ठहरना अचम्भा होगा। साहस करो और मध्याह्न से पहले पहले अपने देश को इस महामारी से साफ करके दम लो, ताकि भविष्य में किसी को ऐसा करने का साहस न हो।

वीरो! इस युद्ध का मूल कारण वृषल और चाणक्य हैं। उनके चले जाने से यह सेना कुछ क्षण भी ठहर नहीं सकती। इसलिये तुम में ऐसा कोई है जो इन दोनों का सिर लाने का साहस रखता हो? उन्हें जीवित व मृत लाने वाले के लिए एक एक लाख पण पारितोषिक।

महा मन्त्री की वक्तृता समाप्त हो गई, किन्तु उसके हृदय की आगने सहस्रों हृदयों में आग लगा दी। वीरों की तलवारें म्यानों में अधीर होने लगीं और वे धड़कते हुए कलेजे और उछलते हुए रक्त के साथ आक्रमण की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

दूसरी ओर वृषल और चाणक्य भी असावधान नहीं थे। आज उन्हें पूर्णतया अपना युद्ध-कौशल दिखाना था। सेना की परिस्थिति वही थी, जो यूडीमोस (Oudemos) के साथ युद्ध में रखी गई थी। परन्तु उसमें अधिकता यह थी कि रिजर्व (सुरक्षित) सेना की संख्या बढ़ा दी गई थी और सेना को कई भागों में बांट कर प्रत्येक भाग को विश्राम का अवकाश देने का प्रबन्ध कर लिया गया था।

दोनों सेनाओं को युद्ध की अग्नि में झोंकने से पूर्व वृषल की वक्तृता सुनने योग्य थी। अपने वीरों को लक्ष्य करके उसने कहा :—

"योद्धाओ! तुम अपने ही रक्त और मांस के विरुद्ध युद्ध करने वाले हो। आज तुम अपने शरीर के टुकड़ों के रक्त से हाथ रंगने वाले हो यह दुख की और शोक की बात है। परन्तु इसका कोई उपाय नहीं। वैद्य शरीर के अंग को जो असाध्य हो जाय,

उसे काट डालते हैं और उन्हें उसे काटने में संकोच नहीं होता। इसी प्रकार आपको भी अपने शरीर के उस अंगको काटना है जो रोग दुःसाध्य ही नहीं, प्रत्युत असाध्य हो चुका है और जिसका प्रभाव अब दूसरों पर भी पड़ रहा है।

"यथा राजा तथा प्रजा" प्रसिद्ध है। जब राजा ही पापी हो तो प्रजा का पापी हो जाना स्वाभाविक है। हमने यत्न किया, हमारे मित्रों ने यत्न किया कि किसी प्रकार राजा का यह पापरूपी रोग दूर हो, परन्तु हमारा परिश्रम निष्फल हो गया। इसलिये निरुपाय होकर हम युद्ध पर कटिबद्ध हुए।

मित्रो! हमारे सन्मुख अब दो मार्ग हैं, एक ओर तो अपने ही रक्त के विरुद्ध संग्राम है, दूसरी ओर पाप फलीभूत होता है, इस अवस्था में हम क्या करें?

महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सन्मुख यही प्रश्न उपस्थित था, और उस समय भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने उसके इस जटिल प्रश्न की समस्या हल की थी।

आज कृष्ण के समान महाराज चाणक्य हमारे साथ हैं और उनकी सम्मति में अब अवस्था यहां तक पहुँच चुकी है कि हमें अपने अंग को काटने में संकोच न करना चाहिये, नहीं तो इससे शरीर रोगग्रस्त हो जायगा।

क्षत्रियो! मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि यद्यपि इस समय शत्रु की सेना संख्या में अधिक दीख पड़ती है, परन्तु हमें इसका कोई भय नहीं, क्योंकि हमारे साथ

धर्म की शक्ति

है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः!' प्रसिद्ध है और आज हम इसकी सत्यता का प्रमाण देंगे। पापी को मारने को पाप महाबली है, यह भी तुमने सुना होगा। आज अपने नेत्रों से देखोगे कि किस प्रकार पाप पापी का नाश करता है।

हां शूरबीरो ! बढ़ो, सत्य की चट्टान पर पग रखते हुए बढ़ो, पाप का नाश करते हुए बढ़ो। देवासुर-संग्राम है, पाप और पापियों से युद्ध है और इसमें कूदते समय हमारा कलेजा कांपना नहीं चाहिये। क्षत्रिय का जन्म ही निर्बलों की रक्षा और पाप के विध्वंस के लिए होता है और यदि वह ऐसा करते समय कांपता है तो वह क्षत्रिय नहीं है, भीरु है, पापी है।

वीरो ! क्या मुझे तुम्हें यह बताने की आवश्यकता है कि इस समय शत्रु की सेना के अन्दर भी आधी से अधिक सेना सत्य का साथ देने के लिये उद्यत है। वीरो ! स्मरण करो उन शूरवीरों की वीरता का जो इस समय शत्रु के साथ खड़े हुए तुम्हारा स्वागत करने को तैयार हैं। सावधान ! उन्हें हताश न करना। भारत वर्ष आज तुम्हें परमात्मा के औज़ार समझता है। आज पाप तुम्हारे नाम से कांपता है, देखना अपनी इस कीर्ति में कलङ्क न लगा देना।

महाराज वृषल की वक्तृता के पश्चात् महाराज विष्णु गुप्त चाणक्य ने कुछ शब्दों में सेना को उत्तेजना देते हुए कहा:—

शूरवीरो ! इस प्रकार के मनस्वी वीर और सत्य के प्रेमी राजा के प्रभाव के नीचे गीदड़ भी सिंह बन जाते हैं, मेरे जैसे ब्राह्मणों में भी क्षात्र धर्म की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, तो क्या क्षत्रियों के विषय में संसार यह कहेगा कि वे इस समय अपने राजा से विमुख हो गये ?

नहीं, कदापि नहीं, कदापि नहीं। वे क्षत्रिय जिन्होंने निर्धन और निस्सहाय होते हुए भी भारतवर्ष से उन वीर यवनों को निकाल दिया, जिनके खड्ग के सन्मुख पारस और अन्य देशों ने शिर झुका दिए थे, अब नन्द जैसे दुष्ट दुराचारियों का क्षय करने में पीछे नहीं रह सकते।

शूरवीरो ! यदि नन्द का ही खयाल होता तो मैं कहता हूं मुझे इतने सोच विचार की आवश्यकता न थी, उसे उसके पाप ही नाश करने के लिये पर्य्याप्त थे, परन्तु सारी शत्रु-सेना में एक व्यक्ति है जिसने इस समय तक उसे संभाल रखा है और वह आज का सेनापति महा मन्त्री राक्षस है।

परन्तु आज राक्षस को भी पता लग जायगा कि इस संसार में उसे अभी नीचा दिखाने वाले विद्यमान हैं। वह अपनी सारी शक्तियां लगाकर भी नन्दवंश की रक्षा नहीं कर सकेगा, क्योंकि पाप को आश्रय देने वाला स्वयं उसके साथ डूबा करता है।

इसलिये बढ़ो अपने राजा के बढ़े हुए साहस का साथ देते हुए शत्रु को बाणों से बींध दो, विजय अवश्य तुम्हारी है, इस में सन्देह करना भूल है।

छठा परिच्छेद

युद्ध-क्षेत्र

दोनों ओर के वीर अपने-अपने तेजस्वी सेना-पतियों की ज्वलंत वक्तृताओं को सुनकर अपने आपे में न रहे। उनके लिए अब चुपचाप खड़े रहना कठिन हो गया था। नेत्रों में रक्त छा गया, मुखमण्डल वीरता के मद से तमतमाने लगे। वीर और धीर घोड़े खुरों से पृथ्वी खोदने लगे। आखिर आक्रमण की आज्ञा हुई और आंख झपकते दोनों सेनायें परस्पर गुथ गईं, मानों समुद्र की दो तेज लहरें पूरी तेजी से टकराईं.........अथवा यों कहिए कि दो अजगर लड़ने के लिए आगे बढ़ कर एक दूसरे से गड्डमड्ड हो गये।

वीर सैनिकों की तलवारों को खुले दिल से काम करने का अवसर मिला और वें रक्त में नहाकर चारों ओर मास के टुकड़े उड़ाने लगीं।

वृषल का आक्रमण इस समय इस जोर का था कि उसे रोकना मानवी हाथों के लिये असम्भव हो रहा था। वह तलवार हाथ में लिये अपने स्वामी-भक्त घोड़े पर सवार, सिर से पांवों तक रक्त में लतपत शत्रु के सहस्रों जवानों को यमलोक का रास्ता दिखाता हुआ, बढ़ रहा था। वीर पञ्चनद-निवासी इस समय उसकी अध्यक्षता में वह हाथ दिखा रहे थे कि जिधर मुंह होता था, शत्रुओं को भागते ही बन आती थी, परन्तु इस पर भी राक्षस की वीरता कुछ करते-धरते बन न पड़ने देती थी। वह मनस्वी

इस समय अपने आपको भुलाये जिधर युद्ध का जोर देखता था उधर ही पहुँच जाता था। महाराज नन्द भी समर-भूमि में विराजमान थे, परन्तु इस प्रकार का युद्ध उनकी आंखों ने बहुत कम देखा था।

हाथी पर सवार वह इस समय राक्षस को सम्मति देना ही अपना कर्त्तव्य समझ रहे थे।

वृषल की तीक्ष्ण दृष्टि इस समय उनके हाथी पर थी, और वह रिपु-दल को काटता-छांटता, सब ओर से अपने आपको बचाता, उधर ही बढ़ा चला जा रहा था। रास्ते में कई बार घिरा; कई बार निकला, कई बार शत्रु के व्यूह में फंसा और फिर तलवार से रास्ता साफ करता हुआ साफ निकल गया।

उसके वीर सैनिक भी इस समय उसके अंग संग थे और इसे अकेले होने का अवसर नहीं देते थे। सेना का परिचालन इस तरह महामन्त्री चाणक्य के हाथों में पड़ गया था, और उसने भी आज इस कर्त्तव्य को पूरा करने में अपने सारे उपायों को लगा दिया था। शत्रु की सेना तूफान से क्षुब्ध हुए भयंकर समुद्र की भांति उनकी सेना से टकराती थी, परन्तु जिस प्रकार चट्टानों से टकराकर समुद्र झाग छोड़ता हुआ पीछे चला जाता है, उसी प्रकार बारम्बार पीछे हटती थी। चारों ओर मार-काट का बाज़ार गर्म था कि एकाएक वायु मण्डल में

"भारत माता की जय"

की भयंकर गर्जना इस ज़ोर से उठी कि आकाश-पाताल कांप गये। दोनों दल भीषण मार काट में लगे हुये किसी साझे विचार में मग्न होकर ठहर गये। सब के नेत्र उस ओर उठ गये, जिधर से यह शब्द हुआ था, तो एक आश्चर्य-जनक दृश्य दिखाई दिया।

वीर वृषल का घोड़ा इस समय महाराज नन्द के हाथी से जुट रहा था। वह पर्वताकार जानवर इस क्षुद्रकाय घोड़े को कुचल कर उसे मार डालने पर तुला हुआ था, परन्तु साहसी घोड़े की फुर्ती के सामने उसकी एक न चलती थी। वृषल के चेहरे पर इस समय मुस्कुराहट थी, मानों वह अपने स्वामी-भक्त घोड़े की वीरता का आनन्द लूट रहा था। एकाएक घोड़े ने उछल कर अपने दोनों अगले पांव हाथी के मस्तक पर टेक दिये। हाथी ने सूंड़ फेरी, ताकि उसके दोनों सुमों को पकड़ कर काई की तरह मरोड़ दे, परन्तु दूसरे ही क्षण में उसकी वह सूंड़ घोड़े के दांतों में थी।

पराक्रमी घोड़े ने दांतों को पीसकर सूंड़ को घायल कर दिया! हाथी दर्द से कराहा, उसके नेत्रों में इस समय क्रोध और भयंकरता की ज्योति थी जो सारे संसार को नाश करने की धमकी देती थी, परन्तु सूंड़ की पकड़ ने उसे विवश कर रखा था।

वह पीड़ा के मारे चीखता हुआ पृथ्वी पर लेट गया। महाराज नन्द के लिये यह समय बड़ा ही भीषण था, उन्होंने जल्दी से हौदे से बाहर निकलने का विचार किया, परन्तु इससे पहले कि वे अपने विचार में सफल हों, वीर वृषल ने

"भारत माता की जय"

की गर्जना करते हुए तलवार के एक भरपूर हाथ से सिर को तन से अलग कर दिया। दूसरे ही क्षण में तड़पता हुआ यह सिर उसके भाले की नोकपर ऊंचा होकर दोनों सेनाओं के सामने था!

यह सब कुछ इतनी शीघ्रता और इतनी तेज़ी से हुआ था कि कोई भी हाथ राजा की सहायता को न पहुँच सका, परन्तु सिर को देख कर वीर राक्षस का लहू जोश में आ गया और उसने अपने वीरों को ललकारते हुये कहा:—

"शूरवीरो ! धिक्कार है तुम्हारे जीवन पर, यदि तुम्हारे देखते देखते एक अकेला मनुष्य तुम्हारे राजा का सिर काट कर ले जावे और तुम्हारे हाथ तक न हिलें। खबरदार, राजा का सिर काटने वाला जीता बचकर न जावे ॥"

वीर योद्धा इन शब्दों को सुनकर झल्लाये हुए शेर की नाईं वृषल पर टूट पड़े। परन्तु उनसे घिर जाने पर भी वह उसी प्रकार मुस्कराता हुआ शत्रुओं का संहार कर रहा था। महामन्त्री चाणक्य ने इस समय अपने शूरवीरों को लक्ष्य करके कहा :—

"वीर सैनिको ! अत्याचारी ने अत्याचार का फल पा लिया, नन्द अब इस पृथ्वी पर नहीं। तुम्हारे राजा ने अकेले ही लाखों सहायकों से सुरक्षित उसका सिर काटकर तुम्हारे सामने ऊंचा कर दिया। चलो अब केवल एक आक्रमण की आवश्यकता है, शत्रु अब अधिक काल तक नहीं ठहर सकता।"

युद्ध का ज़ोर बढ़ गया, नन्द के नौ पुत्रों ने अपने पिता की हत्या का प्रतिकार लेने के लिये शपथ ली और अपनी अपनी सेना के साथ वृषल पर चढ़ आये। परन्तु वह नरशार्दूल अपने वीर सैनिकों के साथ उस समय इस घिरते हुये व्यूह में इस प्रकार संग्राम कर रहा था जिस प्रकार हाथियों के समूह में सिंह !

नन्द के आठों पुत्रों ने बारम्बार उसके हाथ से ज़मीन चाटी और अभी तक उसका साहस कम नहीं हुआ।

वीर चाणक्य ने इस समय राक्षस को संभाल रखा था। दोनों महा मन्त्रियों की सेनाएं एक दूसरे से जुटी हुई थीं कि एकाएक राक्षस को राज पुत्रों के मारे जाने का समाचार मिला और उसने एक पार्श्ववर्त्ती को बचाकर उनकी सहायता को पहुँचाना चाहा। परन्तु उस समय तक वृषल की रिज़र्व सेना आगे बढ़ चुकी थी, और नन्द का अकेला बाकी बचा हुआ पुत्र वृषल

और उस नवागत सेना के मध्य में बुरी तरह फंस रहा था। पीछे से चाणक्य की सेना का रेला आया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सेना में गड़बड़ी मच गई। वीर वृषल का प्रसिद्ध जयकार

"भारत माता की जय"

के रूप में फिर आकाश में गूंजा, जिसने चारों ओर खलबली मचा दी। सब ओर शत्रु सेना भयभीत हो भाग चली।

अभी पता नहीं कि यह मारकाट कब तक जारी रहती, और परमात्मा के कितने अमृत-पुत्र अपने पार्थिव शरीर से वियुक्त होते, परन्तु अस्त होते सूर्य्य ने नन्द की सेना की सहायता की और थोड़ी देर में अंधेरे ने अपनी चादर बीच में फैलाकर शत्रु और मित्र को अलग अलग कर दिया।

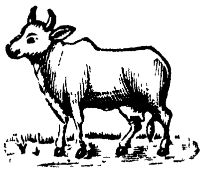

सातवाँ परिच्छेद

भूले हुये की खोज

लगभग सारे के सारे नन्द वंश को कटवाकर महामन्त्री राक्षस ने इस वंश के अकेले दीपक को सुरक्षित रखने के लिए रात्रि के अन्धकार का लाभ उठाते हुए सेना को दुर्ग में वापिस होने का आदेश दिया। दिन भर के भीषण युद्ध से थके हुए वीर बेतर्तीबी से दुर्ग की ओर बढ़ने लगे। सहस्रों हाथियों, सहस्रों रथों और लाखों सवार और पदातियों में रात्री के घने अन्धकार में क्रम का रहना असम्भव था, विशेषतः जब कि आदेश और आज्ञाएं भी बहुत धीमी दी जाती थीं। दुर्ग के अन्दर पहुँचकर राजकुमार की खोज हुई, परन्तु सबकी निराशा का अनुभव लगाया जा सकता है, जब कि यह मालूम हुआ कि वह लापता है!

अनुभवी गुप्तचरों को अन्धेरी लालटैन दी गईं ताकि यदि वह युद्ध क्षेत्र में घायल पड़ा हो तो उसकी खोज करें। परन्तु लाखों शत्रु और मित्रों में एक परिचित सूरत को ढूंढना सहज नहीं था। सब ओर गुप्तचर फिरते थे, एक एक लाश का सिर नीचा करके देखते परन्तु राजकुमार का कुछ पता न था।

रात्रि के तीन पहर इसी छानबीन में व्यतीत हो गये। युद्ध-क्षेत्र की सारी भूमि घूम घूम कर देखी गई परन्तु सब चेष्टा व्यर्थ हुई।

कुक्कुर के बोलने की आवाज सुनाई दी, जिसने इस भारी संग्राम के होने पर भी अपने समय को नहीं भुलाया था, अब थोड़ी देर में चिड़ियाँ चहकने लगेंगी। दूर फासले पर शत्रु-दल के पहरे की आवाजें भी सुनाई दे रही थीं। दिन निकलने में थोड़ा समय रह गया। "क्या सुमाल्य कैद हो गया? क्या वह शत्रु के हाथों पकड़ा गया?" इस विचार ने राक्षस के मन में (जो स्वयं खोज करने वाले समूह में से एक था) चुटकी ली और परिणाम का विचार करके उसका वीर हृदय भी काँप उठा। चाणक्य की खुली शिखा उसके नेत्रों के सन्मुख फिर गई, जो काले नाग के समान उस नवयुवक को डस रही थी।

और आगे बढ़ा, मनने कहा कि अब तलाश व्यर्थ है, सुमाल्य इस शव भूमि में नहीं, वह शत्रु के वश में है, परन्तु इस उत्तर से सन्तोष न हुआ, इसलिए धीरे से आवाज दी "सुमाल्य होत!"

कोई उत्तर न मिला, दो चार पग और आगे बढ़ा, सामने लाशों का ढेर पड़ा था, लालटेन नीचे की तो प्रकाश एक शरीर पर पड़ा जो रक्त और मिट्टी से विलिप्त हुआ अगाध निद्रा में सो रहा था।

बत्ती को और नीचा किया, चेहरे पर फिराया, तो सहसा मुंह से यह निकल गया।

"हा! कौशेयाम्बर धारी! तेरी यह दशा! प्रभु! क्या मेरी आँखें मुझे धोखा तो नहीं दे रही हैं? क्या नन्दवंश का अन्तिम दीपक भी बुझ गया?"

बत्ती पृथ्वी पर रख दी। कहते हैं "जब तक श्वाँसा तब तक आशा"। आशा एक ऐसी वस्तु है जो अन्तिम श्वास तक भी मनुष्य का साथ नहीं छोड़ती। उस समय जब कि सब वैद्य डाक्टर हकीम सिर हिला जायें, उस समय भी यही विचार होता है "क्या आश्चर्य! जो परमात्मा ज्योति स्वरूप हैं, कृपा

करें और यमराज इस प्राणी को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाँय।"

मुझे स्मरण है और भली भांति स्मरण है, जब मेरी माताका देहान्त हुआ, मैं सिरहाने बैठा हुआ सम्पूर्ण दृश्य देख रहा था। अविनाशी आत्मा नाशवान शरीर से वियुक्त हो रहा था। वह आंखें जो स्नेह से हमें देखा करती थीं, देखने की शक्ति से रहित हो गईं। उपनिषद्का कथन सत्य हो गया कि "आत्मा की शक्ति से ही अग्नि जलता है, इसी शक्ति से जल में प्रवहन है, यही शक्ति वायु को उड़ाने की सामर्थ्य देती है। यह न हो तो सारी शक्तियां रखते हुये भी यह प्रकृति अकिंचित्कर है।"

इस अद्भुत, अपूर्व, हृदय वेधक दृश्य को देखकर सब ढ़ाढ़ें मार कर रो रहे थे, परन्तु मैं इस शरीर को जिसने मेरे शरीर को जन्म दिया था, हाथ लगा कर उसकी गति को अनुभव कर रहा था। मुझे उस शरीर में अभी तक गर्मी प्रतीत होती थी; और संदेह होता था, कि वह जिसे लोग निश्चयात्मक कह रहे हैं, वास्तव में भूल तो नहीं?

यह उसी आशा का चमत्कार मात्र था, जो सब लोगों के निश्चय के विरुद्ध मुझे धीरज बंधा रहा था। और इसी आशा ने इस समय राक्षस को उस बात पर विवश किया कि वह बत्ती हाथ से रख कर उस शरीर को टटोल कर देखे कि उसमें प्राण भी हैं या नहीं?

महा-मन्त्री ने झुक कर राजकुमार के हृदय पर हाथ रखा। कुछ क्षण हाथ वहां पर पड़ा रहा परन्तु हृदय को ढाढ़स न हुआ, फिर नाक के आगे हाथ दिया, परन्तु श्वास चलता प्रतीत न हुआ, नाड़ी हाथ में ली, वह भी ठहर चुकी थी। एक मिनट तक उसे हाथ से न छोड़ा, कलाई से लेकर कंधों तक नाड़ियों को ढूंढ मारा परन्तु कोई फड़कती नज़र न आई।

संदेह धीरे धीरे निश्चय के रूप में बदलने लगा, वह बात जिसका भय था सच्ची होती प्रतीत हुई, परन्तु आशा ने फिर हाथ पकड़ा, बत्ती को आगे करके आंखों को उल्टाया, धड़कते हुए हृदयसे उसकी अवस्थाको देखा, परन्तु आह! वह पथरा चुकी थी!

शरीर ठंडा हो गया था, श्वास का कहीं पता तक न था; नाड़ी ठहरी हुई थी, आंखों की पुतली उड़ चुकी थी, अब निश्चय दिलाने के लिए शेष क्या कसर थी!

राक्षस ने दो हत्थड़ सिर पर मारी, नन्द-बंश का अंत होगया! चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी हो गई!!, उसकी क्रोधाग्निने नन्द-वंश के एक एक पौदे को भस्मसात् कर दिया!!!

दूसरे गुप्तचर आस-पास एकत्र हुए। महाराज नन्द और नंद वंश के उन राजकुमारों को, जिनके साथ महल के अन्दर जाते और बाहर निकलते सहस्रों मनुष्य अंगरक्षा में होते थे, जिनके संकेतमात्र पर मनुष्य का जीवन और मरण निर्भर था। हा! राजवंश के उन मैम्बरों को अलग-अलग अर्थियों पर सवार कराया गया! ताकि दुर्ग में जाकर उन्हें अग्नि देवता की गोद में सौंपने का प्रबन्ध किया जाये!!

जगत् की यही रीति है! इस नश्वर संसार का यही परिणाम है! वह जो पाप करते समय आगा-पीछा कुछ नहीं देखते, नोट करलें। वह जो अत्याचार करते समय सब कुछ भूल जाया करते हैं, वह जो भोग बिलास की लहर में बहे जाकर दूसरों के सुख-दुःख की ओर आंखें मूंद लेते हैं, स्मरण रखें कि एक शक्ति ऐसी विद्यमान है, एक शक्ति ऐसी है जो उनके सम्पूर्ण अत्याचारों का, उनकी समस्त शक्तियों का, उनके समग्र भोग-विलासों का अपने अदृश्य हाथ की ज़रा सी हरकत से अन्त कर सकती है।

इस साढ़े तीन हाथके शरीर पर अकड़ने वालो! तनक विचारो तो सही, जिस समय गर्व से अपना सिर ऊंचा करके दूसरों

को कुचलने का विचार किया करते हो, कभी यह भी तो सोचा करो कि इस अनन्त महान् और अचिंत्य ब्रह्माण्ड में तुम्हारी इस सृष्टि की, तुम्हारी इस पृथ्वी की, क्या स्थिति है। जब यह बात तुम्हारे मस्तिष्क में बैठ जाये, तो यह अनुमान लगाने का प्रयत्न किया करो कि इस लाखों मील की लम्बाई और चौड़ाई वाली वसुंधरा में जिसके अन्दर च्यूंटी से लेकर ह्वेल मछली तक शरीर वाले प्राणी विद्यमान हैं, तुम्हारे साढ़े तीन हाथ के शरीर की क्या स्थिति है ?

इस समय तुम्हें पता लगेगा कि तुम्हारा यह अभिमान या गर्व, तुम्हारी यह ऐंठ या अकड़, तुम्हारा यह अन्याय और अत्याचार, किस गिनती में है। हां, तब तुम्हें ज्ञान हो जायगा कि तुम इस अगाध संसार में एक तुच्छ कीड़े के समान थे जिसे एक क्षुद्र सा व्यक्ति पांवों तले कुचल सकता है! किन्तु नहीं, मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा पड़ा रहता है, वही प्रकृति जो इसकी आंखें खोलने का कारण होनी चाहिये थी, इसकी इन्द्रियों को कर्म हीन बनाने का कारण हो जाती है, इसकी बुद्धि के निर्मल दर्पण को धुंधला कर देती है, इसकी आंखों पर चर्बी छा जाती है, और वह नन्द और नन्द-वंश की नाईं पाप और अपराध को अपने जीवन का आदर्श बना लेता है। वह पाप करता है, और उसमें सुख अनुभव करता है। परन्तु परमात्मा का नियम पूर्ण है, ईश्वरीय नियम अपना काम बराबर करते हैं, वे रोग को, व्याधि को, रहने नहीं दे सकते। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर रोग को अपने अन्दर से दूर करने की चेष्टा करता है, इसी प्रकार ईश्वरीय नियम पाप रूपी रोग को जब वह अपनी मर्यादा को उल्लंघन कर जाय, दूर करने के लिये चेष्टा करते हैं। उस समय, हां उस समय, साधारण सी और प्रत्यक्ष में क्षुद्र सी देख पड़ने वाली बातें बड़े बड़े भयानक परिणाम उत्पन्न कर देती हैं। एक

छोटी सी चिंगारी से उड़ी हुई आग सारे संसार को नाश कर देने की धमकी देती है। गले काटने वालों के सिर धूलियों में मिल जाते हैं, अभिमानी मनुष्यों के कपाल ठोकरें खाने लगते हैं, बड़े बड़े विशाल वृक्ष जड़-पेड़ से उखड़ जाते हैं और प्रकृति के शान्त-मार्ग में जो अड़चनें थीं वह दूर होकर एक बार फिर यह सृष्टि अपनी प्राकृत गति को आरम्भ कर देती है।

आठवां परिच्छेद

राज्य सभा में झगड़ा

समय रङ्ग पलटता है, यह कभी एक रस नहीं रहता। अभी कल शेष नाग वंश के अन्तिम राजा महापद्म नन्द का दाह कर्म्म संस्कार किया जा रहा था, चिता पर चन्दन और घी डाला गया था, रानियां साथ सती हो रही थीं, चारों ओर शोक छा रहा था। परन्तु आज राज्य सभा एकट्ठी हो रही है और इस विषय पर विचार किया जायगा कि शत्रु से संग्राम किस प्रकार जारी रखा जाये !

सारे के सारे सभा के लोग आ गये और महा मन्त्री ने उन्हें लक्ष्य करके कहा :—

"महाराज नन्द के हितैषी सज्जनो ! आज महाराज नन्द हम में नहीं, परन्तु उनकी हत्या प्रतिकार के लिये पुकार रही है। उनका भौतिक शरीर अग्नि में जल कर भस्म हो गया, परन्तु उनका आत्मा उस समय तक शान्त नहीं होगा जब तक कि उनके घातक का सिर शरीर से अलग न किया जायगा ! हा ! कितनी लज्जा की बात है कि राजा हमारे देखते देखते इस संसार से चल दें, परन्तु हम हाथ भी न हिलायें, हाय ! हम क्यों न इस समय से पहले ही चल दिये, हम क्यों यह समय देखने के लिए जीवित रहे !!! परन्तु नहीं, सर्वशक्तिमान परमात्मा हमारे हाथों महाराज के घातक से प्रतिकार लेना चाहते हैं, और हम उस समय तक सुख से न सोयेंगे जब तक कि शत्रु को नीचा न दिखा लें।

परन्तु इस बात की ओर से नेत्र नहीं मूंदे जा सकते कि इस समय हमारे सिर पर महाराज का छत्र नहीं है और बिना महाराज के हम इस महान् कार्य्य को पूरा नहीं कर सकते। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि हमारे सिरपर हमें सीधा मार्ग दर्शाने को कोई अधिपति हो। यह बात कहने की आवश्यकता न पड़ती यदि महाराज के सपूतों में से एक भी इस समय हममें विद्यमान होते, परन्तु महाशोक! कि कल के युद्ध ने नंद-वंश का एक प्रकार से क्षय ही कर दिया! इस कारण मैं चाहता हूं कि किसी ऐसे व्यक्ति को जो आयु में, अनुभव में, पराक्रम में इस योग्य हो, राजा बनाकर हम शत्रु से प्रतिकार लें। मेरी दृष्टि इस समय एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ती है, जो दधीच के समान हमें सदैव शत्रु पर विजय दिला सकता है, और वे वृद्ध महाराज सर्वार्थ सिद्ध हैं। क्या आप मेरे साथ इस बात पर सहमत हैं, कि उन्हें राज्य का भार सौंप कर हम शत्रु को विध्वंश करने का कार्य्य अपने हाथ में लें।

विराध गुप्त और दो एक अन्य मन्त्रियों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया, जिनके पश्चात् सेनापति उठकर खड़े हुए। आपने कहा :—

"प्रिय सज्जनों! महाराज महापद्म नंद युद्ध में लड़ते हुए इस भौतिक शरीर से वियुक्त हुए। उनके सुपूत भी इसी प्रकार युद्ध में जीवदान कर गए, उनका यह सौभाग्य है। हम सब इस प्रकार की मृत्यु का शुभागमन करने को उद्यत हैं। भगवान कृष्णचन्द्र गीता के अध्याय २ श्लोक ३१, ३२ में कथन करते हैं कि "क्षत्रिय के लिए धर्म युक्त युद्ध से प्रशस्ततर और कुछ नहीं। सौभाग्यवान हैं वे क्षत्रिय जो अनावृत स्वर्ग द्वार की भांति अपने आप प्राप्त हुए ऐसे युद्ध को उपलब्ध करते हैं।"

इसलिए महाराज के विषय में हमें शोक करने की आवश्यकता नहीं। उनके अन्दर कुछ भी त्रुटियां थीं, परन्तु युद्ध भूमि में लड़ते हुए मारे जाने से वे सीधे सूर्य्य-लोक को प्राप्त हुए, यह हर्ष का विषय है, शोक का नहीं।

परन्तु इस समय जो विचार उपस्थित किया गया है वह ऐसा नहीं कि तुरंत ही निर्णय कर लिया जाये। महाराज सर्वार्थ सिद्ध वृद्ध हैं, ईश्वर भक्त हैं, हमारे पूजनीय और माननीय हैं, परन्तु वे राज पद के अधिकारी हैं वा नहीं, यह विचारणीय बात है। महात्मा होना, ईश्वर का भक्त होना और वृद्ध होना और बात है और नीति निपुण तथा युद्ध विशारद होना और बात है। "महात्मा पुरुष" नीतिमान मंत्रियों के हाथों में कठपुतली होता है। वह इस विद्या से अभिज्ञ होता हुआ एकमात्र उनके संकेत पर चलता है। इस कारण राज्य पद के संभालने के योग्य नहीं होता।

"हम नंद-वंश के सेवक थे, नंद वंश हमारे मान और हमारे आदर का पात्र था, और हमने अन्तिम समय तक उसका साथ दिया, परन्तु अब जब कि इस वंश का कोई व्यक्ति इस आसन को ग्रहण करने के लिए उपस्थित नहीं है हम इस बात पर बाध्य नहीं कि महामन्त्री जी के कथन को स्वीकार करें।

"मैं कहता हूं इस समय जब कि शत्रु हमारे द्वार पर बैठा है, हमें एक पराक्रमी बल-बुद्धि युक्त नीति-कुशल और साहसी राजा की आवश्यकता है, और सेना केवल ऐसे ही राजा के सन्मुख सिर झुकाएगी और उसी के लिए अपने बहुमूल्य प्राण निछावर करेगी, केवल मन्त्रियों का मन प्रसन्न करने के लिए नहीं। महाराज सर्वार्थ सिद्ध की आयु तपश्चरण में व्यतीत हुई है और इस समय भी वह इसी काम के योग्य हैं। इसलिए इस समय उनके सिर पर राज्य-पद का बोझ डालना न केवल उनपर

प्रत्युत प्रजा पर भी घोर अत्याचार होगा, जिसका अनुमोदन करने के लिए कमसे कम मैं उद्यत नहीं हूं।”

“एक बात और, और वह यह कि महाराज नन्द इस समय हममें नहीं। नन्दवंश से दूर का सम्बन्ध रखने वाला कोई व्यक्ति मिलता नहीं, सिवा एक के। और वह हमारा वर्तमान शत्रु वृषल है। महाराज नंद को उसने खुले युद्ध में जीता है इसलिए न केवल शास्त्र के कथनानुसार ही प्रत्युत युद्ध के नियमानुसार भी वह पाटलीपुत्र का स्वामी है। वह भगवान कृष्णचन्द्र के कथनानुसार शूद्र होता हुआ भी पूरा क्षत्रिय है, क्योंकि भगवान कहते हैं :—

“शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध में पीठ न दिखाना और शासन की योग्यता, यह क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।”

यह सारी बातें हमें उसमें दिखाई देती हैं। यवनों के साथ युद्ध में वह अपने देश हित का परिचय दे चुका है। अभी अगले दिन के युद्ध में हम उसके विक्रम को देख चुके हैं। सारे देशकी प्रजा इस समय उसके गुण गान कर रही है। इस अवस्था में क्या यह उचित न होगा कि हम जो कुछ उसका है उसे देकर सम्पूर्ण युद्ध को समाप्त कर डालें। यह विचारणीय बात है।”

इस वक्तृता ने सभा के विचारों को सहसा पलट दिया। सेनापति के पश्चात् मन्त्री शकटार ने उठकर कहा :—

निस्सन्देह जो कुछ सेनापति जी ने कहा, सर्वथा सत्य है। महाराज सर्वार्थ सिद्ध एकान्त में बैठकर योगाभ्यास करने के सिवा इस योग्य नहीं हैं कि सेना को युद्ध भूमि में लेजा कर शत्रु से लड़ा सकें। दूसरी ओर वृषल है जिसने अपने जीवन से प्रजा के दिलों को मोहित कर रखा है। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय राज्य उसके हाथ में सौंपते हुए हमें संकोच होता है क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि लोग हमें कायर और डरपोक

कहेंगे। आनेवाले इतिहास-वेत्ता कदाचित् यह भी कह दें कि हमने अपनी प्राण रक्षा के लिए पाटलीपुत्र को शत्रु के हाथ अर्पण कर दिया, परन्तु यह सब कुछ जानते हुए भी मैं कहता हूं कि धर्म के सामने लोक-लज्जा कोई चीज नहीं। नंद वंश से सम्बन्ध रखने वाला अकेला पुरुष होने के कारण वृषल इस राज्य का स्वामी है। युद्ध में विजय पाने से भी वह इस राज्य का अधिकारी है, प्रजा का एक बड़ा भाग भी उसे चाहता है। वह भविष्य के लिए हमें और हमारे राज्य को सुरक्षित रख सकता है। फिर हमें झूठी लोक लज्जा अधिकारी का अधिकार छीनने अथवा अधर्म करने की प्रेरणा कर रही है तो हमें इसे परे फेंक देना चाहिए। महामन्त्री जी इस समय क्रोध में हैं, वे नंद वंश के शत्रु को अपना शत्रु मान रहे हैं और मैं इस बात के लिए उनका मान करता हूं, परन्तु मैं कहता हूं कि क्या यह नंद-वंश के साथ अन्याय नहीं कि इस वंश से थोड़ा सा संबंध रखने वाले शूरवीर को भी इस संसार से उठा देने के लिए युद्ध को जारी रखा जाय। क्या नंद वंश का प्रेम यह नहीं चाहता कि जिस व्यक्ति में उस अंश का थोड़ा सा भी रक्त शेष है, उसे पूजनीय और माननीय समझ कर उसकी रक्षा की जाए।"

सभा में परस्पर विरोध हो गया। महामन्त्री राक्षस का प्रस्ताव सेनापति और शकटार की प्रबल युक्तियों के सामने फीका पड़ गया। दोनों ओर बड़े बड़े मन्त्री थे जिनमें से कोई भी अपने विचार को बदलने पर तैयार न था। राक्षस के अन्दर अपने मृत स्वामी की हत्या के प्रतिकार की आग धधक रही थी। इसलिये वह लोगों को इसके लिये उत्तेजना दे रहा था। दूसरी ओर सेना का प्रतिनिधि और प्रजा के विचारों को उपस्थित करनेवाला मंत्री दोनों सहमत थे, जो अधिकार अधिकारी को अर्पण कर के परमेश्वर के पुत्रों का रक्त बहाने से बचना चाहते थे। देर तक

विवाद होता रहा, देर तक तर्क वितर्क होता रहा, एक की युक्ति दूसरा न मानता था। अन्त में बहु सम्मति से निश्चय करने का विचार किया गया। परन्तु बहु सम्मति पहले से ही नंद वंश के विरुद्ध थी, इसपर वृषल की वीरता और पराक्रम तथा देश भक्ति ने और भी मोहित कर रखा था, इसलिए विजय सेनापति और शकटार की रही और निश्चय हुआ कि वीर वृषल को संधि का संदेश भेजकर भविष्य में रक्तपात को बन्द करके प्रजा को सुखकी नींद सोने का अवसर दिया जावे। महामन्त्री को बलात् इस निर्णय के सन्मुख सिर झुकाना पड़ा। परन्तु उनकी आंखें बताती थीं कि अभी उसने अपने अन्तिम शस्त्र नहीं फेंके और वह मन ही मन कुछ सोच रहा है।

नवां परिच्छेद

गुरु शिष्य की बात चीत ।

सायंकाल है, सूर्य्य देवता दिनभर की यात्रा के पश्चात् पश्चिम दिशा की गोद में विश्राम करना चाहते हैं । ईश्वर के प्यारे इस समय नगरों से बाहर निकल कर नदियों के तीर चले गये हैं, ताकि खुले वायु में सुनील नभोमण्डल के नीचे, छप छप करते जलके तट पर परमेश्वर की महिमा देखकर उसके दर्शनों में मग्न हो जाँय । पाटली-पुत्र के सहस्रों नर-नारी इस समय नगर के बाहर बहने वाली गण्डक, सोन और गंगा के तट पर जाकर परमेश्वर की उपासना में लवलीन हैं । देश में युद्ध की हालत है । सिपाही और शस्त्र धारी शत्रु के रक्त के प्यासे हैं परन्तु इस पर भी नगर निवासी पूर्ववत् शान्त मन हुए उस सर्व शक्तिमान की उपासना में मग्न हैं जो निर्बलों को बल और पापियों को दण्ड देने वाला है, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि उनका देश एक आर्य्य राजा से युद्ध कर रहा है । इसलिए यह संभव नहीं कि वह संध्या समय का अनुचित लाभ उठाए । नहीं नहीं, मैंने भूल की है, उन्हें कभी स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं उठी कि एक आर्य्य नरेश इतना पतित हो सकता है कि वह संध्या समय नगर के फाटक खुले देखकर उसके अन्दर मारकाट करने का साहस करेगा ।

वृषल की सेना के पंच-नदीय, तातारी, पारसी और बाह्लीक नवयुवक अपने आप को इस आश्चर्य्यमयी भूमि में पा कर इसका दृश्य देखने में इतने मुग्ध हो गए हैं कि उन्हें यह भी ज्ञान

नहीं कि समय कितनी जल्दी व्यतीत हो गया। रात्रि आन पहुँची, आकाश में जहां-तहां तारे निकल आये हैं, एक ओर से चन्द्रदेव भी अपना सिर ऊंचा कर रहे हैं ताकि इस विचित्र दृश्य को जो कदाचित् जगत भर के इतिहास में अनुपम है, देख सकें।

इस समय नगर के निकट ही गंडक, सोन और गंगा के संगम के पास हम एक गेरुए वस्त्र पहिने साधु को चुपचाप नदी तटपर बैठे ध्यान में मग्न देखते हैं उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस विश्व व्यापी घोर मौन में जो इस समय नदी के ओर-छोर छा रहा है, परमेश्वर की महिमा का चिंतन कर रहा है। परन्तु एकाएक एक ओरसे पांवों की आहट सुनकर वह जल्दी से उठा और आगन्तुक जन और वह दोनों आमने सामने हुए। एक मिनट तक दोनों चुप रहे, जिसके पश्चात् नवागन्तुक ने साधु से कहा :—

नवागन्तुक—अहा! खूब रंग बदला इन्दु, इस समय तो मैं भी तुम्हें पहिचान न सका। कहो किस नाम से प्रसिद्ध हो?

साधु—गुरुजी! यह सब आपकी ही कृपा है, यहां मुझे जीव सिद्धि भिक्षु के नाम से पुकारते हैं।

गुरुजी—कहो! क्या समाचार है?

साधु—जब से आया हूं, महाराज राक्षस के यहां ही डेरा जमाये हूं, प्रत्येक कार्य्य वह मुझे बताकर करते हैं।

गुरुजी—नवीन समाचार?

साधु—नवीन समाचार यह कि राज्य-सभा में हमारे मित्रों की कृपा से यह निश्चय हुआ है कि पाटलीपुत्र का राज्य वृषल को सौंप दिया जावे और शीघ्र ही आप लोगों के पास इसके लिए दूत भेजा जायगा।

गुरुजी—परन्तु क्या राक्षस इतनी सुगमता से सब कुछ मान गया?

साधु—नहीं, उसे बहु सम्मति के सन्मुख सिर झुकाना पड़ा, तो भी उसने साहस नहीं छोड़ा और उसका विचार कुछ और ही है।

गुरुजी—क्या ? क्या वह छल से काम लेगा ?

साधु—महाराज नन्द का प्रतिकार लेने में उसे किसी बात का संकोच नहीं, उसने राज्य सभा में मुंह की खाई है, परन्तु इसका बदला किसी और उपाय से लेगा।

गुरुजी—तो यह कहिए, अब शस्त्र युद्ध नहीं मंत्र युद्ध होगा। अच्छा यदि राक्षस की यही इच्छा है तो यही सही। उस अनादि अनन्तस्वरूप की कृपा से जो सत्य का सहायक है, जो पाप का नष्ट करने वाला है, हम इस युद्ध में भी इसे परास्त करेंगे। कहो कौन सा नवीन मंत्र उसने सिद्ध किया है ?

साधु ने इधर उधर देखा, फिर गुरु के कान से होंठ लगा दिये, और न जाने क्या कहा, परन्तु जो कुछ भी कहा उसे सुन कर गुरुजी की आंखें खुल गईं और उसने धीरे से कहा—

गुरु—निस्सन्देह यह एक अमोघ मंत्र है, परन्तु राक्षस को यह ज्ञान नहीं कि वृषल ब्रह्मचारी है, इस कारण यह जादू वहां नहीं चलेगा। अच्छा जो ईश्वरेच्छा, देखा चाहिये क्या होता है।

थोड़ी देर तक इधर उधर की और बात चीत हुई, जिसके पश्चात् गुरुजी जो हमारे पुराने परिचित महाराज चाणक्य के सिवा और कोई नहीं थे, कुछ सोचते हुए अपने शिविर को वापिस लौटे। पाटलीपुत्र के आस-पास का सम्पूर्ण प्रदेश उनके लिये मानो अपना घर था। उसके सम्पूर्ण ऊचे नीचें स्थानों से वे परिचित थे, इस लिये किसी छल से पकड़े जाने का भय नहीं था, यही कारण था कि वे बेखटके चले जा रहे थे। रास्ता भर उनका मस्तिष्क सोचता चला गया। कई एक स्थानों पर वे

ठहरे, इधर उधर ध्यान से देखा और फिर चल दिए, यहां तक कि दूर से अपने शिविर के पहरेदारों की आवाज़ सुनाई देने लगी।

महात्मा जीव सिद्धि उनसे विदा होकर कुछ समय इधर उधर टहलते रहे। फिर नदियों के संगम में स्नान करके उपासना की और थोड़ी देर के पश्चात् हमारी दृष्टि से ओझल हो गए।

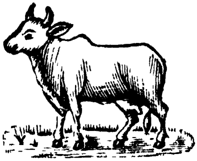

दसवां परिच्छेद।

दूत का आगमन

महाराज वृषल का दर्बार उनके युद्ध शिविर में सजा हुआ है। महाराज सिंहासन पर विराजमान हैं। बराबर में महामंत्री विष्णुगुप्त चाणक्य आसन पर विराजमान हैं। एक ओर गांधार पति पर्वतेन्द्र का आसन जमा है। दूसरी ओर बैठे हुए मालव सर्दार, काठी सर्दार, सौभीत पति, यवन सैनिक, वाह्लीक पति, पारसीक राजा और अन्य सेनापति ऐसे शोभा दे रहे हैं, जैसे चन्द्रमा के आस पास तारा मण्डल। पाटलीपुत्र को घेरने के उपाय सोचे जा रहे हैं। सब के सब अपनी अपनी बुद्धि अनुसार योजनाएं बता रहे हैं। परन्तु महामंत्री जी सर्वदा मौन साधे बैठे हैं। उनका बलवान मस्तिष्क कुछ सोच रहा है, परन्तु कदाचित् इस सोच के प्रकट करने का अवसर नहीं आया।

सहसा एक सेवक ने उपस्थित हो कर प्रार्थना की "पाटलीपुत्र से दूत आया है और सेवा में उपस्थिति की आज्ञा चाहता है।"

महाराज ने मंत्री की ओर देखा, जिन्होंने उत्तर में कहा "आने दो।"

दूत ने उपस्थित होकर दण्डवत की और फिर हाथ बांधकर प्रार्थना की।

"भगवन्! महामन्त्री राक्षस की आज्ञा से मैं सेवा में उपस्थित हुआ हूं। पाटलीपुत्र वालों की यह उत्कट इच्छा है कि अब जब कि नन्द वंश रूपी वृक्ष भगवान की क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो

गया है, आप जो कि महाराज के सच्चे उत्तराधिकारी हैं, राज्य को सम्भालें।

चारों ओर से "साधु," "साधु" की घोषणा होने लगी।

दूत—महामन्त्री जी ने भगवन् की सेवा में कुछ उपहार भेजे हैं उन्हें पेश करने की आज्ञा दो।

आज्ञा दी गई और दूत ने एक एक करके सहस्रों बहुमूल्य पदार्थों को पेश किया, जिनके अंत में एक सुन्दर रूप लावण्यवती कोमलाङ्गी कन्या आई। यह भी एक उपहार था।

चाणक्य—शेष सब उपहार राजकोष में सुरक्षित रखे जायँ परन्तु इस स्त्री को महाराज सेवा में नहीं ले सकते, क्योंकि वे ब्रह्मचारी हैं, इसलिये ले जाओ, इसकी आवश्यकता नहीं।

दूत का रंग उड़ गया, न जाने किस विचार ने उसके चेहरे से सारा रक्त पी लिया। उसने महामन्त्री के मुख की ओर देखा परन्तु वहां कुछ भी पता न मिल सका।

महाराज वृषल ने कहा "निस्सन्देह गुरुजी सत्य कहते हैं, वृषल किसी स्त्री को सेवा में लेने के अयोग्य है।"

दूत चुप था। यह सब कुछ उसके लिये अकस्मात् हुआ था, इसलिये वह कोई उत्तर देने के योग्य न था।

स्त्री चुपचाप पीछे हटने को थी कि महारज वृषल के पार्श्व में बैठे हुए पर्वतेन्द्र ने जल्दी से कहा :—

पर्वतेन्द्र—गुरुजी आपका कथन सत्य है, परन्तु स्त्री को निराश करना कामदेव के क्रोध को प्रज्वलित करना है, और साथ ही पाटलीपुत्र वासियों के मन को दुखी करना है, इसलिए दूत को निराश करना अच्छा नहीं।

महामन्त्री ने सिर उठाकर तीक्ष्ण दृष्टि से पर्वतेन्द्र की ओर देखा। आंखें मन के आंतरिक भावों को समझ गईं। मन ही मन बोले "पापी, पाप का भाव छोड़ नहीं सकता, अच्छा इसका फल

भोग" फिर ऊंची आवाज़ से "यदि आप इसे अपनी सेवा में ले सकते हैं, तो महाराज दूत को निराश नहीं करेंगे।"

पर्वतेन्द्र—जिस बात में आप प्रसन्न हों, उसमें मुझे क्या संकोच हो सकता है।

दूत सफल मनोरथ होकर वापस आया। पाटलीपुत्र निवासियों की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। महामन्त्री के भेजे हुए सम्पूर्ण उपहार अंगीकार कर लिए गए। पाटलीपुत्र ने युद्ध अग्नि से छुटकारा पाया। अब घर घर में मङ्गलाचार हो रहा है, सब लोग उस परम पिता के चरणों में शीश नवा रहे हैं जो जलती अग्नि को शान्त करने वाला है, जो शत्रुओं को मित्र बनाने वाला है और जो अनाथों का नाथ और निर्धनों का धन है। पाटलीपुत्र को एक बलवान राजा मिल गया जो सारे उत्तर भारत को एक सूत्र में पिरो देगा। बड़े बड़े नीतिमान और विचार-शील इस पर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। परन्तु क्या उनकी ये आशाएं पूरी होंगी ? देखा चाहिये।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

पर्वतेन्द्र शयनागार

पर्वतेन्द्र का खेमा इस समय अपनी सजावट में राजकीय महलों को नीचा दिखा रहा है। इधर उधर झाड़फानूसों ने जग-मग कर रखी है, भोग विलास की सारी सामग्री चारों ओर सज रही है। स्वयं पर्वतेन्द्र इस समय अपने आपे में नहीं, इस समय उसके आनन्द का वारापार नहीं। हृदय हर्ष की तरंगों से तरंगित है और उन तरंगों ने उसे इस ढलती आयु में भी तरुण बना रखा है। बेटा मलयकेतु इस युद्ध में साथ है, भाई विरोचक अंग-संग है परन्तु कामदेव ने आज सारी लाज शर्म दूर कर दी है। नवोढ़ा कन्या को जिस समय से उसने दर्बार में देखा था उसके धीरज का कटोरा छलक उठा था, और उसकी निराशा की कोई थाह नहीं रही थी, जिस समय महाराज चाणक्य और वृषल ने सहमत होकर उस कन्या को वापिस भेजने को कहा था।

परन्तु फिर जब साहस करके उसने उसे महाराजा से मांगा और उन्होंने सहर्ष उसे उनके हाथ सौंप दिया तो अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके मन की क्या अवस्था होगी। इस समय आधी रात आगे आधी पीछे है, पहरेदारों के सिवा सारी सेना घोर निद्रा में मग्न है, परन्तु पर्वतेन्द्र की आंखों में निद्रा नहीं। वह इस समय उस सुन्दरी के साथ बैठा हुआ उसके हाथ से सुरापान कर मस्त हो रहा है। यह लो, लड़खड़ाती हुई जिह्वा से वह बोला—

पर्वतेन्द्र—प......प......प्रिये ! तो क्या तुम नन्द की पुत्री हो ?

कन्या—(कटाक्षसे) महाराज ! मैं उनके महल में पली हूँ, लीजिए नां यह प्याला।

पर्वतेन्द्र—प्याला क्या, यदि प......प......प्यारी तू विष भी पिला दे, तो भी वह इस समय अमृत बन जाए, तेरे हाथ (हाथों को हाथों में लेकर) ओह हाथ है...........क्या चांदी के डले हैं। प्यारी क्या तू इन्हें मेरे गले में नहीं डालेगी ?

कन्या—महाराज आप क्या करते हैं, मैं क्या भागी जा रही हूँ, अब आयु भर आपके ही तो पास हूं।

पर्वतेन्द्र—ओह। आयु भर......प्यारी कौन जाने प्रभात होगा या नहीं, प्यारी।

कल करे सो आज कर, आज करे सो अब।

आओ गले से तो लगो..................

कामदेव की शक्ति संसार में सबसे प्रबल शक्ति है। कामदेव इस नश्वर जगत में सब से बड़ा बलवान भूत है ! लोग कहते हैं, भूख की शक्ति एक बड़ी शक्ति है, यह ठीक है, परन्तु सत्य तो यह है कि जहां भूख मनुष्य की इन्द्रियों को काम करने से रोक देती है, वहां कामदेव की शक्ति उसे अन्धा कर देती है, उसे आंखें रखते हुए भी, सब कुछ देखते हुए भी, कुछ नहीं करने देती। उपदंश के रोगियों को देखो, मूत्र कृच्छ के बीमारों का हाल मालूम करो, वे इस भूत के सिर पर सवार होने से पहले सब कुछ जानते थे, परन्तु इन सब के होते हुए भी कान आँख बन्द करके जलती आग में कूद गए, और अब नीम की टहनी हिलाते हैं।

काबुल के शाह अमीर अब्दुलरहमान खान के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि वह दुराचार का घोर शत्रु था। व्यभिचार का बीज नाश करने के लिये उसने पूरा पूरा यत्न किया था। उसके

शासन काल में एक नवयुवक व्यभिचार के अपराध में पकड़ा जाकर अमीर के सामने पेश किया गया। अमीर ने उसकी आँखों में आंखें गड़ा कर कहा "क्या तुझे ऐसी हरकत या काम करते वक्त अमीर अब्दुलरहमान याद न था।"

नवयुवक ने हाथ जोड़ कर विनती की "शाह! मैं सब कुछ जानता था, अमीर का भय मेरे शरीर के एक एक परमाणु में मौजूद था, पर........"

अमीर—हां, पर क्या?

नवयुवक—हजूर जिस समय कामदेव का भूत सिर पर सवार हुआ मैं आंखें रखते हुए भी अन्धा था, कान रखते हुये भी बहरा था, उस समय न परमेश्वर दिखाई देता था, न अब्दुलरहमान!

निस्सन्देह उस नवयुवक का कथन सत्य था, यह भूत वह है जिसे वशमें करना सहज नहीं। किसी कवि ने कहा है:—

काम क्रोध इन दोय को जो नर करे अधीन।
जग ताको पानी भरे, अरु लोक जीत लिए तीन॥

इस भूत ने इस समय पर्वतेन्द्र को अपने वश में कर रखा था। उसे आगा पीछा कुछ भी न सूझता था। हां! इस समय उसकी दशा कैसी करुणाजनक थी। सहस्रों मनुष्यों का शासक एक सुन्दरी के कटाक्ष पर नाच रहा था, और उसकी प्रसन्नता में ही अपना जीवन समझ रहा था।

हमारी लेखनी उस दृश्य का वर्णन करने में असमर्थ है, जो इस समय पाठकों के सन्मुख है और न यह आवश्यकता है कि उसे पाठकों के पवित्र हृदयों के सन्मुख रखा जाए, इसलिए हम इस पर अन्धकार का पर्दा डालते हैं। परन्तु हाय! यह क्या हुआ, यह चीख किधर से आई? हाय! यह तो महाराज पर्वतेन्द्र कराह रहे हैं? इधर उधर से भृत्यगण नींद से गड़बड़ा कर उठे, और दौड़े हुये आए, परन्तु पर्वतेन्द्र की अवस्था क्षण क्षण में शोच-

नीय हो रही थी। राजवैद्य दौड़ते हुए आगे आए, उन्होंने नाड़ी देखी, रक्त की परीक्षा की और सिर हिला दिया, क्योंकि राजा का सारा शरीर विष रूप हो रहा था। महाराज चाणक्य भी वहां पर आ पहुँचे, छोटे बड़े सारे के सारे वैद्यों ने हाथ पांवों मारे, परन्तु कुछ क्षणों में रोग असाध्य हो गया और सबके देखते देखते इतने योग्य और सिद्धहस्त वैद्योंके होते हुए भी यमराज अपने शिकार को सब के बीच में से उड़ा कर ले गया।

वैद्य सब के सब आश्चर्य्य में थे, क्या बात हुई; इस आकस्मिक मृत्यु के अन्दर क्या रहस्य छिपा है। कोई कहता था विष दिया गया, कोई बताता था सर्प ने डस लिया, कोई कुछ कहता था और कोई कुछ, परन्तु किसी भी बात पर दो वैद्य सहमत न होते थे।

महाराज चाणक्य इस समय तक चुप थे। वैद्यों को परस्पर झगड़ते देखकर उन्होंने आज्ञा दी "इस स्त्री को तुरन्त बन्दी घर ले जाओ" उनके संकेत पर दो वैद्यों ने उस के रक्त की परीक्षा की, और उनके आश्चर्य्य की सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि उसका रक्त नहीं विष ही विष है। उस समय सबके मुख से निकला

अरे! यह तो विष कन्या * है

---

* पुरातन ग्रन्थों में इस प्रकार की स्त्रियों का वर्णन आता है, वे बाल्यावस्था से ही विष खिलाकर पाली जाती थीं, इससे उनका रक्त विषैला हो जाता था, सुतरां उनसे मैथुन करना मृत्यु थी। (आनन्द)

बारहवां परिच्छेद

राक्षस का देश निर्वासन ।

विष कन्या को सिपाहियों के निरीक्षण में सारे शिविर में फिराया गया । उसे देखकर और यह जानकर, कि उस वीर के, जिसे शत्रु युद्ध क्षेत्र में मारने में असक्त रहा था, इस तरह छल और कपट से प्राण लेने का यत्न किया गया । सिपाहियों और योधाओं के हृदय क्रोध और जोश से भड़क उठे । उन सबके मुंह में एक ही शब्द था, वह यह कि शत्रु को छल कपट का दण्ड देना चाहिए । राज सभा में इकट्ठे होने वाले सेनापतियों की सम्मति भी यही थी । चारों ओर क्रोध और आवेश की नदी उमड़ी हुई थी, क्योंकि हृदय अधीर हो रहे थे, तलवारें म्यानों में तड़प रहीं थीं, और "प्रतिकार" की आवाज गूंज रही थी ।

परन्तु महाराज चाणक्य (जिनकी तीव्र बुद्धि ने इस आई हुई विपत्ति को ठीक उसी तरह टाला था, जिस तरह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन से कर्ण की छोड़ी हुई शक्ति को) दूसरों से अधिक जानते थे, सुतरां महाराज पर्वतेन्द्र का अन्त्येष्टि संस्कार करने के पश्चात् जो सभा हुई उसमें उन्होंने वक्तृता देते हुए कहा :—

"मित्रो ! यह समय आवेश में आने का नहीं, आवेश से रक्त गर्म उठता है और मस्तिष्क यथार्थ विचार के योग्य नहीं रहता । महाराज वृषल के प्राण लेने का यत्न किया गया है । और हम सब जानते हैं । परमात्मा का इसमें भी कोई भेद होगा कि जिस विपत्ति को हम सर्वथा टालना चाहते थे उसे स्वयं महाराज

पर्वतेन्द्र ने अपने मुख से मांगा। इसीलिए तो कहा गया है कि भावी अटल है।

महाराज वृषल के स्थान में महाराज पर्वतेन्द्र ने अपने प्राण दे दिए इसका हम सबको शोक है, परन्तु क्या इस अपराध का दण्ड हमें पाटलीपुत्र की प्रजा को देना चाहिए? क्या महामन्त्री राक्षस ने इस विषकन्या को यहां नहीं भेजा था? और क्या हम यह मान लेने में सत्य पर हैं कि राक्षस के साथ इस पाप में प्रजा और दूसरे मन्त्री सम्मिलित थे?

नहीं, जिस समय तक किसी के अपराध का पूरा प्रमाण विद्यमान न हो, हमें उसे अपराधी ठहराना उचित नहीं है, क्योंकि प्राण लेना सहज है, परन्तु उसे फिर वापिस लेना असम्भव!

इसलिये मैं समझता हूँ कि इस समय पाटलीपुत्र की प्रजा और मन्त्रियों से हमारी एक माँग (याचना) होनी चाहिए, और वह यह कि महामन्त्री को हमारे हाथ सौंप दिया जावे तब संधि हो सकती है और तभी हमें महाराज के जीवन की ओर से भरोसा हो सकता है, अन्यथा नहीं।

महामन्त्रीजी की वक्तृता का एक एक शब्द गम्भीर विचारों से पूर्ण था, इसलिए सभा के सम्पूर्ण सभासद बड़े ध्यान से उसे सुन रहे थे। अन्तिम वाक्य पर आकर महाराज चाणक्य ने ऊंची नज़र करके चारों ओर देखा और हैरानी से कहा।

"परन्तु यह क्या? मैं आज सभा में महाराज पर्वतेन्द्र के सुपुत्र राजकुमार मलयकेतु को नहीं देखता। क्या वे पिता के शोक में इतने शोकातुर हो रहे हैं कि इस सभा में भी नहीं आसके।"

इस समय सभा में उपस्थित लोगों ने भी चारों ओर देखा और उन्हें पहली बार मालूम हुआ कि राजकुमार मलयकेतु आज अपने स्थान से अनुपस्थित हैं।

पूछ ताछ से पता लगा कि राजकुमार तो पिता के अन्त्येष्टि संस्कार में भी विद्यमान न था। जाँच की गई तो मालूम हुआ कि कोई मनुष्य उनसे यह कहता हुआ सुनाई दिया था कि "महाराज पर्वतेन्द्र को स्वयं चाणक्य ने मरवाया है और अब वह तुम्हारा प्राण लेगा, क्योंकि तुम्हें मगध के राज्य में भाग नहीं देना चाहता" और जान पड़ता है कि उस समय अत्यन्त घबराहट में मलयकेतु शिविर छोड़ कर भाग गया।

यह सुनकर महाराज चाणक्य को जो शोक हुआ वह अकथनीय है। आपने कहा "हाय! कुमार, तू नहीं जानता कि तूने क्या खोया है।"

परन्तु मलयकेतु के भाग जाने से भी बढ़कर एक बात थी, जिसने उनकी आखें खोल दीं और वह यह कि शत्रु के कर्मचारी उनके अपने शिविर में राजकुमारों तक भी पहुँच रखते हैं! इसलिए उन्हें और भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

पाटलीपुत्र में महाराज वृषल की ओर से उत्तर पहुँचा, तो क्रोध और घृणा की एक लहर थी जो राज सभा में से निकलकर प्रजा के एक एक व्यक्ति तक पहुँच गई। क्षत्रियों के विश्वास का अनुचित लाभ उठाया गया और उन्हें शत्रु और मित्र की दृष्टियों से गिराया गया। इस भावना ने सब के मुख से यह कहलवा दिया कि निस्संदेह महाराज वृषल सत्य कहते हैं, राक्षस को उनके हाथों में अवश्य समर्पण किया जाना चाहिए।

राक्षस को भी पल पल के समाचार पहुँचते थे, वे सारी बात को सोच रहे थे, और जिस समय उन्हें यह पता लगा कि प्रजा का एक भारी दल "देश घातक! देश घातक!" कहता हुआ उनके महल की ओर बढ़ा चला आ रहा है और उसे रोकनेवाला कोई नहीं, क्योंकि राज कर्मचारी स्वयं उनके साथ सहानुभूति रखते हैं, तो उन्हें सिवा इसके अन्य कोई उपाय नहीं रहा कि

चोर दरवाजे की राह से अकेले अपने कुछ साथियों के साथ नगर से भागकर अपने प्राण बचाएं।

राक्षस नगर से चला गया, परन्तु वह इतनी भीरु और डर-पोक प्रकृति का मनुष्य न था कि इस प्रकार सहज ही में अपने विचार से पीछे हट जाता। तौ भी वह यह जानता था कि अब पाटलीपुत्र के अन्दर रहते हुए उसका अपनी युक्तिको कार्य्य में परिणत करना असम्भव है। इसलिए अपने मित्रों और शुभ-चिन्तकों की एक बड़ी संख्या पर भरोसा रखते हुये उसने उस नगर को और उस सम्पत्ति को जानबूझकर छोड़ दिया, जिसमें इतने समय तक उसने और उसके बन्धुओं ने मन्त्रि पद को अलंकृत किया था, जहां इतने समय तक उसने राजा से दूसरे दर्जे के लोगों पर शासन किया था। परन्तु जाता हुआ वह अपनी स्त्री और बच्चों को वहीं छोड़ गया। यह मानों उसके अचल धैर्य का एक नमूना था, जो यह बताता था कि वह सदा के लिए नहीं जा रहा है प्रत्युत एक बार फिर आएगा और विजय व आनन्द की ध्वजा फहराता हुआ आएगा।

तेरहवां परिच्छेद

राजकीय प्रवेश।

महामन्त्री राक्षस नगरनिर्वासित हो गये। नगर के लोगों ने उनकी रीति नीति के विरुद्ध घृणा प्रकाश करते हुए अपने हार्दिक भावों का प्रमाण दिया। महाराज चाणक्य की मांग पूरी हो गई अब कल रात्रि के बारह बजे नगर में राजा का प्रवेश होगा।

बाजार और सड़कें सजाई जा रही हैं! पाटलीपुत्र आज सचमुच कुसुमपुर बन रहा है। चारों ओर सजावट ही सजावट शोभा दे रही है। नगर निवासी तक्षक शिला के हीरो और नन्द के विजेता का स्वागत करने के लिये एक दूसरे से बढ़ रहे हैं। उनके हर्ष की कोई थाह नहीं रही, छोटे बड़े सबके सब आनन्द में मग्न हो रहे हैं।

महाराज चाणक्य ने नगर के चित्रकारों और महमारों को बुलाकर आज्ञा दी कि "ज्योतिषियों ने अर्धरात्रि का मुहूर्त महल में प्रवेश के अर्थ नियत किया है, इस कारण यह अत्यावश्यक है कि नगर के द्वार आदि शीघ्र अलंकृत किये जायँ।"

महमार— (एक स्वर होकर) भगवान! हमारे सूत्रधार दारु वर्मा ने पहले ही महाराज के प्रवेश का विचार करके इस कार्य्य को आरम्भ कर दिया था, पूर्व द्वार की अलंकृति प्रायः समाप्ति पर है और शेष कार्य भी शीघ्र समाप्त हो जायंगे!

चाणक्य—(प्रसन्न होकर) वाह वाह! दारुवर्मा! तुम अत्यन्त बुद्धिमान हो, तुम्हारी इस राजभक्ति का फल तुम्हें बहुत शीघ्र मिलेगा।

आधी रात आगे आधी रात पीछे है, ठीक मध्य रात्रि का समय है संसार के लोग इस समय सोते होंगे, परन्तु पाटलीपुत्र के लोग इस समय रात को दिन बना रहे हैं। नगर से बाहर और नगर के अन्दर सड़कों के दोनों ओर मनुष्यों की पंक्तियां बंध रही है। राजकीय हस्ती उसी शत्रु को जिसे कल वे कुचलने को तैयार थे, बंदना (सलामी) करने को पंक्तिबद्ध खड़े हैं। पदाति और सवार मगध देश के भावी राजा का स्वागत करने के लिये सज रहे हैं।

एकाएक शंख की घोषणा ने सवारी के चल पड़ने का परिचय दिया। सब से आगे सवारों के दस्ते नङ्गी तलवार के साथ थे। उनके पीछे महाराज वृषल की बाडीगार्ड के दस्ते नङ्गी तलवारें लिये चले आते थे। इनके पश्चात् महाराज नन्द की अपनी निजकी हथनी चन्द्ररेखा पर सवार महाराज विरोचक चले आते थे, जिन्हें इनके ज्येष्ठ भ्राता पर्वतेन्द्र की सेवाओं की प्रतिष्ठा में मगध के अर्ध राज्य का अधिकारी बनाया गया था। महाराज विरोचक की इस समय की शोभा का वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। शरीर पर लोह-कवच था जिनके ऊपर रङ्गीन चोला पड़ा था। कंठ में "हिम-विमल मुक्तामणि" की माला अपनी चमक से नेत्रों को चौंधिया रही थी, सिर पर मुकुट शोभा देता था, पुष्पों से विशाल हृदय भरा था। विजय के हर्ष में मुखमण्डल जगमगा रहा था। पीछे पीछे विशेष अभिप्राय से महाराज चन्द्रगुप्त का रिसाला चल रहा था। लोगों ने इस समय उनकी अलौकिक छवि को देखकर यही समझा कि महाराज वृषल स्वयं आ रहे हैं!

चारों ओर से "भारत सुपूत महाराज वृषल की जय" "नन्दकुल शत्रु की जय" "मगध हितैषी की जय" की गर्जना होने लगी, परन्तु अभी महाराज वृषल का हाथी बहुत फासले पर था, सहस्रों

सवारों के पश्चात् उनकी सवारी की बारी थी जो उससे भी बढ़ कर तड़क भड़क से चली आ रही थी।

फाटक पर पहुँच कर सवारी रुकी वेदपाठी ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों की ध्वनि से आने वाले का शुभागमन किया, राजों और राजकुमारों ने जो महाराज विरोचक की सवारी के साथ थे, घोड़ों की बागें खैंची और महाराज की सवारी फाटक के अन्दर दाखिल हुई।

परन्तु हाय यह क्या हुआ! हस्तिनी एक छलांग से दरवाजे के गुंबद में दाखिल हुई और उसके साथ ही महराब के धड़ाम से गिरने की आवाज़ कानों में आई। चारों ओर धूआंधार हो गई, क्या हुआ? कैसे हुआ? कुछ समझ में न आता था। धूल और धुन्ध कुछ कम हुई तो एक मनुष्य का आकार दिखाई दिया, जो राजकीय हथनी पर खड़ा महाराज विरोचक के मूर्छित सिर पर जञ्जीर से वार कर रहा था।

सहसा "छल"! "कपट"!! "धोखा"!!! "दगा"!!!! यह शब्द आकाश में गूंजे, और उनके साथ ही सहस्रों बाण वायु में उड़ते दिखाई दिये, जिनके लगने से घायल होकर वह मनुष्य भूमि पर गिरा, तो पता लगा कि चित्रकारों का सर्दार दारुवर्मा है।

रङ्ग में भंग पड़ गया! महाराज विरोचक का शरीर वैद्यों के पहुँचने से पहले ही ठंडा हो गया। उनका महावत वर्वरक पहले ही ठंडा हो चुका था। महाराज चाणक्य भी घटनास्थल पर पहुँच गए और उन्होंने नगर निवासियों की ओर लक्ष्य करके कहा:—

"कुसुमपुर निवासिओ! आप लोगों के विश्वास पर, आप लोगों के आमंत्रण पर, आप लोगों की इच्छा पूर्ति के लिए, हम इस समय इस नगर में प्रवेश कर रहे हैं, परन्तु आप अपने नेत्रों

से देख रहे हैं यह क्या हो रहा है, हम पर विश्वासघात करके प्रहार किए जा रहे हैं। युद्ध क्षेत्र में, समर भूमि में, सम्मुख आने की शक्ति न रखते हुए, हमें छल और कपट से नाश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इससे पूर्व विष कन्या द्वारा महाराज वृषल के प्राण लेने का प्रयत्न हुआ, परन्तु उस विपत्ति को महाराज पर्वतेन्द्र ने अपने सिर लिया। अब फिर इस महराब को गिराकर शत्रु ने अपनी समझ में महाराज वृषल के प्राण लिए हैं! परन्तु, जान पड़ता है कि परमात्मा को अभी उनसे कोई कार्य लेना है जो यह विपत्ति भी महाराज पर्वतेन्द्र के भ्राता महाराज विरोचक ने अपने सिर ली।

मैं इसके लिये आपको दोषी नहीं ठहराता, क्योंकि मैं जानता हूं कि आप लोगों की सहानुभूति हमारे साथ है, परन्तु इस सहानुभूति का प्रमाण तभी मिल सकता है जब आप लोग इस छल और कपट के करने वाले को पकड़ने में राज्य की सहायता करेंगे। हम आप लोगों के अतिथि हैं और निस्सन्देह अतिथि सेवा यह नहीं जो हमसे की जा रही है।

सवारी इस समय उसी प्रकार चलती रहेगी, इसमें इस विघ्न के होते हुए भी कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, और आज महाराज वृषल पाटलीपुत्र में प्रवेश करके नन्द-वश और उसके साथ ही पाप और अधर्म का सदा के लिये बीज नाश कर देंगे।

महाराज विरोचक का शरीर राजकीय ठाठ से उठाया गया और सवारी शोक में डूबी हुई आगे बढ़ी। नगर वासियों के मन भी इस अकस्मात वज्रपात से बुझ से गए, परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी सब यही कहते थे कि "महाराज वृषल की कोई दैवी शक्ति रक्षा कर रही है।"

चौदहवां परिच्छेद

राजकीय प्रासाद

नियत मार्गों से होती हुई सवारी राजकीय प्रासाद में पहुँची। जिसके अन्दर रानियाँ और राजकुमारियाँ उस वृषल को जो इस स्थान पर बहुत दिनों तक खेला था, जिसे इस स्थान से अपमान पूर्वक निकाल दिया गया था, और जो पाप और पापियों का दमन करके आज सहस्रों प्रकार के आदर मान के साथ पाटलीपुत्र में प्रविष्ट हुआ था, उस वृषल का स्वागत करने के लिए खड़ी थीं। प्रासाद के अन्दर पहुँचकर वृषल हाथी से उतर पड़े और पाँव प्यादा आगे बढ़े। माताओं और बहनों ने मंगलाचार गाया। माता मुरा ने जिसके हृदय के टुकड़े को बिछुड़े हुए इतना समय हो चुका था, अपने वीर सपूत का मस्तक छाती से लगा लिया दोनों ओर आँसुओं की झड़ी बंध गई, देर तक माता पुत्र को गोद में लिए रही, और फिर मुंह सिर चूमकर आगे बढ़ने की आज्ञा दी।

चारों ओर पुष्प वर्षा होने लगी, झाड़ फानूसों की ज्योति में प्रासाद ज्योतिर्मय हो गया, रानियां और राजकुमारियाँ इस समय स्वर्ग की अप्सराओं को मात कर रही थीं।

किसी से बधाई किसी से आशीर्वाद लेते हुये महाराज अन्त में शयनागार में पहुँचे, जहां उनके लिये मुलायम शय्या बिछी हुई थी। राजा के उत्ताम से उत्तम मणि-माणिक इस शय्या के

आस पास जग मगा रहे थे। बढ़िया और सुन्दर वस्त्र दिन भर के परिश्रम से थके हुये वृषल का स्वागत कर रहे थे।

शयनागार में पहुँचकर वृषल ने आदर से अपना सिर गुरुजी के चरणों में झुकाकर कहा :—

"गुरुजी ! अब आप विश्राम कीजिये" परन्तु गुरुजी ने इस आवाज़ को नहीं सुना। उनकी आँखें कमरे के चारों ओर फिरती हुई उसे ध्यान से देख रही थीं। एकाएक उनका सिर झुक गया, वह अभिमानी सिर जो सिवा परमात्मा के कभी किसी मनुष्य के सन्मुख नहीं झुका था, नीचा हो गया, दृष्टि भूमि में पड़ गई।

कुछ क्षण तक यही अवस्था रही, जिसके पश्चात् एकाएक उनके मुख से निकला "हूं"

वृषल—महाराज ! क्या बात ?

उत्तर में चाणक्य ने हाथ के संकेत से चुप रहने को कहा और साथ ही सेवक को जो पहरेदार था पुकार कर कहा "शरीर-रक्षा जनों (Body guard) को तुरन्त यहां आने को कहो"

यह आवाज सुनकर महाराज वृषल की नींद उड़ गई, वह जल्दी से शय्या से उठकर गुरुजी के पास पहुँचे, परन्तु वह भूमि पर दृष्टि टिकाये शनैः शनैः भूमि नापते हुए आगे बढ़ रहे थे।

ध्यान से देखा तो च्यूंटियों की एक पंक्ति थी जो एक दरार की राह अंदर आ रही थी।

शरीर रक्षक वीर भी आ पहुँचे, और उन्हें साथ लेकर महाराज चाणक्य और वृषल आगे बढ़े तो कितने ही पेचीले मार्गों से होकर च्यूंटियां भूगर्भ स्थान में नीचे उतरती हुई प्रतीत हुईं।

महाराज चाणक्य ने वृषल को कहा :—

चाणक्य :—आप देखते हैं इन च्यूंटियों के मुख में क्या है, ध्यान से देखिए तो पता लगेगा कि यह पिपील की रोटी के कण उठाए आ रही हैं, इसलिए जहाँ से आती हैं वहाँ पर रोटी के

खाने वालों का होना आवश्यक है, जिस प्रकार धूमवाले स्थान में अग्नि का होना आवश्यक है।

छानबीन करने पर पता लगा कि एक सुरङ्ग में कई एक मनुष्य छिप रहे हैं, ताकि रात को सोते समय महाराज को मारकर यमपुर भेजा जाये।

यह मालूम होते ही सबके प्राण सूख गये। महाराज चाणक्य के क्रोध की सीमा न रही, आपने तत्काल आज्ञा दी कि इस स्थान के चारों ओर काष्ठ भरकर उसे अग्नि लगादी जावे ताकि भविष्य में राजद्रोही जनों को उचित शिक्षा मिले।

आज्ञा के अनुसार किया गया। सैकड़ों जवान अग्नि देवता के क्रोध की भेंट हुए। लोगों के दिलों पर दुख और क्रोध बारी बारी छा गए। उनके अतिथिसत्कार पर यह तीसरा आक्रमण था जो नंद के हितैषियों की ओर से किया गया था, वे सोचते थे कि क्या करना चाहिए, परन्तु समझ न आती थी।

बारम्बार के छल और धोखे की घटनाओं ने वृषल के पवित्र हृदय पर बहुत बुरा असर किया, उस पर रात्रि भर का जागरण अलग था, परिणाम यह हुआ कि आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया।

चतुर और सयाने वैद्य बुलाये गये, महाराज नन्द के निज के वैद्य अभय दत्त ने एक शर्बत तजवीज किया और उसे गिलास में डालकर महाराज को पेश किया, ताकि उसे पी जाए।

वृषल ने गिलास हाथ में लिया और उसे गट गट चढ़ा जाने को था कि महाराज चाणक्य की तीक्ष्ण आंखें क्रोध से चमक उठीं और उन्होंने वृषल का हाथ पकड़ कर गिलास थामते हुये कहा:—

चाणक्य—वैद्य जी! इस शर्बत से क्या लाभ होगा?

अभयदत्त—चित्त प्रसन्न होगा। निद्रा आ जायगी और शरीर स्वस्थ हो जायगा।

चाणक्य—(गिलास हाथों में लेकर) तो इसे पहले स्वयं पीजिये।

वैद्य को अपनी औषधि स्वयं होंठों से लगा लेने के सिवा अन्य कोई उपाय न रहा, परन्तु इधर शर्बत कंठ से नीचे उतरा उधर अभय दत्त लड़खड़ा कर पृथ्वी पर गिरा, और देखते देखते छट-पटाकर ठंडा हो गया !!!

पन्द्रहवां परिच्छेद।

अमात्य मुद्रा

"हैं! यह क्या किम्वदंती है, राक्षस यहां से भाग कर मलयकेतु के पास पहुंचा, जिसने पिता का प्रतिकार लेने की शपथ उठाई है, और दोनों ने परस्पर मिलकर म्लेच्छ राजाओं से प्रार्थना की है कि उन्हें इस कार्य्य में सहायता दें। उधर यवन भी उनकी सहायता के लिये उद्यत हैं। राक्षस ने नन्द का प्रतिकार लेने की शपथ ली है और अब मलयकेतु को मगध का राज्य देने का बचन दे रहा है।"

अस्तु, कोई बात नहीं........संसार जानता है मैंने नन्द को जड़मूल से उखाड़ने की प्रतिज्ञा की थी और उस प्रतिज्ञा के एक एक शब्द को पूरा किया है। एक लंगोटधारी ब्राह्मण ने संसार से नंदवंश का नाम मिटा दिया है, और यदि आज उसकी क्रोधाग्नि शान्त हुई है तो उसका कारण यह नहीं कि उसमें अब और किसी को जलाने की शक्ति नहीं, प्रत्युत केवल इसलिये कि जलाने के लिये अब उसके सम्मुख कोई वस्तु नहीं।

सात्विक क्रोध की अग्नि में नन्दवंशरूपी वृक्ष की एक एक शाखा झुलस चुकी है। ब्राह्मणों के मंत्र और क्षत्रियों के यन्त्र उसे संभाल नहीं सके। वह जो मुझे यहां से निकलते देखकर हंसते थे आज राख का ढेर हैं व घरबार छोड़ कर देश निर्वासित हो रहे हैं। वह जो कल मेरे दुख में दुखी थे, आज प्रसन्न हो रहे हैं।

"वही प्रारब्ध जो कल नन्द के सिरपर हंसती थी आज वृषल के चरणों को छू रही है ! वह सिंहासन जिसपर बैठकर नंद पाप करता था आज वृषल के धार्मिक चरणों से पवित्र हो रहा है। यह शक्ति है प्रेम और क्रोध की !"

"जिस प्रकार सिंह पर्वत के शिखर से हस्ती को नीचे फेंक देता है, उसी प्रकार नन्दवंश को मैंने अपने बलवान हाथों के एक ही आघात से मगध के सिंहासन से नरकाग्नि में फेंक दिया और उसे संभालने वाला कोई नहीं। परन्तु नहीं, नंदवंश के नाश से क्या लाभ ? जब तक राक्षस विद्यमान है, वह दूर व निकट इस वँश से संबन्ध रखने वाले मनुष्य को सन्मुख रखकर वृषल को दुःख देता रहेगा। वृषल को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति में मगध का राज्य देकर मेरा धर्म है कि मैं उनकी रक्षा करूं। इसलिये जब तक राक्षस विद्यमान है, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई ! महाराज नंद में उसकी भक्ति अटल है और उसे वश में लाने के लिये हमें कोई न कोई उपाय अवश्य ढूंढना होगा। इसमें सन्देह नहीं नन्द वंश के अन्तिम चिन्ह सर्वार्थ सिद्धि का भी अन्त हो गया, परन्तु मलयकेतु से राक्षस ने प्रतिज्ञा की है, और वह हमारे राज्य को उलटने में कोई उपाय उठा न रखेगा।"

फिर आपही आप :—

"साधु ! वीर मन्त्री ! मनुष्यों में वृहस्पति !! साधु !! तेरी राजभक्ति का जब तक यह संसार विद्यमान है जगत गान करता रहेगा। संसार के लोग अपने राजा की सेवा करते हैं किसी फल की आशा पर। विपत्ति में साथ देते हैं, तो इस आशा पर कि भले दिन फिर आयेंगे। और उन्हें उस सेवा का फल मिलेगा। परन्तु मृत स्वामी के कारण सर्वस्व गंवा देना, विशेषतः जबकि उसके वंश का कोई भी पुरुष इसका फल देने को शेष न रहा हो, यह तुममें ही देखा। धन्य हो मन्त्री, धन्य हो !!"

"कायर से मित्रता निष्फल है, मूर्ख से उससे भी बढ़ कर निष्फल है, और बुद्धिमान और वीर पुरुष से भी मित्रता की आवश्यकता नहीं जबतक कि उसके अन्दर सच्चा प्रेम न हो। वे पुरुष जिनके अन्दर शूरवीरता और बुद्धि के साथ स्वामी से प्रेम विद्यमान हो, दुख और सुख में उसके साथी होते हैं, इसलिये मैं चाहता हूं कि तुझे किसी न किसी उपाय से वृषल के प्रेम की डोरी में बाँधूं।"

"हां, हां, मैं इस कार्य्य में आलस्य नहीं करूंगा। आजतक तो तुम्हारे सम्पूर्ण मन्त्र तुम्हारे विरुद्ध चलते रहे हैं। तुमने विष-कन्या से महाराज के प्राण लेने चाहे और मलयकेतु को यह बताया कि चाणक्य तुम्हारे पिता का घातक है, परन्तु, तुम्हारा यह मन्त्र स्वयं तुम्हारे विरुद्ध ही चल गया। संसार तुम्हें महा-राज पर्वतेन्द्र का घातक जानता है और इस कलंक को धोना सहज नहीं। वृषल के प्राण लेते हुए तुमने पर्वतेन्द्र के प्राण लिए, मलयकेतु भागुरायण की सहायता से यहां से भाग गया, और अब तुम्हारे साथ वृषल के विरुद्ध कार्य्य करने को उद्यत हैं, परन्तु यह सन्धि अधिक समय तक नहीं रहेगी। मेरे दूत नाना वेषों में इधर उधर यहाँ वहाँ सब स्थानों में विचर रहे हैं। समय पड़े पर वे शत्रु के साथ मिल जाने की भी आशा रखते हैं। इन्दु शर्माने बुद्ध अरिहंत का वेष बनाकर और जीव सिद्धि बन कर जो सेवा महाराज वृषल की की है, वह थोड़ी नहीं, और इस पर भी तुम्हें अभी तक उसके रहस्य का पता नहीं लगा और तुम उस पर उसी प्रकार विश्वास किये जाते हो!

निस्सन्देह! इस प्रकार के चतुर प्रणिधियों के होते वृषल के सिंहासन को किञ्चित मात्र भी भय नहीं हो सकता, और तुम्हें उनके सम्मुख सिर झुकाना होगा और झुकाना पड़ेगा"।

यह शब्द थे जो एक पर्ण-कुटीर में बैठे हुए महाराज चाणक्य

के मुख से निकले। उनके मस्तक पर इस समय एक तेज था, नेत्रों में एक चमक थी, जो संसार को युद्ध के लिये चुनौती देती थी।

इतने में बाहर आवाज हुई।

"भक्ति करो महाराज यम की, जो जीवको बचाने वाले हैं। जब यमराज अपने दूतों को उनके पीछे भेजते हैं तो शेष सारे देवता अपने भक्तों को नरक में छोड़ जाते हैं। महाराज यमराज पर विश्वास करो, क्योंकि जीते जी तो मित्र के पास रहोगे ही, मरकर भी उसी की सेवा में जाओगे।

अच्छा मैं इस गृह में प्रवेश करके अपने यमपट की मूर्तियां दिखलाता हूं।"

दूसरी ओर से आवाज आई "अरे तू कौन है? अन्दर मत जा।"

यह आवाज महाराज के शिष्य शारंगरव की थी, जो द्वार पर था।

यमपट-चर (क्योंकि* पहले बोलने वाला यमपट-चर था) क्यों? किसका घर है?

शिष्य—मेरे गुरु सुगृहीत नाम आर्य्य चाणक्य का!

चर—तो कहता नहीं मेरे धर्म-भ्राता का घर है। तब तो मैं अवश्य अन्दर जाऊंगा और यमपट फैलाकर उसे धर्म का उपदेश करूंगा।

शिष्य—मूर्ख, तू मेरे गुरु जी को उपदेश करेगा?

चर—अरे क्रोध क्यों करता है, मनुष्य सर्वज्ञ नहीं, क्या तेरा गुरू जानता है कि चन्द्र का विरोधी कौन है?

शिष्य—अरे मूर्ख, इन बातों के ज्ञान-अज्ञान से क्या?

---

*नोट:—प्राचीन काल में इस प्रकार के साधु थे जो स्वर्ग-नरक की मूर्तियां दिखा कर मांगा करते थे। (आनन्द)

चर—इस बात को तू क्या जाने, यह तो तेरा गुरु ही जान सकेगा,हां, तुझे इतना बता दूं कि चन्द्र का विरोधी कमल है, वह चन्द्र का रूप देखना नहीं चाहता, क्योंकि इससे उसका अपना रूप फीका पड़ जाता है और यहां ऐसे कमल थोड़े नहीं।

महाराज ने यह शब्द सुने तो उनके कान खड़े हुये। क्या इसका अर्थ यह है कि पाटलीपुत्र निवासी अभी तक चन्द्रगुप्त के विरोधी हैं ?

शिष्य—कैसी असंबद्ध बातें कर रहे हो ?

चर—असंवद्ध नहीं, सुसंबद्ध बातें हैं, यदि.........

शिष्य—यदि क्या ?

चर—यदि समझनेकी बुद्धि हो।

चाणक्य—मित्र चले आओ, श्रोता और समझने वाला दोनों मिल जायंगे।

चर—(अन्दर प्रवेश करके) महाराज की जय हो।

चाणक्य—अहा ! निपुणक ! वाह वाह सुनाओ क्या समाचार लाये ? नगरनिवासियों के विचार कैसे हैं ?

निपुणक—महाराज की कृपा से उनके सारे दुख दूर हो गए हैं और सब के सब लोग महाराज की जय मना रहे हैं, हां, तीन पुरुष ऐसे हैं जो राक्षस के विशेष मित्रों में से हैं।

चाणक्य—कौन कौन ? जिन्हें अपने प्राण प्यारे नहीं ?

निपुणक—एक तो बौद्ध साधु है।

चाणक्य—उसका नाम ?

निपुणक—जीव सिद्धि !

महाराज चाणक्य के नेत्रों में एक चमक सी प्रकट हुई, और उन्होंने मुस्कराते हुये कहा, "दूसरा ?"

निपुणक—राक्षस का विशेष मित्र शकट दास कायस्थ।

महाराज ने मुस्कराते हुए कहा—"कायस्थ! परन्तु शत्रु को निर्बल नहीं समझना चाहिये। अच्छा, और तीसरा?"

निपुणक—उसका मित्र चन्दन दास जौहरी, जिसके पास वह अपनी स्त्री और पुत्रों को छोड़ गया है।

चाणक्य—यह तुम को कैसे ज्ञात हुआ?

निपुणक—(एक मुद्रा (मोहर) जेब से निकालकर) यह उसका प्रमाण है।

महाराज चाणक्य ने मुद्रा को हाथ में लिया, तो उस पर "महा मन्त्री राक्षस" का नाम खुदा था। उसे पढ़ते ही उनके मुखसे निकला "राक्षस! राक्षस मेरे हाथों में! यह तुम्हें कहां से मिली?"

निपुणक—महाराज की आज्ञा थी कि मैं नगर निवासियों के विचारों का पता लूं। इस लिए मैंने यह भेष बदला और फिरता फिरता चन्दन दास के यहां पहुँचा। वहां मैंने यमपट बिछाई और अपना राग आरम्भ किया। मेरी आवाज़ सुनकर एक छोटा सा पांच वर्ष का अत्यन्त सुन्दर बालक अन्दर से दौड़ता हुआ आया। उस समय उसके नेत्रों में वही चमक थी जो उस आयु के बालकों में किसी अद्भुत वस्तु के देखने की अभिलाषा उत्पन्न होते समय हुआ करती है। एकाएक अन्दर से आवाज़ आई "भाग गया दौड़ गया पकड़ियो"। यह एक स्त्री का स्वर था, जिसके पश्चात् कोई स्त्री उस बालक को पकड़ने के लिए सहज सहज आगे बढ़ी और उसने अपनी दो अत्यन्त सुन्दर भुजाएें आगे करके बालक को पकड़ लिया। इस धर-पकड़ में यह अंगूठी जो किसी पुरुष के हाथ की थी, और कदाचित् उन कोमल अंगुलियों में जो इसे पहन रही थी, पूरी नहीं आती थी, उसके हाथ से गिरी और चलती चलती मेरे चरणों में आ टिकी, ठीक जिस प्रकार कोई कुल-वधु

किसी महात्मा को प्रणाम करती है। मैंने इसे उठा कर देखा, तो राक्षस का नाम दिखाई दिया और अब यह महाराज के हाथों में है।

चाणक्य—साधु! निपुणक, साधु! तुम्हारी सेवा का शीघ्र ही तुमको पता मिलेगा, अच्छा तुम जाओ और विश्राम करो।

सोलहवां परिच्छेद

महाराज चाणक्य का मंत्र

"शारंगरव !"

"महाराज !"

"यह कागज का टुकड़ा सिद्धार्थक के पास ले जाओ। मेरी इच्छा थी कि इसे स्वयं लिखता परन्तु मेरा हस्ताक्षर अच्छा नहीं ! उसे कहना, इसे अपने मित्र शटकदास कायस्थ से लिखवा कर शीघ्र ले आए। (कान में) लेखक का नाम लिखाने की आवश्यकता नहीं, न उसका ही जिसके पास भेजा जायगा, वह मैं स्वयं लिख लूंगा। सिद्धार्थक को यह भी कह देना कि यदि शकटदास को पता लग गया कि मैंने लिखवाया है, तो वह लिखेगा नहीं, इस कारण सावधानी से काम करे।

"बहुत अच्छा भगवन् !" कहकर शिष्य बाहर निकल गया। महाराज चाणक्य ने मुद्रा को जेब से निकाला, और उसे देखते हुए कहने लगे :—

"राक्षस ! राक्षस ! तू चाणक्य को मन्त्र विद्या में पराजित नहीं कर सकता, यह शस्त्र तुझे महाराज वृषल के चरणों में खैंच कर लाएगा, तुझमें शक्ति नहीं कि भावी को मेट सके। हां, पहले मुझे यह ज्ञान नहीं था कि वह कौन पापी है जो मलयकेतु को यह कहने का साहस कर सकता था "पर्वतेन्द्र का घातक चाणक्य है" परन्तु अब मैं उन्हें भली भांति जानता हूँ; और इस भांति एक ही मंत्र से उनका सिर कन्धों पर न रहेगा। नीति विद्या-विशारद ! मैं जानता हूं तेरे सिर में एक बुद्धिमान मस्तिष्क है

और उससे लाभ उठाकर मलयकेतु वृषल के लिये भय का कारण हो सकता है। परन्तु ! यह शस्त्र तुम दोनों को पृथक् पृथक् करके रहेगा, फिर मैं देखूंगा कि मलयकेतु चक्रवर्ती राज्य का स्वामी बन सकता है या वृषल।"

"जय हो महाराज की ! पत्र लिखा गया"

चाणक्य—आहा, सिद्धार्थक आ गए ? बहुत शीघ्रता की, दिखाओ तो......ओह बहुत ठीक, हाँ अब इस पर यह मुद्रा (छाप) लगा दो।

छाप लग गई और सिद्धार्थक अन्य निर्देश सुनने के लिए खड़ा हो गया।

चाणक्य—सिद्धार्थक ! आज मैं तुम्हें एक बड़ा आवश्यक और भयानक कार्य बताने लगा हूं, करोगे नां ?

सिद्धार्थक—अहो भाग्य ! जो यह शरीर भगवान् के किसी कार्य्य में लगे। इससे अधिक सौभाग्य और क्या हो सकता है।

चाणक्य—तो सुनो।

यह कहकर उन्होंने अपने होंठ सिद्धार्थक के कानों से लगा दिए और न जाने धीरे धीरे क्या कहा, जिसे हम सुन न सके। परन्तु सिद्धार्थक का चेहरा उन्हें सुनकर चमक उठा।

निर्देश सुन और "जो आज्ञा महाराज" कहकर सिद्धार्थक बाहर निकल गया।

"शारंगरव।"

"महाराज।"

"यह लो महाराज का आज्ञा पत्र ! जीव सिद्धि बौद्ध साधु और शकटदास कायस्थ राज्य को उलट-पलट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिए दण्डपाशक और कालपाशक को यह आज्ञा

पहुंचा दो कि जीव सिद्धि बौद्ध साधु है, इस कारण हम उसे प्राण-दण्ड नहीं देना चाहते, इसलिए उसे नगर में घुमाकर देश-निर्वासित किया जावे, और यह घोषणा कर दी जावे कि विष-कन्या के साथ पर्वतेन्द्र के प्राण लेने की सम्मति राक्षस को इसी ने दी थी। शकटदास कायस्थ भी इसी प्रकार नगर में घुमा कर शूली पर चढ़ा दिया जावे और उसके बाल बच्चों को बन्दी घर में डाल दिया जावे। फिर जौहरियों के मुखिया चन्दन दास को सेवा में उपस्थित किया जावे।

"बहुत अच्छा महाराज!"

सत्रहवां परिच्छेद

चाणक्य और चन्दनदास

चाणक्य—आइए चौहरी जी, यह आसन ग्रहण कीजिए।

चन्दनदास—नहीं भगवन् मैं पृथ्वी पर ही बैठूंगा।

चाणक्य—नहीं, नहीं, यह नहीं होगा, मेरे जैसे ब्राह्मण के यहां और है ही क्या, जो मैं आपकी सेवा करूं और यदि आपने इसे स्वीकार न किया, तो मुझे दुःख होगा।

चन्दनदास—बहुत अच्छा भगवन्! आप दुखित न हों।

चाणक्य—कहिए वनिज व्यापार का क्या हाल है?

चन्दनदास—जब महाराज प्रतिपालक हैं, तो वनिज-व्यापार क्यों न फूले फले।

चाणक्य—और सुनाइये, पहले राजा के पुण्यों का स्मरण करके लोग वृषल के पापों के सम्बन्ध में क्या कहते हैं?

चन्दनदास—भगवन्! आपने यह क्या कहा? महाराज वृषल का पुण्य आज पूर्णमासी के चन्द्रमा की भाँति प्रकाशमान होकर हृदयों को शीतल कर रहा है, छोटे-बड़े सब उनके गुण गा रहे हैं।

चाणक्य—परन्तु जब राजा प्रजा का सेवक हो, तो क्या उसे उसका कुछ फल नहीं मिलना चाहिए?

चन्दनदास—महाराज आज्ञा दें, घरबार सेवा में उपस्थित है।

चाणक्य—चन्दन दास! तुम भूलते हो, यह वृषल का राज्य है; नन्द का राज्य नहीं, प्रजा की प्रसन्नता वृषल की सेवा का फल है, और इसी में वह सन्तुष्ट है।

चन्दनदास—यह प्रजा के धन्यभाग्य हैं।

चाणक्य—नहीं यह कहो कि इस प्रसन्नता को किस प्रकार प्रगट किया जावे।

चन्दनदास—जो आज्ञा!

चाणक्य—यह सहज है, राजा की आज्ञा का विरोध न करो।

चन्दनदास—वह कौन अभागा पापी है जो महाराज की आज्ञा का विरोधी होने का साहस रखता है।

चाणक्य—प्रथम तो आप ही हैं।

चन्दनदास—(विस्मय से) मैं और विरोधी! क्या एक तिनका अग्नि का विरोधी होने की शक्ति रखता है?

चाणक्य—सत्य से इनकार नहीं हो सकता, इस समय भी तुम्हारे गृह में राक्षस के गृहजन छिप रहे हैं।

चन्दनदास—यह असत्य है। मेरे किसी शत्रु ने मुझे क्षति-पहुँचाने के लिए यह मन गढ़न्त गढ़ी है।

चाणक्य—भयभीत होने की बात नहीं, मुझे पता है कि राज्य परिवर्तन के समय में कई दुष्टों ने राज्य के भले लोगों से बलात् अपने गृहजनों को आश्रय देने की प्रतिज्ञा ली थी। यह उनका दोष है, प्रजा का नहीं। हां अब जब कि उनका भय जाता रहा है ऐसे लोगों को घरों में छिपाना अपराध है।

चन्दनदास—मैं स्वीकार करता हूं कि पहले राक्षस के गृह-जन मेरे गृह में थे।

चाणक्य—यह भी असत्य है। तुमने पहले कहा है कि वह तुम्हारे यहां आए ही नहीं।

चन्दनदास—हां वह बात असत्य थी !

चाणक्य—तो तुम मेरे साथ छल कर रहे हो, कभी कुछ कहते हो, कभी कुछ। (आंखें बदल कर) चन्दनदास ! राक्षस के गृहजनों को मेरे हाथ अर्पण कर दो, और जाओ मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया।

चन्दनदास—मैं पहले ही प्रार्थना कर चुका हूं कि वे मेरे पास रहे हैं, परन्तु अब नहीं हैं।

चाणक्य—अब कहाँ गये ?

चन्दनदास—मुझे पता नहीं।

चाणक्य—तुम्हें पता नहीं ! चन्दनदास ! जानते हो, भयङ्कर सर्प तुम्हारे सर पर खड़ा है और तुम उसके साथ क्रीड़ा कर रहे हो, कदाचित् अभी तक तुमने विष्णुगुप्त को नहीं जाना, और समझ रहे हो कि वह प्रारब्ध जिसने जीते नन्द का साथ उस समय छोड़ दिया, जब उसके पास लाखों हस्ती और अश्व थे जब उसके पास सेना थी, सेनापति थे और मन्त्री थे, अब उसकी मृत्यु के पश्चात् राक्षस का साथ देगी। अरे क्या तू सिंह के मुंह में हाथ डाल कर उसकी डाढ़ों को उखाड़ना चाहता है ? सोच, अपने आपको समझ !!!

शारंगरव-(अन्दर प्रवेश करके) महाराज की जय हो। जीव सिद्धि भिक्षु को पकड़ कर महाराज की आज्ञा से नगर में फिरा कर देश निर्वासित कर दिया।

चाणक्य—भिक्षु ! परन्तु महाराज के विरोधियों का यही परिणाम होना चाहिए। चन्दनदास ! देखते हो, वृषल कोमल हृदय है, परन्तु उन लोगों को दण्ड देने में जो राज्य विरोधी हों उसे कोई दया नहीं। इसलिए भलाई इसी में है कि एक मित्रकी सम्मति मान कर राक्षस के गृहजनों को महाराज के अर्पण कर दो,

और राजा की कृपा के भागी बनो। शारंग रव ! शारंग रव !! बाहर कैसा कोलाहल है ?

शारंग रव—महाराज ! शकटदास कायस्थ को शूली देने के लिये ले जा रहे हैं।

चाणक्य—राज विरोध का फल ! राजा के शत्रुओं से सहानुभूति रखने का परिणाम !! चन्दन दास ! मैं नहीं समझता, तुम उनको अपने घर में छिपाकर राजाके क्रोधसे क्योंकर बच सकते हो, इसलिए भलाई इसी में है कि मेरा कहा मानकर उन्हें दे दो दूसरे के लिए अपना प्राण गँवाना मूर्खता है।

चन्दनदास—महामन्त्री जी ! आपने मुझे समझा नहीं। आप मुझे डराते हैं। क्या आपका विचार है कि यह डर मुझे उन लोगों को शत्रुओं के हाथ में सौंपने पर विवश कर देगा जिनकी आज तक मैंने रक्षा की है। शरणागत की रक्षा करना धर्म है और इसमें यदि प्राण भी जायं तो पर्वाह नहीं। परन्तु मैं तो आपको पहले ही कह चुका हूं कि जिन्हें आप ढंढते हैं, वह मेरे पास नहीं।

चाणक्य—यह तुम्हारा निश्चय है ?

चन्दनदास—निस्सन्देह !

चाणक्य—(मन ही मन) साधु ! वीर ! साधु !! इस कलियुग में राजा शिवि का उदाहरण दिखाने वाले ! तुम धन्य हो !! (प्रकट में) क्या आपका अन्तिम निश्चय यही है ?

चन्दनदास—हां हां यही।

चाणक्य—(क्रोध से) दुरात्मन ! पापी !! राजा के क्रोध को सहने के लिए उद्यत हो जा।

चन्दनदास—मैं उद्यत हूं, जो इच्छा हो कीजिए।

चाणक्य—शारंग रव ! दण्डपाशक और कालपाशक को आज्ञा दो कि इस अपराधी को पकड़ लें। हां दुर्गपालक और

विजय पालक को आज्ञा दे दो कि इस दुरात्मा की स्त्री और बच्चों को पकड़ कर बन्दी घर में डाल दें, जब तक कि मैं महाराज से सम्पूर्ण घटनाओं को वर्णन करके आज्ञा न ले लूं जो इसके प्राण और धन के हरण के अतिरिक्त और नहीं हो सकती।

चन्दनदास—धन्य हैं वे प्राण जो शारीरिक निर्वलताओं की नहीं प्रत्युत मित्रता और शरणागत की रक्षा के काम आएं।

चन्दनदास पकड़ लिया गया, उसके स्त्री-पुत्र बन्दी गृह में डाल दिये गये। परन्तु अभी उनकी आज्ञा का पूर्णतया पालन न हुआ था कि शारंगरव ने महाराज चाणक्य के कानों में यह समाचार पहुँचाया कि "सिद्धार्थक ने बध्य स्थान पर आक्रमण करके शकटदास को छुड़ा लिया और दोनों भाग गये हैं।

चाणक्य—(कृतक क्रोध में) हैं ! क्या ? इतना अन्धेर ! जाओ भागुरायण को आज्ञा दा कि उस अभागे को पकड़ कर उपस्थित करे।

शारंगरव—महाराज ! उसका भी कहीं पता नहीं !

चाणक्य—अच्छा, भद्रभट, हिंगुरात, बलगुप्त, पुरुषदत्त, राजसेन, रोहिताक्ष, विजयवर्मा, ये कहां हैं ? इनमें से किसी को आज्ञा दो कि इन दोनों को पकड़ने का यत्न करें।

शारंगरव—महाराज, भद्रभट और अन्य बहुत से सर्दार तो सूर्योदय से पहले ही कहीं भाग गये हैं।

चाणक्य—अच्छा क्या हुआ, जो आज गया वह पहले भी हमारा न था और न भविष्य में होता। इस समय भी जो जाना चाहें, चले जायें। जब तक वह हृदय निश्चल है, जिसने नन्द-वंशरूपी वृक्ष को समूल उखाड़ डाला और जिसकी शक्ति लाखों वीर योद्धाओं से बढ़कर है, जब तक वह हृदय नहीं डोलता, सारा संसार एक ओर हो जाय, कोई पर्वाह नहीं।

यह सारे के सारे भागने वाले आयंगे, और संसार देखेगा कि हाथ जोड़े आयेंगे।

"महाराज की जय हो।"

"आहा, शोणोत्तरे। किस प्रयोजन से आना हुआ?"

शोणोत्तरा—महाराज श्रीचन्द्र की इच्छा है कि महाराज पर्वतेन्द्र की अन्तिम पारलौकिक क्रिया कर दें, इस कारण भगवान् को बुलाया है। उनकी इच्छा है कि महाराज पर्वतेन्द्र के रत्न और आभूषण विद्वान ब्राह्मणों को दे दिये जावें!

चाणक्य—शोणोत्तरे! जाओ महाराज को कह दो कि उनकी इच्छा बहुत शुभ है और शीघ्र इसे कार्य्य रूप में परिणत करना चाहिये। आभूषण निस्सन्देह बहु मूल्य हैं और केवल गुणवान ब्राह्मणों को मिलने चाहिएं। इस कारण मैं ब्राह्मणों की परीक्षा करके उन्हें सेवा में भेजता हूं।

शोणोत्तरा—जो आज्ञा महाराज!

चाणक्य—शारंग रव! शारंग रव!

शारंग रव—महाराज!

चाणक्य—जाओ, विश्वावसु को खोज कर उसे कह दो कि वह और उसके तीन भ्राता महाराज की सेवा में उपस्थित होकर उन आभूषण और रत्नों को ले लें और सीधे मेरे पास चले आयें।

शारंग रव—बहुत अच्छा महाराज।

अठारहवां परिच्छेद।

पाटलीपुत्र के समाचार।

"परमात्मा! यह क्या आश्चर्य्य है? शेष नाग वंश का नाम संसार से मिट जाये! महापद्म नन्द तलवार की धार उतरे, नन्द वंश यदुवंश के समान नष्ट भ्रष्ट हो जाये और लक्ष्मी मुरापुत्र चंद्रगुप्त के चरणों में लोटती फिरे! हा, देवि क्या तुझे कोई कुलीन मनुष्य नहीं मिल सकता था, क्या तू एक शूद्र को ही सिर पर उठाने में सुख मानती है!!

सत्य है, स्त्री का स्वभाव ही चञ्चल है, ब्रह्माने भी इसे नहीं समझा, मनुष्य बिचारा तो किसी गिनती में ही नहीं।

परन्तु देवि! अभी तक राक्षस जीवित-जागृत है और वह तुझे और तेरी शक्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। तू समझती है तू बलवती है, बहुत बलवती है, परन्तु तू देखेगी किस प्रकार तुझे धूल में मिलाया जाता है। मुझे हार पर हार हो, पर्वाह नहीं, दुख पर दुख पहुँचे, कोई हानि नहीं। नन्द वंश नहीं तो मलयकेतु विद्यमान है, वह मुझ पर दया करता है, और मैं उसे मगध का राज्य देकर उसके उपकार से उऋण हूँगा। यदि चाणक्य वृषल को चन्द्रगुप्त बना सकता है, तो कोई कारण नहीं कि राक्षस मलयकेतु को मगधाधीश बनाकर अपने मृत स्वामी का प्रतिकार न ले। इसी इच्छा से मैं गृहजनों को साथ नहीं लाया, इसी आकांक्षा से मैं उन्हें अपने मित्रों के पास छोड़ आया हूं। जीवसिद्धि अपने कार्य्य में लगा है, शकटदास के पास बहुतेरा द्रव्य

है; और द्रव्य वह वस्तु है जो राजाओं के दरवाजे भी खोल सकता है। क्या हुआ, अभी तक वह शक्ति क्षीण नहीं हुई, जो शत्रुओं को नाकों चने चबवाकर रहेगी।"

"जय हो महाराज की!"

"आः!, जाजलि—आओ भाई कैसे आये?"

जाजलि—महाराज की आज्ञा से। महाराज आज्ञा करते हैं कि हमें यह देखकर दुख होता है, कि आप अपने शरीर की ओर से इतने असावधान हैं इसलिये इस बात को जानते-बूझते भी कि आपको महाराज नन्द की मृत्यु का अतिशय दुःख है, आपने स्वयं अपने शरीर के यह आभूषण भेजे हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप इन्हें अवश्यमेव धारण करें।

राक्षस—मित्र! महाराज की कृपा ने मुझे महाराज नन्द को भुला दिया है, परन्तु जब तक मैं महाराज के शत्रुओं को मिट्टी में नहीं मिला लेता, जिस समय तक मैं महाराज को मगधके सौवर्ण सिंहासन पर नहीं देख लेता, मुझे भोग विलास के पदार्थ नहीं भाते।

जाजलि—महाराज! यह तो आपके लिये अत्यन्त सहज है उसके लिये महाराज की पहली इच्छा का निरादर न करें।

राक्षस—मैं और महाराज की इच्छा का निरादर! यह हो ही नहीं सकता। लाओ, मैं उन्हें सहर्ष अंगीकार करता हूँ।

जाजलि—(प्रणाम करके) आज्ञा?

"प्रियंवदक! बाहर कौन है?"

प्रियंवदक—महाराज! संपेरा है! महाराज के दर्शनों की इच्छा से खड़ा है।

राक्षस—संपेरा! यह लो उसका पारितोषिक, उसे देकर विदा करो। मैं सर्प देखने की इच्छा नहीं रखता!

प्रियंवदक—(वापस आकर) महाराज उसका हठ है। वह अवश्य ही महाराज को सर्प दिखलाना चाहता है, बड़े बड़े अच्छे नमूने कहता है लाया हूं, यह भी कहता है, कि कवि भी हूँ और अपनी कविता का यह एक नमूना भेजता है।

राक्षस ने पत्र हाथ में लिया, लिखा था :—

"भ्रमर कुसुम कुसुम से और पुष्प पुष्प से रस इकट्ठा करता है और उसे अपने नहीं परोपकार के हेतु मधु बना डालता है।"

हस्ताक्षर देखे हुए से जान पड़े, कविता के अन्दर कुछ गूढ़ अर्थ भी छिपे हुये थे। क्या यह मनुष्य कुसुमपुर (पाटलीपुत्र) का समाचार लेकर तो नहीं आया , देखें तो सही, इस विचार से कहा, आने दो।

महामन्त्री और संपेरा आमने-सामने हुये, आंखों से आंखें मिलीं, एक का संदेश दूसरे ने जाना। प्रियंवदक को संकेत हुआ कि "हम सर्प देखेंगे, तुम जाओ अपना कार्य्य करो।"

भृत्य बाहर निकला, महामन्त्री जी आगे बढ़े, नेत्र अश्रु-परिप्लुत थे और रुद्ध कण्ठ से बोले :—

"हा! नन्द महाराज के मन्त्रियों की यह दशा! विधाता तेरा उन्होंने क्या बिगाड़ा था! विराधगुप्त! आओ भाई यह आसन ग्रहण करो।"

विराधगुप्त—महात्मन्! आप क्यों दुखित होते हैं, सदा दिन कब किसी के एक से रहे हैं, यदि वह न रहे तो यह भी न रहेंगे।

राक्षस—कहो, पुष्पपुर से क्या समाचार लाये?

विराधगुप्त—समाचार एक नहीं अनेक हैं, कहिए कहां से आरम्भ करूं।

राक्षस—चन्द्रगुप्त के नगर में प्रवेश करने के पश्चात् क्या हुआ यह सुनाओ।

विराधगुप्त ने फाटक की महराब गिरने; विरोचक और दारुवर्मा की मृत्यु, अभयदत्त वैद्य का विषपान और गुप्त महल में छिपे हुए मनुष्यों के भस्मसात् हो जाने का वृत्तान्त सारा कह सुनाया, जिसे सुनकर राक्षस की आंखों में आंसू आ गये और उसके मुख से निकल गया:—

"हा ! प्रारब्ध ! चन्द्रगुप्त की रक्षा पर तुली हुई है। एक एक मन्त्र जो उसके विरुद्ध प्रयोग किया जाता है, उसे ही लाभ पहुंचा रहा है। हमने विषकन्या का प्रयोग किया, परन्तु उसकी राह उसे उस व्यक्ति से छुटकारा मिला जो उसके आधे राज्य का स्वामी होता। फिर दारुवर्मा की मृत्यु ने उसे उसी राज्य के दूसरे हिस्सेदार से मुक्ति दिलाई। परमात्मन् ! मेरे शस्त्र मेरे विरुद्ध क्यों चल रहे हैं ? चाणक्य ने इन सब बातों को अवश्यमेव नगर निवासियों के सम्मुख रखा होगा और अब वे हमारे विरुद्ध हो रहे होंगे।

विराधगुप्त—महामन्त्री जी ! पर्वाह नहीं, दैव विरुद्ध है, प्रारब्ध साहस तोड़ रही है, परन्तु जो आरम्भ कर दिया वह पूर्ण होगा और होकर रहेगा, इसमें संदेह नहीं। अधीर मनुष्य पहले कई प्रकार की अड़चनों से घबराकर साहस हार बैठते हैं, एक और भांति के लोग हैं जो साहस करते हैं, परन्तु रास्ते में ही कठिनाइयों से घबड़ाकर भाग जाते हैं। परन्तु आप जैसे नरशार्दूल कष्ट और विपत्तियों को देखकर उन्हें संग्राम के लिये ललकारते हैं, उन्हें पराजय होती है, निराशायें आती हैं, दुःख भी मिलते हैं, परन्तु ज्यों ज्यों विपत्तियां पड़ती हैं, त्यों त्यों उनका साहस बढ़ता चला जाता है। उनके अन्दर तेज उत्पन्न होता है, और वह समुद्र में चट्टान के समान अचल रहते हैं, और अन्त में तूफान हारकर वापस मुड़ता है, मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं सृष्टि का मुख उज्ज्वल होकर दिखाई देता है। शेष नाग के सिर पर

पृथ्वी का भार कैसा भयानक है, परन्तु क्या वह उस भार से घबराकर पृथ्वी को छोड़ देता है ? कदापि नहीं। कायर और नपुंसक विपत्तियों के सन्मुख झुक जाते हैं; परन्तु वीर और मनस्वी पुरुष का विपत्तियों के अंधकार के पीछे एक आवाज़ यह कहती हुई सुनाई देती है :—

प्राण जांए पर बचन न जाई।

जो मन में ठन गई, ठन गई। जो काम आरम्भ कर दिया, कर दिया। अब उससे पीछे हटना क्या और क्यों ?

राक्षस—निस्सन्देह, मित्र ! तुम जो कुछ कह रहे हो सत्य है, अच्छा फिर क्या हुआ ?

विराध गुप्त—इन घटनाओं ने चाणक्य की आंखें खोल दीं, उसे एक एक मनुष्य पर संदेह हो गया, और आज कुसुम पुर में आपके सारे हितैषी बंदीघर में पड़े हैं।

राक्षस—किस किस पर चाणक्य की कृपा दृष्टि हुई ?

विराध गुप्त—प्रथम तो जीवसिद्धि भिक्षु हैं, जिसे सारे नगर में घुमा कर देश निकाला दिया गया।

राक्षस—किस अपराध में ?

विराध गुप्त—कहा गया है कि उसने ही विषकन्या के द्वारा चन्द्रगुप्त के बध की सम्मति दी थी।

राक्षस—धन्य ! धन्य ! चाणक्य ! तेरी बुद्धि धन्य है ! तेरी दुधारी तलवार दोनों ओर काट करती है। अच्छा फिर ?

विराध गुप्त—फिर यह ढिंढोरा पीटा गया, कि दारुवर्मा और दूसरे लोगोंको शकटदास ने रुपया देकर राजा को मारने पर उद्यत किया था, इसलिए उसे पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया गया।

राक्षस—हा ! ऐसी भयानक मृत्यु ! परमात्मा ! मुझ पापी को यह सब कुछ देखने के लिये क्यों जीवत रहने दिया गया ? नन्द

के मित्र एक एक करके ऐसी बुरी मौत मरें, नहीं नहीं, अमर हो जायें और मैं अभागा इसी प्रकार पड़ा देखा करूं (अपने आपको संभालकर) अच्छा फिर ?

विराधगुप्त—यह सब कुछ देखकर और भविष्य में न जाने क्या गुजरे, इस कारण हमने आपके गृहजनों को किसी दूसरे स्थान पर सुरक्षित करने का प्रबन्ध कर लिया।

राक्षस—उन्हें क्यों बचा लिया गया ? किस लिये उन्हें चाणक्य के हाथों में न दे दिया गया, यह सारा चन्दनदास का दोष है।

विराधगुप्त—नहीं नहीं, वह दोषी होता, यदि वह अपने मित्र के साथ विश्वासघात करता।

राक्षस—अच्छा !

विराध गुप्त—क्योंकि उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया इसलिए चाणक्य ने अत्यन्त क्रोध में आकर..............

राक्षस—उसे मरवा डाला ?

विराधगुप्त—नहीं उसे और उसके गृहजनों को पकड़ कर बंदी घर में डलवा दिया।

राक्षस—और इस पर तुम मुझे कहते हो, मेरे गृहजन सुरक्षित हैं ; कहते क्यों नहीं कि चाणक्य ने मुझे और मेरे सारे संबन्धियों को बन्दी घर में डाल दिया है।

एक भृत्य—(अन्दर प्रवेश करके) महाराज की जय हो ! शकटदास बाहर खड़े हैं।

राक्षस का चेहरा खिल गया; इस आकस्मिक समाचार पर विश्वास करना असम्भव था, आश्चर्य से उसके मुख से निकला "शकटदास द्वार पर ! धोखा तो नहीं खा रहे हो ?"

भृत्य—महाराज के सेवक असत्य नहीं बोलते।

राक्षस—विराधगुप्त ! यह क्या रहस्य है ?

विराधगुप्त—प्रारब्ध ने हमारे मित्र को मृत्यु के मुख से निकाल लिया जान पड़ता है।

राक्षस—(सेवक से) क्यों खड़े हो, उन्हें आने दो।

शकटदास ने "महामन्त्री की जय" कहकर अन्दर प्रवेश किया। राक्षस ने गद्गद होकर उठकर उसे गले लगाते हुए कहा :—

"राक्षस—कहो भाई कैसे आ पहुंचे ? हमें तो इस जन्म में तुम्हें देखने की कोई आशा नहीं थी।"

शटकदास—यह सब मेरे मित्र सिद्धार्थक की कृपा का फल है, जिसने अपने प्राणों को जोखों में डालकर बन्दीघर पर आक्रमण करके मुझे उन लोगों के हाथों से छुड़ा लिया, जो मुझे शूली की ओर ले जा रहे थे।

यह कहकर उसने सिद्धार्थक का महामन्त्री जी से परिचय कराया।

महामन्त्री जी ने प्रसन्नतापूर्वक उससे हाथ मिलाया और सादर तथा प्रेम के साथ अपने कण्ठ की माला उसके कण्ठ में डालकर कहा :—

राक्षस—धन्य हो वीर ! धन्य हो ! शोक है कि इस समय मेरे पास इससे अधिक कुछ नहीं, अन्यथा उसे भी तुम्हारे सिर पर न्यौछावर कर देता।

सिद्धार्थक—भगवन् ! आपकी कृपा ने मुझे जीवन भर के लिये सेवक बना लिया है। परन्तु ! मैं इस नगर में सर्वथा अनजान हूं, इन आभूषणों को कहां रखता फिरूँगा, कृपा करके इन्हें अपने कोष में ही रखने की आज्ञा दीजिये, मैं इन पर अपनी मुद्रा लगा दूंगा।

राक्षस—जो इच्छा तुम्हारी।

सिद्धार्थक ने वह मुद्रा निकाली और शकटदास के हाथों में दे दी। शकटदास ने उसे लिया, और उसके आश्चर्य की कोई

सीमा न रही, जब उसने देखा कि उस पर राक्षस का नाम खुदा हुआ था। यह देखकर उसने महामन्त्री जी से कहा :—

शकटदास—यह क्या बात है, आपका नाम इसपर खुदा है!

राक्षस—(मन ही मन) अरे! यह तो वही अंगूठी है जिसे मैं अपनी धर्मपत्नी को चिह्नस्वरूप दे आया था। (फिर सिद्धार्थक को लक्ष्य करके) भाई! यह तुमको कहां से मिली?

सिद्धार्थक—महाराज! यह मुझे कुसुमपुर के जौहरी चन्दन-दास के द्वार पर मिली थी।

राक्षस—सम्भव है...........

सिद्धार्थक—क्या?

राक्षस—ऐसी ऐसी मुद्राएं धनवानों के द्वारों पर कदाचित् गिरी मिल जाती है।

शकटदास—मित्र सिद्धार्थक! इस मुद्रा पर महामन्त्री जी का नाम खुदा है, और वे इसके बदले में जो मांगो देने को उद्यत हैं।

सिद्धार्थक—मुझे इससे अधिक प्रसन्नता और क्या हो सकती है कि मेरी किसी वस्तु को महामन्त्री जी लेने की इच्छा करें। मैं बड़े हर्ष से इसे सेवा में अर्पण करने को उद्यत हूं।

राक्षस—(शकटदास से) भाई, इसे अपने पास रखो और हमारी चिट्ठी-पत्री में काम लाओ।

सिद्धार्थक—महाराज! मैं एक प्रार्थना करूँ?

राक्षस—कहो।

सिद्धार्थक—आप जानते हैं कि मेरे कार्यों ने महामन्त्री चाणक्य को मुझपर क्रोधित कर दिया है, अब यदि मैं पाटलीपुत्र वापस गया, तो इसका फल मृत्यु के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। इसलिये यदि आप मुझको अपने चरणों में आश्रय देने की कृपा करें, तो बहुत अच्छा हो।

राक्षस—हम स्वयं यही कहने वाले थे। अच्छा शकटदास ! जाओ अपने मित्र के साथ विश्राम करो ! तुम थके मांदे हो। (फिर विराधगुप्त को लक्ष्य करके) कहो भाई ! हमने चन्द्रगुप्त और उसके साथियों में फूट डालने का जो मन्त्र चलाया था, उसका क्या हाल है ?

विराधगुप्त—सफलता हो रही है।

राक्षस—अर्थात् ?

विराधगुप्त—भद्रभट, परुषदत्त, हिंगुरात, बालगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्मा सबके सब चन्द्रगुप्त का साथ छोड़कर हमारे यहां आ पहुंचे हैं और चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त की तीन-पांच किसी दिन होकर रहेगी, क्योंकि चन्द्रगुप्त चाणक्य का अब वह आदर नहीं करता और चाणक्य बात बात में चन्द्रगुप्त की इच्छा के विरुद्ध कर जाता है।

राक्षस—ठीक! चन्द्रगुप्त समझता है कि वह चक्रवर्ती राजा बन गया, उधर चाणक्य का यह विचार है कि वही उसे सब कुछ बनाने वाला है। एक को राज्य मिल गया, दूसरे की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। अब उन्हें एक मन रखने वाली कोई बात नहीं रही। अच्छा भाई, जाओ, इस वेष में फिर कुसुमपुर जाओ; वहां मेरा मित्र कवि स्तन कलश रहता है, उसे समझा दो कि समय पड़े पर राजा को कोई ऐसी कविता सुनाए कि चाणक्य के विरुद्ध उसका क्रोध प्रज्वलित हो जाए, फिर मैदान हमारे हाथ है।

विराधगुप्त 'बहुत अच्छा' कहकर विदा हुआ, इधर एक सेवक ने उपस्थित होकर प्रार्थना की—

सेवक—महाराज, शकटदास जी ने ये रत्न भेजे हैं और कहला भेजा है कि यदि आज्ञा हो तो इन्हें ख़रीद लिया जावे।

राक्षस—(रत्नों को देखकर) हां हां ! यह बहुमूल्य रत्न हैं अवश्य और जिस भाव पर मिलें ख़रीद लो।

उन्नीसवां परिच्छेद

चाणक्य-परित्याग पत्र ।

"हा ! लोग कहते हैं कि राज्य सुखों का घर है। प्रत्युत मनुष्यों के हृदय में यही कामना रहती है कि वह राजा बन जाए, परन्तु कोई मुझसे, हां मुझसे—जिसने वह समय भी देखा है, जबकि तलवार हाथ में लिये केवल अपनी और अपने स्वामिभक्त घोड़े की आवश्यकताओं का ध्यान रहता था, और इस समय भी जबकि इतने बड़े राज्य के सुख दुख की चिन्ता है—पूछकर देखें कि वह दशा अच्छी थी अथवा यह ।

संसार के मनुष्य मुझे भाग्यशाली समझते हैं, परन्तु वे क्या जानें कि उनकी दशा मुझ से कितनी अच्छी है। वे अपने अपने गृह के राजा हैं, परन्तु मैं जिसे वे अपना राजा कहते हैं, उनका ही नहीं वरं सम्पूर्ण भूलोक का सेवक हूं और सेवक को सुख कहां ?

वे अपनी इच्छा से सोते हैं, अपनी इच्छा से जागते हैं, परन्तु मुझे और तो और, अपनी इच्छा से किसी को प्यार करने अथवा किसी पर क्रोध करने की भी आज्ञा नहीं, मेरे शब्द २ पर, मेरे एक एक कर्म पर, राज्य के भले और बुरे की मोहर लगती है।

कहते हैं दूसरे की इच्छा के आधीन होना दासत्व का चिह्न है, तो क्या इतने मनुष्यों की इच्छाओं का दास होता हुआ मैं उनका राजा कहला सकता हूँ ?

मन्त्री जी जिनका मैं पिता से बढ़कर आदर करता हूं, मुझे यह आज्ञा देते हैं कि मैं उनसे रूठ जाऊँ अथवा उनके बिना कुछ दिन पर्यन्त राज्य करूँ, क्या यह सम्भव है? क्या मुझे इतना कृतघ्न होना पड़ेगा? हा! यह कठिन है, परन्तु नीति, राजधर्म, यह बलिदान मांगता है और मुझे राज्य के भले के लिये, देश को रक्तपात से बचाने के लिये, यह करना पड़ेगा।"

ये विचार सुगांग प्रासाद की ओर जाते हुए महाराज चन्द्रगुप्त के हृदय में तरङ्गित हो रहे थे। आज आप कौमुदी महोत्सव का दृश्य देखने के लिये इस प्रासाद पर विराजमान थे, जिसके एक ओर गंगा का प्रबल प्रवाह सफेद जल उड़ाए चला जाता था मानो अपने प्रीतम महासागर से मिलने की इच्छा से व्याकुल हो रहा है। दूसरी ओर नगर का सम्पूर्ण दृश्य अपनी छटा दिखा रहा है।

सायंकाल था, रात्रि के कुछ क्षण व्यतीत हो चुके थे और महाराज यह जानते थे कि आज कौमुदी-महोत्सव के मनाने में नगर असंख्य दीपकों के प्रकाश से जगमगा रहा होगा। नगर में जलते हुए दीपकों का प्रतिबिम्ब गङ्गा की तरल तरंगित वीचियों में सैंकड़ों तरह के कल्लोल कर रहा होगा और दशों दिशाओं में एक अलौकिक छबि बरस रही होगी, परन्तु उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब उन्होंने यह देखा कि चारों ओर सन्नाटा पड़ा है। इक्के-दुक्के दीपक के सिवा कहीं प्रकाश दिखाई नहीं देता; अन्धकार का चारों ओर साम्राज्य हो रहा है।

यह देखकर आपने अपने पास खड़े हुए भृत्य की ओर देखा और कहा:—

वृषल—वैहीनरे! यह क्या बात है, हमें नगर में प्रकाश क्यों नहीं दिखाई पड़ता, चारों ओर अमावस का सा अन्धकार क्यों छा रहा है? क्या कुसुमपुर निवासियों को हमारा आदेश

नहीं पहुंचा कि वे इस महोत्सव को बड़े समारोह के साथ मनावें ?

भृत्य—महाराज, पहुंचा था ।

वृषल—तो फिर क्यों हमें चारों ओर उदासी छाई देख पड़ती है, राज्य के नर-नारी क्यों आनन्द नहीं मनाते ? क्यों वे इस बात का प्रमाण नहीं देते कि उनके सिर पर एक अन्यायी नहीं प्रत्युत वह व्यक्ति राज्य कर रहा है जो उनके सुख में सुख मानता है और उन्हें सुखी देख कर प्रसन्न होता है ।

भृत्य—महाराज ! सत्य............

वृषल—बोलो, बोलो ।

भृत्य—महाराज ने स्वयं ही कह दिया है !

वृषल—क्या ? स्पष्ट कहो ?

भृत्य—महाराज हम कैसे कहें.........महोत्सव मनाने की आज्ञा नहीं है, ऐसी घोषणा हो चुकी है ।

वृषल—(क्रोध से) किसने ऐसी आज्ञा दी, निस्सन्देह यह हमारी आज्ञा नहीं ।

भृत्य—महाराज ! और किस में शक्ति है कि अपने प्राणों को जोखिम में डालकर महाराज की आज्ञाओं का उल्लंघन करे ।

वृषल—(क्रोध से) अच्छा जाओ, इसी समय ! चाणक्य को यहीं बुला लाओ ।

भृत्य—बहुत अच्छा महाराज ।

भृत्य बाहर निकला, परन्तु राजा की भृकुटी चढ़ी हुई देख कर उसका हृदय धड़क रहा था, रंग पीला पड़ गया था और वह मन ही मन सोच रहा था "हा सेवा ! तू सचमुच मनुष्य को पशु बनाती है और राजा की सेवा तो बस ! क्या कहूं, एक ओर राजा से भय, दूसरी ओर उसके मन्त्रियों, प्रत्युत साधारण मुंह-लगों से भी सदैव प्राणों का भय ! देखें "अब क्या होता है"

(सामने चाणक्य का घर देखकर) "वाह, वाह, महाराजाधिराज के महामन्त्री जी का महल तो देखो, कैसा विशाल भवन है, एक ओर गोबर की थापियां तोड़ने को पत्थर पड़ा है, दूसरी ओर कुशा का ढ़ेर लगा है, छत पर कांटों की बाड़ ईंधन के लिए सूख रही है।

परन्तु नहीं, वृषल ! तेरे जैसे राजा को ऐसे ही मन्त्री की आवश्यकता थी, अर्थी अपने अर्थ का दास होता है, इसे अपने अर्थ-साधन में उचित-अनुचित की परवाह नहीं होती; इसलिये वह सदैव ठकुर सुहाती बातें करता और अपना अर्थ पूरा करता है, परन्तु वह जो सम्पूर्ण इच्छाओं से ऊपर है, जिसने समग्र इच्छाओं को धूल में मिला दिया है, उसी और केवल उसी की दृष्टि में राजा की एक तृण से बढ़कर स्थिति नहीं है और केवल वही उसे सीधा मार्ग दिखा सकता है।"

इसी सोच-विचार में मन्त्री जी का द्वार आ पहुंचा और वह "महामन्त्री जी की जय" कहकर अन्दर प्रविष्ट हुआ।

महाराज चाणक्य इस समय किसी सोच में थे, उन्होंने सिर उठा कर देखा और कहा :—

चाणक्य—कहो वैहीनरे, इस समय कैसे आना हुआ ?

भृत्य—महाराज वृषल भगवान् की चरणवंदना करते हैं और स्मरण करते हैं, उनका कथन है कि महाराज शीघ्र उनके पास पधारें।

चाणक्य—शीघ्र ! अति शीघ्र ! कदाचित् उन्होंने कौमुदी महोत्सव के निरोध का वृत्तान्त सुन लिया है ?

भृत्य—हां महाराज !

चाणक्य—(आंखें लाल-पीली करके) किसने उन्हें बताया ?

भृत्य—महाराज कुपित न हों, महाराज ने सुगांग प्रासाद से स्वयं देख लिया था।

चाणक्य—और तुमने नोन-मिर्च भी लगाई होगी ?

भृत्य—(चुप, कोई उत्तर नहीं)।

चाणक्य—महाराज के सेवक मुझे जैसा कुछ चाहते हैं, मैं ही जानता हूं, हां, इस समय महाराज कहां हैं ?

भृत्य—सुगांग भवन में।

चाणक्य—अच्छा चलो !

सुगांग भवन में वृषल सिंहासन पर विराजमान थे, मुख-मण्डल क्रोधाग्नि से लाल हो रहा था। आंखों में रक्त छा रहा था, जब कि भृत्य ने अन्दर जाकर प्रार्थना की कि "महामन्त्री जी पधारे हैं।"

ब्राह्मण का आना सुन महाराज स्वयं अभ्यर्थना के लिये उठे और महामन्त्री जी के चरणों में शीश रख दिया, चाणक्य ने हाथों से सिर उठाया और आशीर्वाद देकर कहा :—

चाणक्य—इस समय इतनी आवश्यकता क्या थी जो यह बुलावा भेजा ?

वृषल—दर्शन के लिये।

चाणक्य—रहने दो, सेवक को निष्प्रयोजन नहीं बुलाया जाता, वास्तविक बात कहो।

वृषल—कौमुदी महोत्सव को बन्द करने में भगवान ने क्या भलाई देखी है ?

चाणक्य—इसके लिये मुझे भर्त्सना होगी ? मुझे दण्ड मिलेगा ?

वृषल—नहीं, भगवन् ! मैं केवल कारण जानना चाहता हूं ?

चाणक्य—अच्छी बात ! परन्तु शिष्य का धर्म है जो कुछ गुरु करे उसे चुपचाप स्वीकार कर ले।

वृषल—इसमें सन्देह नहीं, परन्तु मुझे विश्वास है कि जिस

बात को मुझे चुपचाप स्वीकार करना है, उसका कोई प्रयोजन भी होगा।

चाणक्य—सत्य कहते हो, चाणक्य का कोई मन्त्र निष्प्रयोजन नहीं, यहां तक कि उसका स्वप्न भी निष्प्रयोजन नहीं होता।

वृषल—तो बताने की कृपा कीजिए।

चाणक्य—राजन्! तुमने पढ़ा है, राज्य के सम्पूर्ण कार्य्यों के कर्त्ता तीन व्यक्ति होते हैं, राजा, मन्त्री, अथवा दोनों। जो कुछ मैंने किया है, वह मैंने अपने मन्त्रीपद के अधिकार से किया है, और इस लिये उसका कारण पूछना सिवा मेरे अधिकारों पर अकारण रोक-टोक करने के और कुछ नहीं।

महाराज के नेत्र लाल हो गए, वह क्रोध जो अब तक दबाया जाता रहा था, असह्य प्रतीत होने लगा और आपने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। उसी समय पास के कमरे से रागियों के स्वर ऊंचे हुए।

"शिवजी महाराज के शरीर पर लगी हुई धूल की भांति शरद् ऋतु सफेद काश सफेद पुष्पों को धारण कर रही है और महादेव के शरीर पर ओढ़े हुए गजासुर के चर्म की भांति चन्द्र की चमक से चमकते हुए मेघों को ओढ़ रही है।"

"उसके कान्तिमान मस्तक पर, ऊपर-नीचे गले की रुण्डमाला से अधिक शोभायमान मानो हंसते हुए श्री राजहंस चक्कर काटते हैं।"

यह शरद् ऋतु जो महादेव जी की भांति सब कुछ ओढ़ रही है, उन्हीं की भांति लोगों के हृदय को प्रफुल्लित करे!"

"भगवान् विष्णु की आंख खुले, निद्रा के मद से लाल हुए उनके नेत्र ईश्वरीय प्रकाश पर पड़ें।"

यह शब्द कानों में पड़ते ही महाराज चाणक्य के कान खड़े

हुए, कि इतने में दूसरे वैतालिक (रागी) ने कहना आरम्भ किया :—

क्या वे राजा जिनके संकेत पर लाखों शूरवीर सिर कटाने को उद्यत हो जाते हैं, भृत्यों को इतना सिर चढ़ाएंगे कि वे उनकी आज्ञाओं का उल्लंघन करने लग जाएं ?"

"क्या सिंह के पंजों और नखों को छोटी छोटी चुहिया तोड़ने का साहस करेंगी ? क्या वह शक्ति जिसे ब्रह्मा ने पृथ्वी के स्वामियों व वन के राजाओं को दिया है, इस प्रकार अपमानित की जायेगी ?"

"क्या उस गजपति को जो सारे यूथ का जङ्गलों और बनों में पथ प्रदर्शन करता है, साधारण तुच्छ जन्तु घुड़कियां देंगे ।"

"हा ! क्यों राजा उन पुरुषों की इच्छाओं के अधीन हो रहा है जिनके शरीर पर उसकी त्योरी से कपकपो छा जानी चाहिए ।"

चाणक्य—(चौंक कर) हैं यह क्या ! पहला श्लोक तो केवल भक्तिभाव को प्रगट करता है, परन्तु दूसरे का अर्थ गम्भीर है । हां हां, समझ लिया; राक्षस ! तेरा हाथ यहां काम कर रहा है परन्तु तू भूलता है, चाणक्य सोता नहीं जागता है !

चन्द्रगुप्त—वैहीनरे ! इन कवियों को एक एक लाख स्वर्ण-मुद्रा पारितोषिक में दे दो !

चाणक्य—वैहीनरे ! ठहरो, (राजा की ओर) उन्होंने कौनसा लक्ष्य मारा है, जिसका फल-स्वरूप इतना पारितोषिक दिया जाने लगा है ।

चन्द्रगुप्त—(लाल होकर) क्या बात बात में, पग पग पर हमारी इच्छाओं पर कुठार चलाया जायेगा, हम राजा हैं या सेवक ?

चाणक्य—जिसने अपने अधिकार दूसरे को दे दिये हों

वह स्वतन्त्र नहीं रहता, यदि मैं जो कुछ करता हूं उचित नहीं, तो अपने राज्य का प्रबन्ध अपने हाथों में ले लीजिए।

चन्द्रगुप्त—हां यह तो करना ही पड़ेगा।

चाणक्य—मेरे लिये इससे अधिक हर्ष की बात और क्या हो सकती है।

चन्द्रगुप्त—परन्तु पहले हम यह जानना चाहते हैं, कि महोत्सव को बन्द करने का कोई हेतु था अथवा यह भी केवल हमारी आज्ञाओं को उल्लंघन करने के लिए था?

चाणक्य—मुझे उन आज्ञाओं के उल्लंघन करने की आवश्यकता नहीं जिन्हें स्वयं मैंने उत्पन्न किया है।

चन्द्रगुप्त—हां तो फिर कारण बताइये?

चाणक्य—(क्रोध से) शोणोत्तरे! जाओ कायस्थ को कहो, कि वह पत्र दे दे जो मैंने उसे दिया था।

शोणोत्तरा ने वह पत्र लाकर दे दिया और चाणक्य ने राजा से कहा :—

चाणक्य—राजन्! सावधान होकर सुनिए! "उन राजाओं के नाम जो महाराज चन्द्रगुप्त के साथ थे परन्तु अब भागकर मलयकेतु से जा मिले हैं।

"प्रथम गजाध्यक्ष (गजशाला का दरोगा) भद्रभट, द्वितीय अश्वाध्यक्ष (घुड़शाला का दरोगा) परुषदत्त, तृतीय महा प्रतिहारी (ड्योढ़ीबरदार) चन्द्रभानु का भतीजा हिंगुरात, चतुर्थ महाराज का अपना संबंधी बालगुप्त, पंचम कुमार सेवक राजसेन, षष्ठ सेनापति सिंहबल का छोटा भाई भागुरायण, सप्तम मालवराज-पुत्र रोहिताक्ष और अष्टम विजयवर्मा"।

चन्द्रगुप्त—ये लोग क्यों भाग गए हैं?

चाणक्य—सुनिए! गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष तो स्त्रियों और मदिरा में इतने लवलीन रहने लगे कि उन्हें अपने कार्य्य का ध्यान

ही न था, इस कारण उन्हें उनके अधिकारों से पृथक् करके आजीविकामात्र दे दी गई थी, इस पर क्रुद्ध होकर उन्होंने शत्रु की शरण ढूंढ़ी है। हिङ्गुरात और बालगुप्त लोभ के हाथों बिक कर अपनी मान-प्रतिष्ठा बेच गए। कुमार सेवक राजसेन को जिस पर महाराज सदैव कृपा-दृष्टि करते रहे हैं, यह भय होगया कि कहीं भगवान क्रुद्ध होकर उसके हाथी-घोड़े और धन-सम्पत्ति आदि सब कुछ छीन न लें। इसलिये उन्हें बचाने के अर्थ उसने मलयकेतु की शरण ली। शेष रहा भागुरायण, सो वह मलयकेतु के पिता का मित्र था इस कारण मलयकेतु का भी, और अब जो उसे पता लग गया है कि मलयकेतु महाराज का शत्रु है, इस कारण उसे डर हो गया, इधर मलयकेतु ने उसकी पुरानी सेवा पर प्रसन्न होकर उसे मंत्री बना लिया। मालव राजकुमार और विजयवर्मा क्षत्रिय कुलोत्पन्न थे, इस कारण यह नहीं देख सकते थे कि आप तो राजाऽधिराज बन जाएं और वे आपके आधीन रहें, इसलिये उन्होंने आपका साथ छोड़ दिया!"

चन्द्रगुप्त— आश्चर्य्य है कि सब कुछ जानते हुए किस तरह उन्हें भाग जाने दिया गया?

चाणक्य—तो क्या मैं उनके हाथ में हथकड़ियां डालता? राजन्! दया दिखाकर आपने देख लिया कि वह निष्फल हुई और चाणक्य इतना मूर्ख नहीं कि वह परखे हुए को परखता चला जाय। परन्तु यदि कठोरता की जाती, तो आश्चर्य्य नहीं कि राज्य के दूसरे शत्रुओं के साथ मिल कर वे यहाँ ही विद्रोह उत्पन्न कर देते, इसलिये मुझे तो यही उचित प्रतीत हुआ कि यदि वे जाना चाहें तो जायँ। फिर भी इस में सन्देह नहीं, मलयकेतु तथा म्लेच्छ राजाओं के साथ मिलकर वह अवश्य आपको क्षति पहुंचायेंगे। इस समय, हाँ, इस समय जब कि शत्रु का बल बढ़ रहा हो, क्या महोत्सव मनाने का समय है, अथवा दुर्ग और कोटि

आदि को ठीक करने, शस्त्रों की देख-भाल करके और शत्रु के साथ युद्ध सजाने का ?

चन्द्रगुप्त—आश्चर्य्य है, कि ऐसे बुद्धिमान और ऐसे दूरदर्शी मन्त्री की दृष्टि उस सारी खराबी के कारण को न देख सकी, मलयकेतु को शान्ति से यहां से निकल जाने दिया गया !

चाणक्य—तो क्या तुम्हारी इच्छा यह थी कि उधर उसका पिता अपने प्राण देता, इधर इसे हथकड़ियां और बेड़ियां पहना दी जाती। राजन् ! यह क्या बालकों की सी बातें हैं ?

चन्द्रगुप्त—परन्तु सब कुछ जानते हुए भी राक्षस को इतनी देर राजधानी में रहने दिया गया।

चाणक्य—राजन् ! चाणक्य मूर्ख नहीं, उसे यह पता था कि राक्षस के अपने मित्रों की संख्या थोड़ी नहीं; न सारा संसार ही नन्द का शत्रु था। पाटलीपुत्र और मगध की प्रजा के यह दोनों भाग आपको बहुत दुःख दे सकते थे, इस कारण यह यत्न किया गया कि राक्षस हमारे निकट बैठकर हमें कष्ट न दे वरं दूर रह कर अपने बल की परीक्षा करे।

चन्द्रगुप्त—क्यों न उसे पकड़ कर बन्दी बना दिया गया ?

चाणक्य—राजन् ! रक्तपात के बिना ऐसा होना असम्भव था और उस दशा में दो ही बातें होतीं—वह स्वयं अपने प्राण दे देता अथवा हमारे वीरों को मार कर निकल जाता। राक्षस उन लोगों में से नहीं जो बन्दीगृह में आयु व्यतीत करने के लिये उत्पन्न होते हैं वह सिंह है और सिंह मन्त्र से ही वश में किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

चन्द्रगुप्त—बहुत ठीक ! सत्य है, परन्तु इस सारी बात में मैंने एक परिणाम निकाला है, कि आप केवल बातें कहने वाले हैं, राक्षस की बुद्धि का आप मुकाबिला नहीं कर सकते। वह हमारी अपनी राजधानी में हमारे मित्रों के होते हुए हमारी छाती पर

मूंग दल जाए और हमारे महामन्त्री का साहस न पड़े कि उससे कुछ कह सकें। निस्सन्देह हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता नहीं, जो वाचाल हो, हमें उन कर्मचारियों की आवश्यकता है जिनके हृदय और मस्तिष्क निर्मल हैं।

चाणक्य—तो आप अपने अधिकार राक्षस को सौंप दीजिए और देखिए किस प्रकार वह थोड़े दिनों में आप से यह राज्य छीन कर मलयकेतु को देता है जो मैंने नन्द से छीन कर आपको अर्पण किया है।

चन्द्रगुप्त—मैं असमय की रागनी सुनना नहीं चाहता, जो कुछ हुआ दैव इच्छा से हुआ, मैं इस राज्य के लिये उस परिपूर्ण परमात्मा का कृतज्ञ हूं जो सर्वशक्तिमान है, किसी मनुष्य का नहीं।

चाणक्य—(क्रोध से) अरे! कृतघ्नता की भी कोई सीमा होती है। मैं कहता हूं, क्या यह सत्य नहीं कि चाणक्य ने नन्द-वंश के नाश की भीषण प्रतिज्ञा की? क्या यह सत्य नहीं कि उसकी यह शिखा नागिनी की भांति उस समय तक लहराती रही जिस समय तक उसने नन्दवंश को डस नहीं लिया? क्या यह सत्य नहीं कि अकेले चाणक्य के मस्तिष्क ने नन्दवंश के बच्चे बच्चे को यमराज के ग्रास में दिया? क्या यह सत्य नहीं कि इस पाटली-पुत्र में नन्द वंश की सैंकड़ों अर्थियां उठीं। क्या यह असत्य है कि उन अर्थियों से श्मशानों में धुम्र के बादल उठे? हां, यह सब कुछ हुआ और यह राक्षस! यह नीतिमन बैठा एकटक देखता रहा। लाखों गृद्ध और कौओं ने अपने कर्कश स्वर से आकाश को गुंजा दिया, परन्तु उसके मस्तिष्क से कोई मन्त्र न निकल सका जो नन्दवंश में जीवन डाल सके।

चद्रगुप्त—नन्द कुल को विधाता ने नष्ट कर दिया, मनुष्य की क्या शक्ति थी जो उसकी ओर आंखें उठा कर देखता।

चाणक्य—साहस हीन और भीरु मनुष्य इस प्रकार सब कुछ विधाता के नाम मढ़ा करते हैं।

चन्द्रगुप्त—विद्वान लोग वृथा प्रजल्पन नहीं किया करते।

चाणक्य—(क्रोध से) बस ! वृषल ! चाणक्य मूर्ख नहीं, वह जानता है कि तुम उसे सेवक बनाकर पावों की धूल बनाया चाहते हो, परन्तु भूल न जाओ, वह शिखा जिसने नन्दवंश को डस लिया फिर खुल सकती है, वह हृदय जिसने अकेले सारे संसार को ललकारा, फिर से दूसरी प्रतिज्ञा कर सकता है, वह अग्नि जिसने शेषनाग वंश को दग्ध कर दिया, बुझ नहीं गई !

चन्द्रगुप्त के मुख पर, हां उस मुख पर जो समर भूमि में भी कभी नहीं घबराया था, जो चमकती तलवारों को देखकर चमक उठता था, उस मुख पर ब्राह्मण के क्रोधित और तेजस्वी मुख मण्डल को देखकर सफेदी छा गई। हृदय ने कहा "सचमुच महाराज मुझ से रुष्ट हो गए। हा ! पृथ्वी में भूचाल आ जायगा, संसार कांप उठेगा।"

चाणक्य—(मन्त्रित्व की तलवार दूर फेंककर) यह लो शस्त्र ! आज से हम विमुक्त होते हैं, वह बात जो हमें परस्पर बांध रही थी, दूर हो गई, अब इसे राक्षस को दो वा किसी और को, मुझे कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु मैं यह कहे जाता हूं कि राक्षस का मन्त्र चल गया, वह हम दोनों में भेद डलवाना चाहता था, और यह अर्थ सिद्ध हो गया, अब मौर्य्य का नाश करना उसके लिए एक कौतुक मात्र है।

यह कहकर आवेश से भरा हुआ बाहर निकल गया। चन्द्रगुप्त ने अङ्गड़ाई ली और सेवकों को पुकार कर कहा :—

"वैहीनरे ! जाओ राज्य में घोषणा कर दो कि आज से ब्राह्मण चाणक्य अपने पद से अलग कर दिया गया, अब हम स्वयं राज्य का काम अपने हाथ से किया करेंगे।

वैहीनरे—(मन ही मन) चाणक्य , मन्त्री पद से अलग ! क्या मेरे कान मुझे धोखा तो नहीं दे रहे ? परन्तु मैं कोन जो महाराज को दोष दूं, राजा जो कुछ करते हैं वह अनुचित नहीं हो सकता ।

चन्द्रगुप्त—क्या सोच रहे हो ?

सेवक—कुछ नहीं महाराज ! मैं सोचता था कि महाराज अब वास्तविक राजा हुए हैं ।

चन्द्रगुप्त—शोणोत्तरे ! हम आज बहुत थक गए हैं, अब विश्राम की इच्छा है ।

शिवनेत्री—बहुत अच्छा भगवन् ! बिछौना तैयार है ।

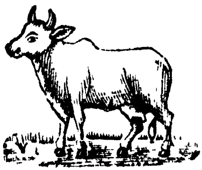

बीसवां परिच्छेद

आक्रमण की तय्यारियां

रात-दिन की चिन्ता ! रात-दिन का उद्वेग, रात दिन का दुःख बड़े बड़े फौलादी शरीरों को राख में मिला देता है। मन और मस्तिष्क की बड़ी बड़ी शक्तियां रखनेवाले भी इसके सामने आतुर हो जाते हैं। मनुष्य देह के निर्मल परमाणु दिन-रात की चिन्ता के कारण अन्त में अपनी शक्तियों को खो बैठता है। सर वाल्टर स्काट ने स्काटलैण्ड के प्रसिद्ध बादशाह राबर्टब्रूस (Robert-Bruce) की मृत्यु का कारण यही बताया था, और 'राजस्थान' के लेखक टाड साहब ने राणा सांगा के बलवान शरीर के मिट्टी में मिलने का कारण भी यही बताया था। भारतवर्ष में वर्तमान समय में सोचने वाले मनुष्यों की अकाल मृत्यु का उत्तरदायित्व भी इसी पर है और इसी ने आजतक इस अभागे देश से बड़े बड़े बलवान मस्तिष्क छीने हैं। इसी चिन्ता ने इसी दुख ने राक्षस को दुर्बल कर दिया है। दिन-रात की चिन्ताओं ने उसके शरीर को घुलाते घुलाते क्षीण कर दिया है। प्रतिदिन की असफलतायें, आए दिन की पराजय, उसके धैर्य्य को और भी अधिक दृढ़ करती चली जाती है। परन्तु शरीर तो मनुष्य का ही है वह मर्य्यादा से बढ़कर सहन नहीं कर सकता, यही कारण है कि उनकी आँखों से नींद उड़ रही है, रात्रि बिस्तर पर करवटें लेते बीत जाती है परन्तु निद्रा नहीं आती। चेहरे पर हवाइयां छुटती हैं। पाचन-शक्ति दिन पर दिन घट रही है और यह

उसी का परिणाम है कि संग्रहणी आदि रोग शरीर में घर करने को हैं।

महाराज मलयकेतु उसी दशा को जानते हैं, और आज वह उसका स्वास्थ्य पूछने के लिए आ रहे हैं। राजवैद्यों ने उन्हें उसकी दशा की पूरी पूरी सूचना दे रखी है, परन्तु महामन्त्री के आदर और प्रेम ने उनको स्वयं आनेपर विवश कर दिया है इसी कारण वे स्वयं इतना कष्ट उठा रहे हैं। परन्तु वैद्यों की यह सम्मति है कि रोगी के स्वास्थ्य के लिए शान्ति और एकान्त की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए महाराज अकेले ही आ रहे हैं, साथ मन्त्री भागुरायण के सिवा और कोई नहीं।

चलते चलते महाराज के मन में कुछ विचार आया और उन्होंने मन्त्री से कहा :—

मलयकेतु—मेरी समझ में नहीं आता कि ये राजा लोग जो चन्द्रगुप्त का साथ छोड़कर हमारी शरण में आए हैं क्यों महा मन्त्री राक्षस के नाम से चिढ़ते हैं। उन्होंने कहा है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य के हाथों की कटपुतली है, इसलिए उनकी बड़ाई और कुल की आन यह सहन नहीं कर सकती कि वे एक अभिमानी ब्राह्मण की आज्ञा में चलें यह ठीक है, और इसके लिए मैं उनकी प्रशंसा करता हूं परन्तु पता नहीं क्यों ? उन्होंने सेनापति द्वारा हमारी सेना में आना स्वीकार किया परन्तु राक्षस को अपना मुखिया नहीं बनाया, पता नहीं ऐसे वीर ऐसे बुद्धिमान और ऐसे नीति निपुण योद्धा से वे क्यों झिझकते हैं ?

भागुरायण—महाराज, यह तो कोई कठिन बात नहीं जो समझ में न आ सके। जहांतक मैंने इस पर विचार किया है इसका कारण यह है कि राक्षस यद्यपि हमारा मित्र है और हमारे साथ मित्रता प्रगट भी करता रहता है परन्तु वस्तुतः उसकी शत्रुता चाणक्य से है, न कि चन्द्रगुप्त से। और यदि कल को

चन्द्रगुप्त चाणक्य को मन्त्रि पद से अलग कर दे, तो मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि क्यों राक्षस चन्द्रगुप्त के विरुद्ध रहे, विशेषतः इस कारण कि वह नंदवंश का बड़ा भारी मित्र है और इस वंश का चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त कोई शेष नहीं। संभव है कि कल राक्षस चाणक्य के अलग हो जाने पर शत्रु की शरण में चला जाय और वह भी उसे सेवा में लेने को उद्यत हो जाय। यही कारण है कि यह राजा लोग उसे अपना मुखिया बनाने को तैय्यार नहीं, क्योंकि मुखिया के कार्य्यों का प्रभाव उसके पीछे चलने वालों पर पड़ना आवश्यक है। यदि कल राक्षस महाराज की सेवा से मुंह मोड़े तो क्या उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले सारे के सारे लोगों पर सन्देह नहीं किया जायेगा।

मलयकेतु—बात ठीक जान पड़ती है, अच्छा चलो मन्त्री जी के दर्शन तो करें।

आगे पहुंचे तो मन्त्री जी के द्वारपाल ने सादर प्रणाम करके कहा :—"आज्ञा हो तो सूचना दूं ?"

मलयकेतु—नहीं ठहरो ! हम मन्त्री जी को अधिक कष्ट नहीं देना चाहते। यदि वे स्वस्थ होंगे तो दर्शन होजायंगे नहीं तो हम स्वयं लौट आएंगे।

यह कह कर आगे बढ़े, परन्तु अभी ड्योढी से आगे न बढ़े थे, कि कानों में आवाज़ पड़ी "हां भाई तो कुसुमपुर गए थे, कहो क्या समाचार लाए ?"

मलयकेतु—(मन्त्री के कान में) अन्दर कुसुमपुर (पाटलीपुत्र) की बातें हो रही हैं, तनक यहीं ठहर कर सुनें, क्या आश्चर्य, यदि हमारे सामने इस प्रकार खुलकर बातें न हो सकें।

आवाज़—हां महाराज गया था।

राक्षस—तो क्या समाचार लाए, कुछ सफलता हुई।

आवाज़—ईश्वर की कृपा से बहुत कुछ !

राक्षस—हां हां बताओ तो करभक ! खुलकर बात करो न ?

करभक–महाराज की आज्ञानुसार पाटली पुत्र पहुंचकर मैंने स्तनकलश कवि को महाराज का संदेशा सुनाया ।

राक्षस—अच्छा !

करभक—अब दैव योग से ऐसा हुआ कि इधर मैं पाटलीपुत्र पहुंचा, उधर चन्द्रगुप्त ने लोगों के हृदय हाथ में लेने के लिये यह आज्ञा दे दी कि कौमुदी महोत्सव बड़े समारोह से मनाया जावे । बस, फिर क्या था, नगर भर में चारों ओर आनन्द की लहरें चलने लगीं ।

राक्षस—हा नन्द ! तेरे बिना किस तरह चन्द्र अपनी रश्मियां पुष्पपुर पर फेंक रहा है ! ! अच्छा मित्र, फिर क्या हुआ ?

करभक—परन्तु जिस समय लोगों का आनन्द पूरे वेग से उमड़ रहा था, दुष्ट चाणक्य ने महोत्सव बन्द करने की घोषणा करवा दी । उस समय स्तनकलश ने अवसर पाकर थोड़ी सी कविता चन्द्रगुप्त के कानों तक पहुंचा दी, जिसने उसकी क्रोधाग्नि को और भी प्रज्वलित कर दिया ।

राक्षस—साधु ! साधु ! बीज बोया गया, अब फूट की लता का उगना कठिन नहीं । साधारण से साधारण मनुष्यों को भी किसी उत्सव के मनाने से रोक दिया जावे तो उनके क्रोध की सीमा नहीं रहती, फिर एक वीर राजा के क्रोध का तो कहना ही क्या है, जिसकी आज्ञा का इस प्रकार उल्लंघन किया जावे । निस्सन्देह चन्द्रगुप्त इस अपमान को सहन नहीं कर सकता था और उसने नहीं किया होगा ।

करभक—चन्द्रगुप्त के क्रोध की कोई सीमा न रही और उसने आपकी बहुत प्रशंसा करने के पश्चात अन्त में चाणक्य से मंत्रि-पद छीन लिया ।

मलयकेतु—तो क्या राक्षस के लिये उसके मन में इतना आदर है ?

भागुरायण—और चाणक्य का पद छीनना यह भी अर्थ रखता है।

राक्षस—परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि किस प्रकार केवल इस बात से चाणक्य का मन्त्रि पद छिन गया कि उसने महोत्सव का मनाया जाना बन्द कर दिया था, निस्सन्देह यह कोई प्रबल कारण नहीं था।

मलयकेतु—यह बड़ा भारी कारण था, इस से बढ़ कर और क्या हो सकता है, समझ में नहीं आता, और अधिक पूछने से इसका अभिप्राय क्या है ?

भागुरायण—अभिप्राय तो साफ है, और वह यह है, कि न तो चाणक्य इतना मूर्ख है कि वह केवल इतनी सी बात पर चन्द्रगुप्त पर इतना बिगड़ जायगा कि मन्त्रि पद को त्याग कर अपने करे-धरे पर धूल डाल देगा। और न चन्द्रगुप्त ही इतना कृतघ्न हो सकता है कि वह तनक सी बात पर एक ऐसे मनुष्य को खो देगा, जिस पर समस्त राज्य-कार्य्य निर्भर है। निस्सन्देह कारण गूढ़ और गुप्त होगा।

करभक—महाराज और भी बहुत से कारण थे जो चन्द्रगुप्त का क्रोध प्रज्वलित करने का कारण हुए।

राक्षस—क्या क्या ?

करभक—महाराज, मलयकेतु का सुख पूर्वक भाग जाना और स्वयं आपका साफ निकल आना, इन दोनों बातों का दोष चाणक्य पर लगाया गया है।

राक्षस—(शकटदास से, उसे जगाते हुए) शकटदास, जागो, जागो ! चन्द्रगुप्त मेरे हाथ में !

शकटदास—(आंखें मलते हुए) क्यों ? क्या हुआ ? क्या

तुम्हारे गृहजन आ गये ? क्या चन्दनदास छूट गया ? क्या शेष सब सकुशल आ पहुँचे ?

मलयकेतु—"चन्द्रगुप्त मेरे हाथ में है" इसका प्रयोजन ?

भागुरायण—इसका प्रयोजन यह कि चाणक्य मन्त्रिपद से पृथक हो गया, अब चन्द्रगुप्त का महामन्त्रिपद और इसी कारण स्वयं चन्द्रगुप्त उसके हाथों में है।

राक्षस—हां मित्र, क्या यह पता लगा, कि मन्त्रिपद से अलग होकर चाणक्य कहां गया ?

करभक—इस समय तो वह पाटलीपुत्र में ही है।

राक्षस—क्या उसने बानप्रस्थ नहीं लिया ? तो क्या वह कोई और प्रतिज्ञा करना चाहता है ?

करभक—ऐसी किंवदती थी कि वह थोड़े दिनों में राजधानी को छोड़ कर चला जायगा, और शेष जीवन शान्ति के साथ संसार से अलग रह कर विताएगा !

राक्षस—अवश्य ! चाणक्य और इस प्रकार सुगमता से इस सारे अपमान को सहन करे। मेरे मित्र ! अभी तक तुमने चाणक्य को समझा नहीं। क्यों शकटदास ! क्या तुम यह समझते हो, कि चाणक्य जो इन्द्र के समान मगध देश पर राज्य करता रहा है, जिसकी भवों के बल के सामने बड़े बड़े साहसियों के हृदय कांप उठते हैं, इस प्रकार सहज में ही उस मनुष्य को क्षमा कर देगा, जिसे उसने स्वयं राज्य-सिंहासन सौंपा है ?

मलयकेतु—इसे चाणक्य के बानप्रस्थ से क्या प्रयोजन ?

भागुरायण—क्योंकि वह समझता है कि जितना चाणक्य चन्द्रगुप्त से दूर रहे, उतना ही अच्छा !

शकटदास—मुझे तो इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। चन्द्रगुप्त जिसने राजाओं के सीने अपने बर्छे की नोक से छेदे हैं; जिसने बड़े बड़े शूरवीरों के सिर अपनी

वीरता से झुकाए हैं, उस मनुष्य के हाथों अपमान नहीं सह सकता जो उसका सेवक हो। चाणक्य हिमालय के सदृश अचल धैर्य्य-वान् हो, हुआ करे। वह क्रूर और क्रोधी हो, हुआ करे। परन्तु उसे भूला हुआ नहीं कि पहली प्रतिज्ञा की पूर्ति में उसे कितना कष्ट उठाना पड़ा। इसलिये, इससे पूर्व कि वह कोई दूसरी मूर्खता करे, उसे सारी बातों को सोचना पड़ेगा, रोज रोज प्रारब्ध एक सी अवस्था पैदा नहीं किया करती।

राक्षस—सत्य कहते हो, अच्छा तुम जाओ, विश्राम करो। करभक, जाओ, भाई तुम भी विश्राम करो, मैं महाराज की सेवा में उपस्थित होता हूं।

यह कहकर उठे और बाहर निकलने को थे कि महाराज मलयकेतु मंत्री भागुरायण के साथ अन्दर प्रविष्ट हुए।

राक्षस—(आश्चर्य से) जय हो महाराज की!

मलयकेतु—(प्रणाम करके) महामंत्री जी के स्वास्थ्य का क्या हाल है?

राक्षस—यह उस समय तक ठीक नहीं हो सकता, जिस समय तक कि मैं महाराज को चक्रवर्ती महाराज के नाम से पुकारा जाता नहीं देख लेता।

मलयकेतु—यह तो आप बहुत समय से कह रहे हैं, परन्तु पता नहीं वह समय कब आयेगा, लाखों शूर वीर इस समय शत्रु का रक्त पान करने के लिये व्याकुल हो रहे हैं।

राक्षस—निराश होने की बात नहीं, बस समय अब निकट आ गया है। चलिए, उन्हें युद्ध-भूमि में ले चलिये।

मलयकेतु—कैसे? क्या कोई नवीन समाचार है? किस बात पर यह आशा बन्ध रही है।

राक्षस—शत्रुओं के अन्दर फूट पड़ गई है! राजा और मंत्री

एक दूसरे से अलग हो गये हैं, चन्द्रगुप्त और चाणक्य को एक दूसरे से सहानुभूति नहीं रही।

मलयकेतु—मन्त्री से अलग होना कोई इतनी बड़ी हानि नहीं।

राक्षस—अन्य राजाओं के लिये न हो, परन्तु, चन्द्रगुप्त के लिये यह एक ऐसी चोट है, जिसकी मार से वह बड़ी कठिनता से उठ सकेगा।

मलयकेतु—मेरा विचार तो कुछ और है और वह यह कि अन्य राजाओं के लिये तो कदाचित् यह कोई बात हो, परन्तु चन्द्रगुप्त के लिये यह कुछ भी नहीं।

राक्षस—कैसे ?

मलयकेतु—चाणक्य के बर्ताव से और उसके अभिमान से सारी प्रजा दुःखी हो रही थी, परन्तु अब जब वह पृथक् कर दिया गया है, प्रजा का प्रेम दुगने उत्साह से उसके साथ होगा।

राक्षस—महाराज का यह विचार ठीक नहीं है। मगध देश में इस समय दो दल विद्यमान हैं, एक तो वह जो चन्द्रगुप्त का मित्र है और दूसरा वह जो नंदवंश का हितैषी है। चन्द्रगुप्त अपने आप को लाख राजा कहे, परन्तु यह दूसरा दल उसे कभी भी ऐसा नहीं मानता। इसके लिए चाणक्य रहे या न रहे, वह तो चन्द्रगुप्त को ही नन्दवंश के क्षय का उत्तरदायी समझता है। और जिस समय आप जैसा कोई शूर वीर राजा इसकी सहायता के लिए बढ़ा, वह तुरन्त उसकी सेवा के लिए आगे बढ़ेगा। इस समय भी इस दल के लोग दिन-प्रति दिन महाराज की सेवा में उपस्थित हो रहे हैं, और वह दिन दूर नहीं, जब कि आधे से अधिक मगध आपकी सेवा में होगा।

मलयकेतु—परन्तु एक मन्त्री का मन्त्रिपद से अलग होना, शत्रु पर आक्रमण करने के लिये कोई उपयुक्त कारण नहीं हो

सकता, मेरे विचार में इसके लिए कारण कोई अधिक बलवान होना चाहिए।

राक्षस—कारण बहुत से हैं परन्तु यह सब से बलवान है।

मलयकेतु—क्या चन्द्रगुप्त के मन्त्रियों में कोई ऐसा नहीं, जो इस आसन पर बैठ सके ? अथवा यदि स्वयं चन्द्रगुप्त इस भार को अपने सिर ले ले, तो क्या वह हमारी शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकता।

राक्षस—महाराज इस बात को भूल न जायं कि राज्य का भार राजा और मन्त्री दोनों के कन्धों पर होता है, अकेला एक पुरुष उसे नहीं उठा सकता, विशेषतः जब कि वह पुरुष चन्द्रगुप्त सा अनुभव हीन नवयुवक हो; जिसने अपने राज्य का सारा कार्य अपने मन्त्री के हाथों में दे रखा था, ऐसे समय में जब कि अंधे की लाठी की भांति उस से वह मन्त्री छीन लिया गया हो, शत्रु के आक्रमण को रोकना सहज नहीं।

मलयकेतु—फिर भी बाहर से चढ़ाई करने वाले के लिये यह पर्य्याप्त नहीं।

राक्षस—महाराज, स्वयं यह बात ही एक बड़ी भारी बात है। इसके साथ आप इस बात को भी दृष्टि के सम्मुख रखें कि जहां आप राज्य वंश के चमकते हुए सूर्य्य हैं, वहां आपका शत्रु एक नीच अवस्था से ऊपर उठा हुआ मनुष्य है। जहां आपकी सैनिक शक्ति इकट्ठी है, वहां शत्रु अपनी अवस्था को भी नहीं जानता। जहां आपके सारे मित्र आपके लिये प्राण देने को उद्यत हैं, वहां शत्रु की राजधानी ही उसके विरुद्ध है। जहां आपके साथ मेरे जैसा......सेवक मार्ग दिखलाने को है, वहां शत्रु अपने मन्त्री को भी निकाल चुका है। महाराज की सेना के सम्पूर्ण यन्त्र पूर्णतया ठीक अवस्था में हैं, इन बातों के होते हुए किसी और समय की प्रतीक्षा करना भूल होगी।

मलयकेतु—(आवेश से) ठीक ! ठीक ! सेना को आज्ञा दो कि सज्जित हो जाय, पर्वताकार हाथी सोन का नीला जल पान करने और अपनी चिङ्घाड़ों से शत्रु के कलेजे को हिला कर गङ्गा और गण्डकवती के जल को उबलते हुए जल के समान बनाने को उद्यत हो जायँ और उन मेघों की नाईं आगे बढ़ कर जो विन्ध्याचल के शिखरों पर देख पड़ते हैं, पाटलीपुत्र के दृढ़ द्वारों को मिट्टी में मिलाने का साहस करें।

इक्कीसवां परिच्छेद

मन्त्र चल गया ।

"महाराज चाणक्य की मन्त्र-लता फल लाये बिना नहीं रहेगी। काल और देश के बादल उसे बुद्धि के जल से सींच रहे हैं। संसार जो चाहे कहे, परन्तु इसमें संदेह नहीं, उसके जोड़ का नीति-निपुण मनुष्य आज समय ने उत्पन्न नहीं किया। (एक पत्र जेब से निकाल कर) यह पत्र मुझे उस महा पुरुष ने दिया था, उस पर महामन्त्री राक्षस की मोहर है और इस रत्न के डब्बे पर भी मोहर लग रही है, मैं इन्हें लेकर पाटली पुत्र को चलता हूं, परन्तु हाय! यह क्या! एक बौद्ध पहले ही माथे लगा, पहले ही पहल एक नास्तिक से टक्कर हुई। परमात्मन् कृपा कीजिए, अच्छा जो हो सो हो, अब इसे प्रणाम करना ही होगा।

यह शब्द कहता हुआ हमारा पुराना मित्र सिद्धार्थक आगे बढ़ा, तो जीवसिद्धि से टक्कर हुई, हाथ जोड़ कर प्रणाम किया, उत्तर में जीवसिद्धि ने कहा :—

जीवसिद्धि—धर्म वृद्धि हो श्रावक! विश्वासी बनो, कार्य्य जो तुम्हें सौंपा गया है, विश्वास चाहता है।

सिद्धार्थक—आपको यह कैसे ज्ञात हुआ?

जीवसिद्धि—हमारे ज्ञानाज्ञान की क्या पूछते हो, हम हृदय की बात पूछते हैं, तुम्हारे मस्तक पर लिखा है कि तुम यात्रा पर जा रहे हो, शेष वह पत्र बतावेगा जो तुम्हारे पास है।

सिद्धार्थक—जान पड़ता है कि आपको ज्ञात है कि मैं किसी अन्य देश की यात्रा के लिये जा रहा हूं, अच्छा बताइये तो इस समय जाना शुभ है या अशुभ ?

जीवसिद्धि—मूर्ख ! नक्षत्रों से प्रारब्ध पूछता है ?

सिद्धार्थक—अवश्य बताइए, यदि जाना शुभ हुआ तो मैं जाऊंगा अन्यथा नहीं।

जीवसिद्धि—राजा की आज्ञा के बिना चोरी से जाना अशुभ है।

सिद्धार्थक—क्यों ?

जीवसिद्धि—स्पष्ट ही क्यों न कह दूं, इस समय से पहले सेना में जो पुरुष भी चाहता और जहां भी चाहता आ जा सकता था, परन्तु अब कुसुमपुर की थोड़ी बाट रह गई है। इस कारण किसी का मुद्रा-लाञ्छन के बिना सेना में आना अथवा सेना में से जाना बन्द हो गया है। मन्त्री भागुरायण राजा की आज्ञा से मुद्रा-लाञ्छन बना कर देता है। यदि तुम्हारे पास वह है तो जाओ, आनन्द से जाओ परन्तु यदि यह न हो तो जितना शीघ्र हो सके कहीं छिप जाओ, वर्ना आगे बढ़े तो राजा के सैनिक अभी पकड़ कर ले जायेंगे।

सिद्धार्थक—क्या आपको स्मरण नहीं कि मैं महामन्त्रि राक्षस का मित्र हूं। कौन है जो मुझे रोकने की शक्ति रखता है, चाहे मेरे पास मुद्रा-लाञ्छन हो या न हो।

जीवसिद्धि—राक्षस के मित्र हो अथवा पिशाच के ! राजा की मुद्रा-लाञ्छन के बिना जाना नहीं हो सकेगा।

सिद्धार्थक—तो फिर मुझे क्या करना चाहिए ?

जीवसिद्धि—तो फिर यदि तुम गये बिना नहीं रह सकते, तो जाओ। संभव है तुम्हें सफलता प्राप्त हो। मैं तो स्वयं भागुरायण

के पास जाकर पाटलीपुत्र जाने के लिए मुद्रालाञ्छन प्राप्त करता हूं।

यह कह कर वह आगे बढ़ा, तो अपने खेमे में मन्त्री भागुरायण आने जाने वालों को राहदारी के पर्वाने देने में मग्न थे। एक ओर महाराज मलयकेतु का खेमा खड़ा था, दूसरी ओर कुछ अन्तर पर महा मन्त्री राक्षस सेना को सुसज्जित करने में लगे थे।

जीव सिद्धि ने आगे जाकर सेवक द्वारा सूचना दी, कि एक बौद्ध भिक्षु मुद्रालांछन चाहने वाला बाहर द्वार पर खड़ा है। मन्त्री जी ने अन्दर आने की आज्ञा दी और दोनों में निम्न लिखित बात-चीत हुई।

मन्त्री—महात्मन्! प्रणाम हो!

जीव सिद्धि—श्रावक! धर्मवृद्धि हो!

मन्त्री—आप राक्षस के मित्र हैं, और कदाचित् उसी के किसी कार्य के लिये पाटलीपुत्र जाना चाहते हैं?

जीवसिद्धि—कदापि नहीं, कदाचित् नहीं, मैं इस देश से जा रहा हूं ताकि उसका नाम न सुन सकूं।

मन्त्री—(आश्चर्य से) हायें, राक्षस ने कौनसा ऐसा पाप किया है जो महात्मा क्रोधित हो रहे हैं।

जीवसिद्धि—मन्त्री! भिक्षु किसी से द्वेष नहीं करता, न किसी पर क्रोध रखता है, हां उसे अपने कर्मों का पश्चात्ताप अवश्य है।

मन्त्री—अपने कुकर्मों का पश्चात्ताप! महात्मन्! मैं समझा नहीं, आप क्या कथन कर रहे हैं, तनक स्पष्ट रीति से कहिए।

जीवसिद्धि—ये बातें ऐसी नहीं जो प्रकाश में लाई जाएं, पाप मल के समान है जिस पर से पर्दा उठाने से दुर्गन्धि निकलती है, इस कारण मैं इन्हें बताऊंगा नहीं।

मन्त्री—जितना आप इसे छिपायेंगे उतना ही इसका कारण जानने की इच्छा प्रबल होगी।

जीवसिद्धि—छिपाने की बात नहीं, लज्जा का स्थान है।

मंत्री—यदि छिपाने की बात नहीं तो क्यों नहीं आप सत्य सत्य कह देते ?

जीवसिद्धि—नहीं मैं नहीं कहूंगा।

मंत्री—तो मुद्रालांछन की आशा न कीजिए।

जीवसिद्धि—(दुखित होकर) तो क्या मुझे अवश्य बताना होगा ? अच्छा सुन लो, जिस समय महामन्त्री राक्षस पाटलीपुत्र में थे, मुझे भी वहां जाने का अवसर प्राप्त हुआ, मैं निर्धन था निराश्रय था, परन्तु महामन्त्री की मुझसे मित्रता हो गई। उसी समय उसने विषकन्या द्वारा पर्वतेन्द्र के प्राण लिये। उसके पश्चात् मैंने उसकी मित्रता को निभाने का प्रयत्न किया, और उसके दण्ड में चाणक्य ने मुझे देश निकाले का दण्ड दिया। परन्तु अब मुझे पता लगा है कि राक्षस की नीति अब एक ऐसी चाल चलने वाली है जिससे मेरे प्राणों को ही इस शरीर से देश निकाला मिलेगा।

महामन्त्री—परन्तु आज तक तो सब लोग यही कहते हैं कि चाणक्य ने महाराज पर्वतेन्द्र को जो आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी उसे भंग करने के लिए उसने विषकन्या द्वारा महाराज के प्राण हरे थे, क्या यह सत्य नहीं ?

जीवसिद्धि—श्रावक ! यह क्या कह रहे हो, जहां तक मुझे ज्ञान है चाणक्य को तो इस समय तक यह भी पता नहीं कि विषकन्या का नाम क्या था।

मंत्री—अच्छा, मैं मुद्रालांछन पर हस्ताक्षर कर देता हूं, परन्तु तुम्हें मेरे साथ प्रथम महाराज के पास चलना होगा, मैं यह सारी बातें उनके कानों तक पहुंचाना चाहता हूं।

दूसरी ओर से आवज आई "नहीं नहीं! कहीं जाने की आवश्यकता नहीं, मैंने सब कुछ सुन लिया है। एक मित्र के मुख से यह शब्द निकले जो किसी शत्रु के मुख से निकलते तो बड़े महत्त्व के होते। हा! हा! मेरे पूज्य पिता इसी राक्षस को अपना मित्र समझते थे। कई बार उन्होंने मेरे सामने इसकी प्रशंसा की, परन्तु फल क्या मिला? हा! हमारे नेत्र उस समय तक बन्द थे, हम अनजाने एक अन्य पुरुष को इन बातों का दोष देते थे, जिनका कर्त्ता कोई और था। मित्र की आड़में शत्रुता के उदाहरण संसार ने बहुत देखे होंगे, परन्तु इस प्रकार के बहुत कम। हा राक्षस! तेरा नाम करण संस्कार सचमुच उचित ही हुआ है। हम तेरे साथ इतना उपकार करें, परन्तु तू इसका बदला यह दे!

मन्त्री—महाराज, आप इतने दुखी न हों, शान्ति से कुछ थोड़ी सी बातें सुन लें, जो आपका सेवक आपसे कहना चाहता है।

मलयकेतु—कहो क्या कहते हो?

मन्त्री—महाराज से यह भूला हुआ नहीं कि उन लोगों को, जो राज्य का प्रबंध करते है, प्रत्येक पुरुष से राजनीति के अनुसार काम करना पड़ता है। अपने विचार, अपनी मैत्री और अपनी शत्रुता का उसमें कोई संपर्क नहीं होता। महाराज नन्द की मृत्यु पर राक्षस का प्रयोजन महाराज सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठाना था। परन्तु चन्द्रगुप्त से भी अधिक बलवान होने के कारण आपके पिता उसके मार्ग में बाधक थे और यह एक भारी कारण था, इसके इस कार्य के लिये जिसका प्रभाव महाराज पर्वतेन्द्र की मृत्यु के रूप में प्रगट हुआ, इस कारण उसे दोष नहीं दिया जा सकता। यह नीति का एक पेंच था, न कि अपराध।

दूसरी बात जिसे महाराज को दृष्टि के सन्मुख रखना चाहिये यह है, कि राजनीति शत्रुओं को मित्र और मित्रों को शत्रु बना

देती है। आज के मित्र कल को शत्रु बन जाते हैं और कल के शत्रू परसों मित्ररूप में बदल जाते हैं। इस कारण नीति-निपुण पुरुष को ठीक उसी प्रकार पिछली बातों को भुला देना चाहिये जिस प्रकार नवीन देह धारण करते समय आत्मा पिछली बातों को भूल जाती है। इसलिये पिछले कर्मों के लिये राक्षस को कुछ कहना, जहां तक मेरी बुद्धि सोचती है, उचित नहीं है। और कम से कम उस समय तक जब तक कि नन्द का राज्य अपना नहीं हो जाता, उस समय में उसकी सम्मति की आवश्यकता नहीं रहेगी, और हम सहज ही में उससे पीछा छुड़ा सकते हैं।

मलयकेतु—मन्त्री, तुम सत्य कहते हो, इस समय राक्षस को कुछ कहा गया तो सारी सेना में हलचल मच जायगी, इस कारण चुप रहना ही उचित होगा।

ठीक उसी समय एक राज्याधिकारी ने उपस्थित होकर प्रार्थना की:—

राज्याधिकारी—जय हो महाराज की, गुल्मस्थान के अधिकारी दीर्घरक्ष ने सूचना दी है कि एक मनुष्य सेना से छिपकर निकलता हुआ पकड़ा गया है उसके पास से यह पत्र मिला है, क्या महाराज उसे लाने की आज्ञा देंगे?

मलयकेतु—ले आओ।

अधिकारी—(सिद्धार्थक को सन्मुख लाकर) महाराज, यह मनुष्य है।

भागुरायण—तुम कौन हो, परदेशी या हमारी सेना के कोई सेवक।

सिद्धार्थक—महाराज! महामन्त्री जी का एक तुच्छ सेवक।

भागुरायण—तो तुमने क्यों चोरी से जाकर महाराज की आज्ञा का उल्लंघन किया?

सिद्धार्थक—महाराज, कार्य बड़ा आवश्यक था, इसलिये बहुत जल्दी थी।

भागुरायण—इतना आवश्यक कि इसके लिये महाराज की आज्ञा के उल्लंघन की आवश्यकता थी?

मलयकेतु—इस पत्र को पढ़ो।

भागुरायण—महाराज, इस पर तो महामन्त्री राक्षस की मोहर लगी है।

मलयकेतु—मोहर को न तोड़ो, परन्तु पत्र को खोल कर पढ़ो।

भागुरायण—लिखा है:

—❀—

"स्वस्ति! यथा स्थान उस पुरुष से; उस स्थान से, उसकी ओर यह भेजा जाता है जिसके लिये यह है। हमारे प्रतिपक्षी का निकाला जाना सत्यवादी के वचन के सत्य होने को दरसाता है। समय शुभ है कि प्रतिज्ञा की हुई कृपा दृष्टि दिखाकर सन्धि का मूल्य चुका दिया जावे तब यह मित्र हमारे अपने होंगे और इस पक्ष को गिराने का प्रयत्न करेंगे जिसमें इस समय तक वह आश्रय लेते रहे हैं। इस सेवा के फल के रूप में यद्यपि आवश्यकता नहीं परन्तु मैं फिर उनकी शर्तें स्मरण कराता हूं, कुछ भूमि के इच्छुक हैं तो दूसरे धन के लालची हैं, कई एक हाथी और युद्ध की लूट चाहते हैं। तीनों बहुमूल्य अलंकार जो भेजे गये थे, मिल गये हैं। मैं भी कुछ भेंट भेजता हूं जो कदाचित् कुछ मूल्य वान् अवश्य हैं, शेष इसका लाने वाला कह देगा।"

—❀—

मलयकेतु—इस लेख का क्या अर्थ है?

भागुरायण—सिद्धार्थक! इसका लेखक कौन है?

सिद्धार्थक—महाराज! मुझे पता नहीं।

भागुरायण—धूर्त, ले जाने वाले तुम और तुम्हें ही यह पता नहीं कि कौन इसका लेखक है। अच्छा, बताओ किसके पास तुम इसे ले जा रहे थे ?

सिद्धार्थक—महाराज, आप के पास ही।

भागुरायण—मेरे पास ! जागते हो व सोते।

सिद्धार्थक—महाराज, मार बहुत पड़ी है, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है, पता तहीं मुख से क्या कह रहा हूं।

भागुरायण—अभी पता हो जायगा। भासुरक ! लगाओ कोड़े जब तक इस धूर्त की बुद्धि ठिकाने न हो जाय।

सिद्धार्थक को बाहर ले गए और तड़ातड़ कोड़ों का शब्द होने लगा।

एक अधिकारी—महाराज ! कैदी को मारते समय यह डिब्बा इसकी कांख से गिरा है।

भागुरायण—इस पर भी वही मोहर लगी है।

मलयकेतु—मेरा विचार है कि इस पत्र में उसकी ओर संकेत था। अच्छा, मोहर को तोड़े बिना इसको खोलें।

भागुरायण ने आज्ञानुसार डिब्बा खोला तो बीच में से चमकते हुए रत्नों ने नेत्रों में चकाचौंध लगा दी। मलयकेतु ने देखा और देखते ही उसके मुख से निकला :—

मलयकेतु—यह अलंकार हैं, जो हमने स्वयं अपने शरीर से उतार कर महामन्त्री राक्षस को भेजे थे। निस्सन्देह यह पत्र चंद्रगुप्त के लिए है।

भागुरायण—अभी सारा संशय दूर हुआ जाता है, लगाओ दुष्ट को और कोड़े, अभी सब कुछ बता देगा।

आज्ञानुसार कोड़े पड़ने लगे, सिद्धार्थक की पीठ का चर्म रुई की तरह उड़ने लगा और थोड़ी देर में ही उसने हाथ जोड़े

हुए मलयकेतु के चरणों में गिरकर कहा, "महाराज, क्षमा कीजिये मैं सब कुछ सत्य सत्य कहे देता हूं।"

मलयकेतु—उठो, सत्य सत्य कह दोगे तो प्राण छोड़ दिये जायंगे।

सिद्धार्थक—महाराज, (रोकर) यह पत्र मुझे.........यहाँ मंत्री राक्षस ने दिया था .....चन्द्रगुप्त के......हाथों में पहुंचाने के लिए।

मलयकेतु—और क्या क्या निर्देश थे ?

सिद्धार्थक—महाराज, मुझे यह कहने की आज्ञा थी—"म्लेच्छ राज्य मेरे मित्र हैं और आपके काम आ सकते हैं, कौलूताधिपति चित्रवर्मा, मलय नगराधिपति सिंहनाद, काश्मीर देशनाथ पुष्कर राजा यह तो मलयकेतु के राज्य से भूमिखंड मांगते हैं। सिंध के राजा सिंधुसेन और पारसीकपति मेघनाद, उसके हाथी और कोष की इच्छा रखते हैं और मेरे लिए तो चाणक्य का निकाला जाना ही बहुत है।"

मलयकेतु—क्या ? क्या यह सत्य हो सकता है ? क्या मेरे साथी राजा मेरे साथ शत्रुता पर उद्यत हैं ? परन्तु इसमें संदेहकी बात ही क्या है, मैं देखता हूं कि आरम्भ से ही ये राक्षस के कथन पर चलते आए हैं। हां हां ! बुलाओ राक्षस को।

——:※:——

हा ! मनुष्य का ज्ञान कितना क्षुद्र है, मनुष्य की बुद्धि कितनी थोड़ी दूर तक पहुंचने वाली है। राक्षस के सिर पर इस समय घनघोर घटा छा रही है। झूठ के दल-बादल उसके विरुद्ध इकट्ठे हो रहे हैं, परन्तु उसे खबर तक नहीं। राज्य सेवक उसे बुलाने के लिए जा रहा है, परन्तु वह सेना को सुसज्जित करने में निमग्न है। वह देखिए, वह प्रियम्वदक (अपने सेवक) से कह रहा है:—

राक्षस—"प्रियंवदक! जाओ; हमारे मित्र और साथी राजाओं को कह दो कि हम अब शत्रु की राजधानी कुसुमपुर के निकट पहुंच रहे हैं, अब अधिक सावधानी से कार्य्य करने की आवश्यकता है। हमारी सेना के प्रस्थान का क्रम अब यह होना चाहिए खस और मगध के शूरवीर और मेरी अपनी सेना नायक हो। मध्य में गांधार के योद्धा हों जिनके साथ यवन सेनापति सहायक हों। पीछे शक, चेदी, और हूण वीर हों और स्वयं हमारे वीर साथी राजा अपने शूरवीरों के साथ महाराज मलयकेतु के पवित्र शरीर की रक्षणी सेना का भार अपने सिर पर लें।"

विजय—महाराज की जय हो! महाराज मलयकेतु याद करते हैं।

राक्षस—सेवक! शकटदास को कह दो कि महाराज ने मुझे याद किया है, मैं उनकी सेवा में उपस्थित होना चाहता हूं, इस कारण अलंकारों की आवश्यकता है, आज जो अलंकार खरीदे थे उनमें से एक भेज दिया जावे।

सेवक अलंकार ले आया, महामन्त्री जी ने उसे पसंद करके पहन लिया और महाराज के दर्शनार्थ चल दिये। दर्बार में पहुंचे तो महाराज गहरे विचार में मग्न बैठे थे, भृकुटियां चढ़ी हुई थीं; नेत्र भूमि में पड़ रहे थे और सिर एक हाथ की टेक पर था।

राक्षस—महाराज की जय हो!

मलयकेतु—प्रणाम करता हूं, आसन ग्रहण कीजिए, शोक है, आप चिरकाल के पश्चात् दर्शन देते हैं।

राक्षस—महाराज, सत्य है! अनुपस्थिति के लिए क्षमाप्रार्थी हूं, परन्तु प्रस्थान की तय्यारियां इतना समय चाहती हैं कि बड़ी कठिनता से सेवा में उपस्थित हो सकता हूं।

मलयकेतु—हाँ, तो प्रस्थान का क्रम क्या है?

राक्षस—खस और मगध के योधा नायक हैं, यवन और गांधार-शूरवीर मध्य में हैं, हूण, चेदी के वीर और शक यह पीछे हैं, हमारे साथी राजा लोग महाराज के शरीर रक्षक हैं।

मलयकेतु—(मन ही मन) वाह! क्रम तो अच्छा है, हमारे शरीर-रक्षक वे लोग जो हमें शत्रु के हाथ सौंपने को सर्वदा उद्यत हैं! (प्रकाश्य में) क्या कोई ऐसा पुरुष भी है जो हमारी सेना के आगे कुसुमपुर जाता व वहां से आता है।

राक्षस—इसकी अब आवश्यकता नहीं रही, पाँच दिन में हमारी सेना कुसुमपुर के द्वार पर होगी।

मलयकेतु—तो यह पुरुष कौन है जो इस समय आपका पत्र लेकर कुसुमपुर जा रहा है।

राक्षस—मेरा पत्र! असम्भव! (सिद्धार्थक की ओर देखकर) सिद्धार्थक यह क्या बात है?

सिद्धार्थक—महाराज, क्षमा कीजिये! कोड़े की असह्य मार ने सारा भेद मुझसे कहलवा दिया है।

राक्षस—भेद! कौनसा भेद? मैं नहीं समझा।

सिद्धार्थक—महाराज! मैं अपराधी हूं, मैं महाराज की आज्ञा का पालन नहीं कर सका, परन्तु यह मार-पीट, यह बेंत, यह कोड़े.........

मलयकेतु—यह मनुष्य स्वामी के मुंह पर सारी बातें नहीं कहेगा। (भागुरायण से) आप सब कुछ क्यों नहीं कह देते?

भागुरायण—जो आज्ञा महाराज। (फिर राक्षस से) यह मनुष्य कहता है कि आपने उसे एक पत्र और एक संदेशा देकर चन्द्रगुप्त की सेवा में भेजा था।

राक्षस—क्यों सिद्धार्थक?

सिद्धार्थक—महाराज, मैं तो नहीं बताता था, परन्तु मार का डर.........

राक्षस—झूठ ! असत्य ! मार-पीट कर एक निष्पाप पुरुष से भी पाप स्वीकार कराया जा सकता है।

मलयकेतु—(भागुरायण से) इन्हें पत्र दिखा दीजिये और वह डिब्बा भी।

भागुरायण—(पत्र देकर) इसे पढ़िये।

राक्षस ने पत्र को ले लिया, उसे पढ़ा, दुबारा पढ़ा, तिबारा पढ़ा और मुंह से निकल गया, "शत्रु का प्रयोग।"

भागुरायण—(रत्न और अलंकारों को दिखाकर) क्या यह भी शत्रु का प्रयोग है ?

राक्षस—नहीं ! यह अलंकार मुझे महाराज ने दिये थे, मैं इन्हें पहचानता हूं और कृतज्ञता के रूप में......मैंने इन्हें एक भारी सेवा के पुरस्कार में...इस मनुष्य सिद्धार्थक को दिया था।

भागुरायण—यह सर्वथा असम्भवसी बात है कि महाराज का दिया हुआ उपहार एक ऐसे तुच्छ सेवक को दिया जावे। और फिर महाराज के अपने शरीर पर धारण किया हुआ !

मलयकेतु—आपने लिखा था, "शेष सिद्धार्थक अपने मुख से सुना देगा।"

राक्षस—मैंने कोई ऐसा संदेश नहीं भेजा और न कोई पत्र ही लिखा।

मलयकेतु—यह मुद्रा किसकी है ?

राक्षस—बनावटी।

मलयकेतु—हो सकता है, मुद्रा बनावटी बन सकती है !

भागुरायण—हां, यह सम्भव है, परन्तु सिद्धार्थक ! यह पत्र किसके हस्ताक्षर में है।

सिद्धार्थक राक्षस के मुंह की ओर देखने लगा।

भागुरायण—बोलो, नहीं तो मारे कोड़ों के चटनी हो जायगी।

सिद्धार्थक—शकटदास के हस्ताक्षर में।

राक्षस—यदि यह पत्र शकटदास के हस्ताक्षर में हो, तो मैं मान लूंगा कि यह मेरा है।

सिद्धार्थक—बुलाओ उसे।

भागुरायण—महाराज! शकटदास राक्षस का मित्र है, वह इसके विरुद्ध बोलने को कभी उद्यत न होगा, इसलिये उसका लेख मंगवा लेना अच्छा होगा।'

मलयकेतु—ठीक! बहुत ठीक। विजय, सुनते हो?

विजय—महाराज! उसकी मुद्रा भी लेता आऊं।

मलयकेतु—ले आओ!

मुद्रा आ गई। हस्ताक्षर का नमूना भी आ गया। मलयकेतु ने दोनों को मिलाया, रंचकमात्र भी अन्तर न था। देखकर उन्होंने उसे राक्षस के हाथ में दिया। राक्षस ने देखा तो हस्ताक्षर वही थे। फिर क्या था, पांव तले की मिट्टी निकल गई और बिजली की-सी तेजी से यह विचार मस्तिष्क में फिर गया। हा शकटदास! तुमने छल किया, मैं जानता हूँ सिद्धार्थक तुम्हारा मित्र है। क्या गृहजनों को बचा लेने के लिए मेरा गला कटवाने पर उद्यत हो गए।

मलयकेतु—यह पत्र कहता है, "तीन बहुमूल्य अलंकार पहुंच गए हैं" और एक आपके शरीर को शोभायमान कर रहा है। तनक दिखाइए तो, (अलंकार को देखकर) यह आपने कहां से लिया?

राक्षस—कुछ व्यापारी आये थे, उनसे खरीदा था।

मलयकेतु—विजय! देखना, इस अलंकार को पहचानते हो?

विजय—(अलंकार को देख कर) महाराज! यह कहां भूल सकता हूं, सैकड़ों बार इसे महाराज के पूज्य पिता पर्वतेन्द्र के शरीर पर देखा था।

मलयकेतु—हा पिता! पूज्य पिता! वह अलंकार जो आपके

शरीर की शोभा थे आज उनकी यह दशा हो रही है।

राक्षस—यदि यह महाराज पर्वतेन्द्र के थे तो वे व्यापारी चाणक्य के कर्मचारी होंगे जो इन्हें मेरे पास बेच गए।

मलयकेतु—क्या यह सम्भव है कि वह अलंकार जो कभी महाराज पर्वतेन्द्र के शरीर की शोभा थे और जिन्हें चन्द्रगुप्त ने प्राप्त किया, इस प्रकार व्यापारी लोगों के हाथों जहां-तहां बिकते फिरें ? नहीं नहीं, यह स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त ख़रीदार था और हमारा राज्य इसका मूल्य।

राक्षस—चुप, सिर नीचे पड़ गया, प्रमाण इसके पूर्ण विरुद्ध थे, उनका खंडन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

मलयकेतु—आर्य्य ! मैं अब पूछता हूं............

राक्षस—उससे पूछिए, जो इस पवित्र नाम का अधिकारी हो, मैं तो अब आर्य्य नहीं अनार्य्य बन चुका।

मलयकेतु—मैं पूछता हूं, इस पत्र, इस डिब्बे और इन रत्नों को किस नाम से पुकारा जाय ?

राक्षस—मेरा दुर्भाग्य !

मलयकेतु—(क्रोध से नेत्र लाल कर) भाग्य को कोसते हो अपने लोभ को नहीं। हा अभागे ! नीच ! कृतघ्न !!! मेरे पिता ने तुझपर विश्वास किया और तूने उसके बदले में उनके प्राण लिए। अब मैंने तुझे अधिकार और प्रतिष्ठा दी और तू उनसे संतुष्ट न हुआ, प्रत्युत उसी लोभ के वश में मेरे शरीर और मेरे राज्य को मेरे शत्रु के हाथों में बेचने को उद्यत हो गया। धिक्कार ! शोक !! महा शोक !!!

राक्षस—मैं यह सहन करने में असमर्थ हूं। पर्वतेन्द्र के पुत्र ! मैं कहता हूं, मैं निष्पाप हूं।

मलयकेतु—मेरे पिता के प्राण किसने लिए ?

राक्षस—दैव ने।

मलयकेतु—(अत्यन्त क्रोध से) कहते क्यों नहीं, मैंने ही यह पाप किया था, तुम्हारा मित्र जीवसिद्धि यहां सब कुछ स्वीकार करके गया है।

राक्षस—तो क्या वह भी चाणक्य का कर्मचारी है? हा! क्या मेरे शरीर के अंग ही मेरे विरुद्ध हो रहे हैं?

मलयकेतु—भासुरक! जाओ, हमको पता लग गया है कि म्लेच्छ राजा जो आज तक हमारे मित्र समझे जाते थे हमारे विरुद्ध कुचक्र रच रहे हैं। वे हमें क़ैद करके चन्द्रगुप्त के हाथों में देना चाहते थे। इसलिए उन तीनों को जो हमारे राज्य को बांट लेना चाहते थे, पकड़ कर एक गडढे में डलवा दो, ऊपर से मिट्टी डाल दो, शेष दोनों को उन्हीं हाथियों के पांव तले कुचलवा दो, जिन्हें प्राप्त करने के लिए वे मित्रघात करने पर उद्यत हुए थे। (राक्षस से) हमने तुम से प्रतिज्ञा की थी और उसे भंग करना नहीं चाहते। जाओ हमारी सेना से निकल जाओ, उस चन्द्रगुप्त की शरण में चले जाओ जिसके लिए तुम हमें नष्ट करने पर तुले हुए थे। हमें पूर्ण आशा है कि तुम्हारे बिना भी हम शत्रु को धूल में मिला देने की शक्ति रखते हैं।

—):o:(—

महाराज मलयकेतु की आज्ञा का पालन किया गया। राक्षस को घोर अपमान के साथ शिविर से बाहर निकाल दिया गया और पाँचों म्लेच्छ राजाओं को जिनके बल पर युद्ध की तैयारियाँ की गई थीं, अकस्मात् पकड़कर मार दिया गया। यह सब कुछ इस प्रकार अचानक और एकाएक हुआ कि जिस समय यह समाचार चारों ओर फैला तो किसी को विश्वास न आता था, परन्तु जब इसके संबन्ध में किसी को संशय न रहा तो हत राजाओं की सेनाओं के दुःख और क्रोध की सीमा न रही। बहुत सी सावधानी रखने पर भी एक आग सी भड़क उठी। सिंधु, कौलूत,

पारसीक आदि वीर अपने राजाओं का प्रतिकार लेने के लिए कटिबद्ध हो गए। इधर शेष बचे हुए राजाओं को अपना जीवन भय में दिखाई देने लगा। इस प्रकार चारों ओर उपद्रव के चिह्न दिखाई देने लगे। धोखा, छल और विश्वासघात का नाम ले लेकर सब ओर से धिक्कार पड़ने लगी।

एकाएक एक तेजस्वी शूरवीर की आवाज़ ऊंची हुई—"धिक्कार है उस सेना पर जो अपने सरदार की हत्या को देखे और हाथ तक न हिलाए। क्या राजाओं के सिर साधारण अपराधियों की भांति तन से अलग कर दिए जाएं?"

जिस समय यह शब्द लोगों के कानों में पड़े तो प्रत्येक दिशा में क्रोध और आवेश का समुद्र लहराने लगा मानों रुद्ध जल को बहने का मार्ग मिल गया। देखते देखते मलयकेतु के शिबिर ने रणभूमि का भीषण आकार धारण कर लिया। वह जो एक दूसरे का हाथ पकड़ कर एक सम्मिलित शत्रु के साथ युद्ध करने को चढ़े चले आते थे, एक दूसरे का रक्त बहाने लग गए। चारों ओर घोर विप्लव मच गया, परिणाम यह हुआ कि वे जिन्हें विजय की आशा थी निराश हो गए, वे जो सहस्रों प्रकार की तरंगों के साथ देश से चले आते थे अपनी आशाओं पर पानी फिरता देखने पर विवश हुए। यह ढग देख कर मलयकेतु को भागने की सूझी परन्तु यह असंभव था क्योंकि भद्रभट आदि नायकों ने जिन्हें इस समय तक चन्द्रगुप्त के भागे हुए नायक समझा जाता था, इसे घेर रखा था।

उधर वृषल की सेना भूमि को कंपायमान करती हुई आंधी की तरह चली आती थी। जब उस स्थान पर पहुंची जहां मलयकेतु की सेना खड़ी थी, तो वहां पर भारत-सुपूतों की गगन चुम्बी पताका लहरा रही थी।

बाईसवां परिच्छेद

पाटलीपुत्र में

"हा ! यह भी कोई जीवन है ? इतना अपमान परमात्मा शत्रु को भी न दिखलादे । क्या यह सब कुछ मेरे लिए ही रह गया था ? स्वामी की सेवा और स्वामि-भक्ति का यही परिणाम है, जो मैं देख रहा हूं ? परमात्मन् ! यह जीवात्मा इस अभागे शरीर का साथ क्यों दे रहा है, यह क्यों नहीं इसे छोड़ देता ? क्या यह नेत्र अभी कुछ और देखेंगे ? हा ! नन्द वंश नष्ट हो गया और मैं जीवित हूं । मेरा मित्र चन्दनदास केवल मेरे लिये ही बंदी-गृह में पड़ा सड़ रहा है और मैं फिर भी जीवित हूं ।

नहीं नहीं, मेरा जीवित रहना आवश्यक है । कम से कम उस समय तक जब तक कि मैं अपने मित्र को, जिसने संसार में प्रेम की कथाओं को जीवित और जागृत कर दिया है, हां उस मित्र को जिसने इस कलियुग में सतयुग के मित्रों का दृष्टान्त पेश किया है, मैं फिर से स्वतन्त्र नहीं देख लेता । वह मेरे लिए इतनी वीरता दिखलाए इतने कष्ट सहन करे और मैं कायरों की भांति प्राण छोड़ने को उद्यत हो जाऊं । धिक्कार है इस विचार पर और धिक्कार है उस हृदय पर जिसके अन्दर यह विचार उत्पन्न हुआ । नहीं नहीं, मैं जीवित रहूंगा और उस समय तक जीवित रहूंगा जब तक अपने मित्र को स्वतन्त्र न देख लूंगा । चाणक्य की नीति सफल हो, चन्द्रगुप्त बेखटके राज्य करे। परन्तु ! राक्षस

उस समय तक शस्त्र नहीं फेंकेगा जब तक कि उसके तन में प्राण है।"

यह कहता हुआ हमारा पुराना मित्र राक्षस एक साधारण नागरिक के वेश में पाटलीपुत्र की ओर बढ़ा जा रहा है। हा! यह वही राक्षस है जिसकी आंख की सेन पर राजा नाचते थे। जिसके साथ बात करने को बड़े बड़े राज्याधिकारी सम्मान समझते थे। जिसकी सवारी चलती थी तो पृथ्वी पर भूचाल सा आ जाता था। हां, यह वही राक्षस है, जो वह वस्त्र धारण कर रहा है जिन्हें साधारण मनुष्य भी पसन्द नहीं करते। निस्सन्देह इसका हृदय इस समय भी पूर्ववत् अचल है, परन्तु इस बात को कौन नहीं मानता कि निरन्तर कष्टों ने घेर कर इसे निराश कर रखा है। इस समय यदि उसके अन्दर दृढ़ता है तो वही जो निराशा के समय मनुष्य के अन्दर उत्पन्न हो जाया करती है।

पाटलीपुत्र के निकट पहुंच कर वह बस्ती से हटकर वृक्षों के एक कुंज की ओर बढ़ा, परन्तु उन्हें देख कर उसका हृदय भर आया क्योंकि यह वही बन था जिसमें कई बार उसने महाराज नन्द के साथ शिकार खेला था। ऊंचे-ऊंचे वृक्षों और उनके अन्दर कल्लोल करते और चौकड़ियां भरते हुए मृगों को देख कर उसके नेत्रों के सम्मुख अतीत काल का दृश्य फिर गया और एक गिरे हुए वृक्ष की शाखा पर बैठ कर वह बीते हुए समय की कल्पनाओं का स्वाद लेने लगा।

उसी अवस्था में बैठे बैठे...न जाने कितना समय व्यतीत हो गया और कदाचित् कितना और व्यतीत हो जाता यदि एक ओर से किसी के रोने का शब्द इस समाधि-अवस्था से उसे जगा न देता। इस निर्जन बन में यह शब्द कहां से आया, यह जानने के लिए वह वहां से उठा। इधर-उधर देखा और अन्त में उसे

एक ऐसा दृश्य दिखाई दिया जिससे उसके प्राण सूख गए, क्योंकि सामने एक मनुष्य वृक्ष में रस्सा बांधे फांसी ले रहा था।

बिना कुछ समझे राक्षस ने आगे बढ़ कर रस्से को पकड़ लिया। उस समय फांसी लेने वाले के नेत्र बाहर को निकल रहे थे और कण्ठ से कराहट का शब्द निकल रहा था।

हाथ के झटके से राक्षस ने रस्से को ढीला करके अपनी चमकती हुई तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिए।

परन्तु गले में पड़े हुए रस्से को ढीला करना सहज न था क्योंकि फांसी लेने वाला मनुष्य उसे हाथ से थाम रहा था, और कदाचित् ऐसा होना कठिन हो जाता यदि राक्षस से न्यून बलवान् मनुष्य उसमें हाथ डाल रहा होता। परन्तु थोडे समय में ही राक्षस उस मनुष्य को उन्मुक्त करने में सफल हुआ, जिसने धमनी नाड़ी के खुलते ही कहा, "मुझे मर जाने दीजिए, मेरे लिए संसार में कुछ नहीं रहा।"

राक्षस—क्यों, तुम्हें इतना कौन सा दुख पहुँचा है जो आत्महत्या करने लगे हो। क्या तुमने सुना नहीं कि "आत्मघाती मनुष्य नरक प्राप्त हुआ करते हैं।"

मनुष्य—मेरे लिए यह लोक ही महा नरक हो रहा है और मरने पर यदि कोई ऐसा लोक मिल जायगा तो क्या हानि है ?

राक्षस—तो भी हुआ क्या है, कौन सा दुःख है जिसका उपाय नहीं ?

मनुष्य—तुझको पराई क्या पड़ी, तू अपनी निबेड़।

राक्षस—तो भी क्या कोई ऐसा ही भेद है, जिसे अन्य पुरुष के सामने प्रकट नहीं किया जा सकता।

मनुष्य—यमराज के द्वार पर बैठा हुआ मनुष्य भेद और रहस्य को नहीं जानता। यदि तुम उसे सुनने को इतने ही उद्विग्न तो सुन लो, मेरा एक मित्र इस समय मुझसे वियुक्त हो रहा है

और यह दुःख जैसा असह्य है, उसे वही समझ सकता है जिसने इसे अनुभव किया हो।

राक्षस—कौन ?

मनुष्य—इस नगर में जिष्णुदास एक सेठ है।

राक्षस—(जल्दी) हां, उसे क्या हुआ ?

मनुष्य—अपने सारे धन को निर्धनों में बांटकर वह इस समय चिन्ता में बैठ कर आत्मघात करने लगा है। वह मेरा प्यारा मित्र है और उसकी मृत्यु का दुःख ऐसा है जिसे सहन करने को मैं असमर्थ हूँ।। इस कारण यहाँ आकर अपने प्राण यमराज को अर्पण करने लगा हूँ।

राक्षस—क्यों, तुम्हारे इस मित्र को ऐसा कौन सा दुःख है जो वह आत्मघात पर उद्यत हो गया है। क्या उसे कोई असाध्य रोग है जिससे मृत्यु के बिना छुटकारा नहीं हो सकता ?

मनुष्य—नहीं।

राक्षस—तो क्या निर्दई राजा ने उसे अग्नि की गोद में बैठने पर विवश कर दिया है ?

मनुष्य—प्रतीत होता है कि तुम इस देश के वासी नहीं, अन्यथा तुम्हें पता होता कि महाराज चन्द्रगुप्त के राज्य में किसी मनुष्य के साथ अन्याय और अत्याचार नहीं होता।

राक्षस—तो फिर क्या तुम्हारे मित्र की कोई ऐसी इच्छाएं हैं जो पूर्ण होने में नहीं आतीं अथवा वह किसी ऐसी स्त्री के प्रेम में बावला हो रहा है जो उसे घृणा की दृष्टि से देखती है।

मनुष्य—किसी धर्मात्मा पुरुष को ऐसा क्लेश नहीं हो सकता।

राक्षस—तो फिर इसके सिवा और क्या हो सकता है कि इसे किसी मित्र का वियोग सहन करना पड़ा हो।

मनुष्य—हां ! अब आपने ठीक समझा।

राक्षस के हृदय ने एक बड़ी सी छलांग मारी, मुखमण्डल फीका पड़ गया और कंपित हृदय से उसने कहा :—

राक्षस—जिष्णुदास का मित्र ! कौन·········

मनुष्य—महाशय ! आप मुझे क्यों ठहरा रहे हैं ? मुझे मरने दीजिए, मेरा दम घुट रहा है। यह शरीर अब मुझे सुख नहीं दे सकता।

राक्षस—तनक ठहरो, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे जाओ।

मनुष्य—जिष्णुदास का मित्र चन्दनदास······

राक्षस—(घबराहट से) उसे क्या हुआ ?

मनुष्य—उस पर महाराज कुपित हो गए और उसे बन्दीगृह में डाल दिया गया। इस पर जिष्णुदास ने महाराज की सेवा में उपस्थित होकर कहा कि "जितनी मेरी धन-सम्पत्ति है ले ली जावे परन्तु चन्दनदास को छोड़ दिया जावे।" परन्तु महाराज श्री चन्द्र का उत्तर था कि " हमने इसकी धन-सम्पत्ति के लोभ से इसे कैद नहीं किया, यह राक्षस के गृहजनों को छिपा रहा है उनको हमें सौंप दे तो इसे तुरन्त छोड़ दिया जा सकता है। परन्तु यदि वह इसी प्रकार अपने हठ पर डटा रहा तो हमें इसके प्राण लेने के अतिरिक्ति और कोई उपाय न रहेगा।" सुतरां उसी आज्ञा का फल है कि चन्दनदास को आज शूलारोपण के लिए सिपाही लिए जा रहे हैं। उसका मित्र अपनी विवशता को देख कर अग्नि-देवता की गोद में जा रहा है और मैं इस रस्से के द्वारा शान्ति धाम को पहुँचना चाहता हूँ।

राक्षस—(ज़ोर से) ठहरो ! जाओ ! अपने मित्र से कह दो निराश न हो, चन्दनदास जीवित रहेगा; मैं अभी जाकर उसे छुड़ाता हूँ।

मनुष्य—(आश्चर्य से) किस प्रकार ?

राक्षस—(तलवार खैंचकर) इसके बल से ! राजपूती खांडे !

तू युद्ध भूमि में अपनी चमक दिखा चुका है, तूने सैकड़ों शत्रुओं को धराशाई किया है, तूने सहस्त्रों शत्रुओं से घिरे हुए होने पर भी अपने स्वामी का साथ नहीं छोड़ा। क्या तू इस समय एक मित्र को बचाने के लिए नहीं उठेगा ?

मनुष्य—क्या मैं अपने सम्मुख महा मन्त्री राक्षस को देख रहा हूँ ? क्या मेरे कर्ण चन्दनदास के विख्यात मित्र के शब्द सुन रहे हैं ? निस्सन्देह यह शब्द किसी और के मुख से नहीं निकल सकते ।

राक्षस—हां, तुम्हारे सम्मुख वही अभागा मनुष्य खड़ा है, जिससे मित्रता करना विनाश का आवाहन करना है, जिसके छूने वाले को भी कोई न कोई कलक लग जाता है !!!

मनुष्य—(चरणों पर गिर कर) महाराज, प्रणाम स्वीकार कीजिए।

राक्षस—(उसे उठाकर) उठो ! समय थोड़ा है, जाओ अपने मित्र के पास पहुँचो और उसे सारी बातों की सूचना दो ।

मनुष्य—परन्तु यदि एक मूर्ख की सम्मति कोई मूल्य रखती हो तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि इससे पहले जब शकटदास को शूलारोपण के लिये चाण्डाल ले जा रहे थे तो उनके एक मित्र ने बन्दीगृह पर आक्रमण करके उन्हें छुड़ा लिया था। बन्दीगृह के रक्षकों की इस असावधानी पर क्रुद्ध होकर महाराज ने उन्हें मरवा डाला था और उस समय से अपराधियों की कड़ी चौकसी रहती है। इस कारण रक्षक यदि किसी शस्त्रधारी मनुष्य को उधर आते भी देख पाए तो तुरन्त ही अपराधी को शूली पर चढ़ाकर उसे मार डालते हैं। इसलिए महाराज, ऐसी विधि से कार्य्य करें कि लाभ के स्थान में उल्टी हानि न हो।

राक्षस—ठीक कहा ! अच्छा मैं कोई उपाय करता हूँ।

तेईसवां परिच्छेद

राक्षस पकड़ा गया

बध्यस्थान में मनुष्यों की भीड़ लग रही है, चारों ओर लोगों के ठट्ठ के ठट्ठ जम रहे हैं। आज चन्दनदास प्रेम और मित्रता की देवी के मन्दिर में अपने भौतिक शरीर का बलिदान करेगा। आज इस नश्वर संसार में अविनाशी प्रेम का प्रमाण पेश किया जावेगा।

संसारी लोगों! धन-दौलत की ममता में फसने वालो! आओ देखो! प्रेम की वेदी पर बलिदान होनेवाले के मुखमण्डल के तेज को देखो। तुम जिस समय इस भौतिक शरीर को छोड़ते हो, तो रोते हो, चिल्लाते हो, हाहाकार मचाते हो; परन्तु देखो तुम्हारी तरह इस रक्त का बना हुआ मनुष्य किस प्रकार निर्भय खड़ा है। स्त्री पास ही खड़ी रो रही है, इकलौता पुत्र भी पास ही विद्यमान है; परन्तु उसका मुख शान्त है, धीर है, एक रस है। वह प्रसन्न है, संतुष्ट है क्योंकि आज वह एक अविनाशी भाव के लिए नाशवान शरीर को छोड़ रहा है। सुनो उसकी अर्धाङ्गिनी क्या कह रही है।

स्त्री—हा! धिक्! ऐसे पवित्र आत्मा का यह परिणाम!! परमात्मन्! तेरे राज्य में यह अन्धेर! शत्रु और मित्र एक ही रज्जु से!! हा हा!! भोला मृग और वन्य सिंह एक ही बाण के शिकार?

चन्दनदास—कहां है मेरा मित्र जिष्णुदास ? क्या कोई नहीं बताएगा ? हा देव ! विपत्ति में सभी साथ छोड़ जाते हैं। सत्य है, राजद्वार में और शमशान में जो साथ देता है, वही मित्र है।

एक चाण्डाल—आर्य्य चन्दन दास ! अब अपने गृहजनों को विदा करो, समय आ पहुंचा।

चन्दनदास—प्रिये जाओ मेरे सपूत को भेज दो।

स्त्री—स्वामिन् ! क्षमा करो ! जिसने आयुभर साथ दिया, वह इस समय पीछे नहीं रहेगी। आप विदेश को नहीं जा रहे, जो मैं धीरज से बाट देखूंगी, यह परलोक की यात्रा है और एक आर्य्य पत्नी जानती है कि इस समय उसका क्या धर्म है।

चन्दनदास—नहीं नहीं प्रिये ! हमारा पुत्र अभी बालक है उसे पालने के लिए किसी व्यक्ति की आवश्यकता है।

स्त्री—स्वामिन् ! परमात्मा सारे संसार के पालन हारे हैं, वे इस नन्हें से पौदे का भी सिञ्चन करेंगे जिसे हम अपने पीछे छोड़ जाएंगे। जाओ बेटा पिता को प्रणाम करो।

पुत्र—(चरणों में गिरकर) पिता, मुझे क्या आज्ञा है ? (आंखों से आँसू बह निकले)

चन्दनदास—जाओ बेटा, उस देश में जाकर रहना, जहाँ चाणक्य का हाथ न हो।

चाण्डाल—आर्य्य ! चलिए, सूली गड़ गई !

स्त्री—दुहाई ! दुहाई !! दुहाई !!!

चन्दनदास—प्रिये ! रोओ नहीं, महाराज नन्द और उनके सपूत स्वर्ग में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं रोग से नहीं मर रहा वरन् मित्रता की वेदी पर बलिदान हो रहा हूं और यह शोक का समय नहीं प्रत्युत हर्ष का है।

एक चाण्डाल—(दूसरे चाण्डाल से) अरे विलपत्र ! पकड़ इसे, तो यह स्त्री और बालक स्वयं ही चले जायेंगे।

दूसरा चाण्डाल—हां हां बज्रामन ! देख, मैं इसे लाता हूं ।

चन्दनदास—ठहरो, एक क्षण भर ठहरो, मुझे अपने सपूत के गले लग लेने दो । (पुत्र से) पुत्र ! मरना सबको है, एक न एक दिन यह शरीर छोड़ना सबको है, परन्तु धन्य है वह मृत्यु जो मित्र की रक्षा में आती है । यह सम्मान की मृत्यु है, इस मृत्यु से मरने वाला मरता नहीं अमर हो जाता है ।

पुत्र—पिता ! यह शिक्षा भूल नहीं सकता, मित्र की रक्षा हमारे कुल का परम्परा से धर्म चला आया है ।

एक चाण्डाल—चलो चलो !! समय बीता जा रहा है ।

स्त्री—दुहाई ! दुहाई !! दुहाई !!!

एकाएक दर्शकों में हलचल मच गई और भीड़ को चीरकर एक मनुष्य आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया । सबकी आंखें उसकी ओर उठ गईं जिसने आगे बढ़ कर जल्दी से कहा :—

"देवी मत रो, राज्याधिकारियो ! ठहरो इस बन्धुए को कुछ न कहो, क्योंकि वह जो शान्ति से बैठा स्वामी के कुल का विनाश देखता रहा था, जिसने मित्रों को एक एक करके नष्ट होते देखा था, परन्तु जिसका हृदय नहीं डोला था, अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए आ गया है । मृत्यु की यह सामग्री अपमान के यह सब सामान इसके लिए हैं न कि इस पवित्र आत्मा के लिए !"

चन्दनदास—(मुड़कर पीछे देखते हुए) यह क्या ?

मनुष्य—आपके उदाहरण का एक तुच्छ अनुकरण ।

चन्दनदास—नहीं ! हमारी सबकी दुर्गति । महामन्त्री क्या आप समझते हैं कि आपकी मृत्यु मेरे लिए वैसी ही शान्ति का कारण होगी, जैसी मेरी अपनी मृत्यु थी ?

राक्षस—(क्योंकि यह राक्षस था) मित्र, मैंने जो कुछ किया है, अपने स्वार्थ के कारण, अपने आत्मा की शान्ति के लिए किया

है। (राज्याधिकारियों से) "जाओ, दुरात्मा चाणक्य को कह दो कि राक्षस उपस्थित है।"

उच्च अधिकारियों की रक्षा में राक्षस को महामन्त्री जी के द्वार पर पहुंचाकर उन्हें सूचना दी गई। वे कम्बल ओढ़े हुए बाहर निकले और आते ही बोले :—

चाणक्य—वह कौन शूरवीर है जो इस प्रज्वलित अग्नि को कपड़े में बाँध लाया है, जो आँधी के इस झक्कड़ को फटे हुए चिथड़ों में बाँधने में सफल हुआ है? हस्ती से युद्ध करते हुए इस भयानक सिंह को किसने पिंजरे में डाला है? किसने इस अथाह समुद्र को उसके भयानक मगर-मच्छों से सुरक्षित रहकर पार किया है?

सिद्धार्थक—(जो चाण्डाल के वेश में राक्षस का निरीक्षक था) महाराज की बुद्धि के सिवा ऐसा और कौन कर सकता है?

चाणक्य—नहीं नहीं, दैव इच्छा! नन्दवंश का प्रारब्ध, जो पहले ही से इसके विरुद्ध चला आ रहा था। यह मनुष्य के वश की बात नहीं।

राक्षस—(मन ही मन) कौटिल्य, तुझे दुरात्मा कहूं वा महात्मा। नहीं नहीं मैं तेरे साथ अन्याय नहीं करूंगा। तू मेरा शत्रु है इसमें संदेह नहीं, परन्तु मैं मानता हूं कि तूने शास्त्रों को अपने जीवन में धारण किया है, तू रत्नों का समुद्र है।

चाणक्य—(राक्षस की ओर देख कर अत्यन्त प्रसन्नता से) क्या यह महामन्त्री राक्षस है जिसकी शूरवीरता और पराक्रम ने वृषल और उसके मित्रों को रातों सोने नहीं दिया? यही महात्मा हैं जिन्होंने इतने समय तक मुझे विचारों में डुबाये रखा है। (कम्बल को उतार कर और राक्षस की ओर लक्ष्य करके) महामन्त्री राक्षस! विष्णुगुप्त प्रणाम करता है।

राक्षस—विष्णुगुप्त ! मुझे चाण्डाल के स्पर्श से बचाओ ।

चाणक्य—महामन्त्री राक्षस ! ध्यान से देखो, यह चाण्डाल नहीं राजकर्मचारी सिद्धार्थक है और दूसरा पुरुष जो आपके मित्र को लेकर गया था, उसी पदवी का राजकर्मचारी समिद्धार्थक है । सिद्धार्थक को आप जानते ही होंगे, तपस्वी शकटदास का यह वही मित्र है जिसने मेरे संकेत से पता दिए बिना वह पत्र आपके मित्र से लिखवाया था ।

राक्षस—(आकाश की ओर दृष्टि उठा कर) परमात्मन् ! तुझे धन्यवाद ! इससे बढ़कर तेरी क्या दया है कि मेरा मित्र विश्वासघाती नहीं था ।

चाणक्य—महामन्त्री जी ! चिरकाल के पश्चात् मिलने का अवसर मिला है, बातें बहुत सी हैं; परन्तु संक्षेप से कहे देता हूं ।

"भद्रभट आदि राजाओं और राज-कर्मचारियों का भागना, वह पत्र, यह सिद्धार्थक, तीनों अलंकार, आपका मित्र जीवसिद्धि, जीवन से विरक्त हुआ मनुष्य जो आज आपको वन में मिला, यह सारी बातें मैंने, नहीं नहीं, वृषल ने जो अभी आपके दर्शनार्थ आ रहा है विचारी थीं ।

राक्षस—(मन ही मन) धन्य हो विष्णुगुप्त ! तुम्हारा मस्तिष्क धन्य है ! तुमने युद्ध में मुझे जीता ही था परन्तु नीति में भी जीत लिया ।

एक सेवक—(उपस्थित होकर) महाराज श्री चन्द्र जी पधार रहे हैं ।

चन्द्रगुप्त—(चाणक्य से) गुरुजी, चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है ।

चाणक्य—चिरञ्जीव रहो ! महाराज की सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण

हुई, कुलक्रमागत महामन्त्री श्री महात्मा राक्षस उपस्थित हैं, इन्हें प्रणाम कीजिए।

चन्द्रगुप्त—(राक्षस से) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त चरणों में सिर झुकाता है।

राक्षस—(नेत्रों में आंसू भर कर) महाराज की जय हो।

चन्द्रगुप्त—जय में अब संदेह नहीं जब कि गुरुजी महाराज के मस्तिष्क के साथ भगवन की जागृति सम्मिलित हो रही है।

राक्षस—(मन ही मन) क्या कौटिल्य का शिष्य मुझे बनाता है ? नहीं नहीं, यह उदार मस्तक दूसरे को चिढ़ानेवाला नहीं है। यह शूरवीर जिसकी शूरवीरता के साखों से आज भारत गूंज रहा है, एक निर्बल मनुष्य की निर्बलता का अनुचित लाभ उठाने वाला प्रतीत नहीं होता। मेरे ही नेत्रों पर द्वेष की पट्टी बँध रही है, जो मुझे सचाई को देखने नहीं देती।

चाणक्य—क्या महामन्त्री राक्षस चन्दनदास के प्राण बचाने की इच्छा रखते हैं ?

राक्षस—इसमें संदेह क्या है ?

चाणक्य—महामन्त्री राक्षस ! जिस समय तक आप खड्ग को कोष में नहीं डालते, यह कहां हो सकता है कि वृषल शस्त्र फेंक दें। इस कारण यदि सचमुच आप चन्दनदास के प्राणों की रक्षा चाहते हैं तो खड्ग को उतार फेंकिए और (कमर से मन्त्रित्व की तलवार उतार कर) इसे स्वीकार कीजिए।

राक्षस के लिए यह सर्वथा अचानक बात थी। उसे विश्वास न होता था कि जो कुछ किया जा रहा है, सत्य है अथवा असत्य। उसने कहा :—

राक्षस—विष्णुगुप्त ! यह नहीं हो सकता, मैं इसे धारण

करने के अयोग्य हूं, विशेषकर इसलिए कि इसे आप ऐसी योग्यता से धारण कर चुके हैं।

चाणक्य—(आश्चर्य से) राक्षस इसके अयोग्य ! अरे इन हस्तियों की पीठ सामग्रियों से कैसे काली हो गई है ? इन अश्वों के मुख से लगामों के मारे फेन क्यों बह रहा है ? राक्षस के अतिरिक्त कौन इसका उत्तरदायी है ? पर नहीं मैं बात क्यों लम्बी करूं ? चन्दनदास के प्राणों का छूटना आपके इस खड्ग के ग्रहण पर निर्भर है और यह शर्त ऐसी है जिसे कभी और किसी अवस्था में भी छोड़ा नहीं जा सकता।

राक्षस—(मन ही मन) महाराज नन्द का सर्वनाश अभी मेरे नेत्रों के सन्मुख है, मेरा मन अभी उनके लिए अश्रु बहा रहा है; परन्तु क्या विवश होकर मुझे शत्रुओं का सेवक बनना पड़ेगा ? हा ! क्या जिन पौदों को मैं अपने हाथों से सींचता रहा हूं, अब मेरे ही हाथों काटे जाएंगे। परन्तु मित्र के प्राण बचाना अत्यावश्यक है, उसके लिए मुझे हृदय का रक्त भी देना पड़े तो देना होगा। (प्रकाश्य में) प्रेम की वेदी पर सारे भाव बलिदान करता हूं। राक्षस आपकी शर्त को स्वीकार करता है। (यह कहकर खड्ग को उठा लिया)।

चाणक्य—वृषल, बधाई हो, लक्ष्मी सदा के लिए चेरी बन गई।

एक कर्मचारी—(अन्दर प्रविष्ट होकर) भद्रभट आदि राजकर्मचारी महाराज मलयकेतु को पकड़ कर ले आए हैं। उनके लिए क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—(राक्षस की ओर संकेत करके) महामन्त्री जी उपस्थित हैं; इनसे पूछिए।

राक्षस—(मन ही मन) मुझे दास बनाकर कौटिल्य मेरे सिर पर उपकारों का बोझ लाद रहा है। (प्रकाश्य में) यदि

महाराज की यही इच्छा है तो मैं प्रार्थना करूंगा कि मैंने इतना समय महाराज मलयकेतु की सेवा में उनकी छाया तले सुख से व्यतीत किया है। इस लिए बड़ी कृपा होगी यदि उनके प्राण छोड़ दिए जाएं।

चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की ओर देखा।

चाणक्य—महामन्त्री जी का पहला कथन अस्वीकार नहीं होना चाहिए। (एक राज्यकर्मचारी से) जाओ, भद्रभट आदि को जाकर कह दो कि महामन्त्री राक्षस के कथन पर श्रीमहाराज ने मलयकेतु को क्षमा कर दिया और वे न केवल उन्हें स्वतन्त्रता ही प्रदान करते हैं, प्रत्युत उनके पुरखाओं का देश भी। इस कारण उसे सुख पूर्वक उसके देश में पहुंचा दो।

"जो आज्ञा" कहकर कर्मचारी विदा हुआ।

चाणक्य—ठहरो ठहरो, दुर्गपाल को भी महाराज की यह आज्ञा पहुंचा दो कि महामन्त्री राक्षस के कथन पर महाराज आज्ञा देते हैं कि चन्दनदास को "सर्वनगरश्रेष्ठि" पद दिया जावे। सेनापति को भी आज्ञा पहुंचा दो कि महामन्त्री राक्षस के महामन्त्री पद पर नियुक्त होने के हर्ष में महाराज हाथी और घोड़ों के अतिरिक्त शेष सबको स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। उनकी इच्छा है कि सम्पूर्ण बन्धुए मुक्त कर दिए जायँ, नहीं, नहीं, हाथी और घोड़ों को भी मुक्त किया जावे। अब हमें उनकी आवश्यकता नहीं। इस राज्य में यदि कोई वस्तु बँधेगी व बंधी रहेगी तो यह मेरी शिखा है, जिसे मैं आज की घटना के हर्ष में सदा के लिए बाँधता हूं। धन्यवाद है उस परमेश्वर को जिसने मेरी प्रतिज्ञा पूरी की। कहो वृषल ! तुम कहो, राक्षस ! आप कहें, अब और क्या इच्छा है।

चन्द्रगुप्त—अब इससे अधिक और क्या इच्छा हो सकती है। संसार नन्दवंश के पापों से मुक्त हो गया, महात्मा राक्षस

अब हमारे मित्र हैं, नहीं नहीं, राज्य का भार अपने सिर पर उठा रहे हैं, अब इससे अधिक मैं और क्या इच्छा रख सकता हूँ।

राक्षस—(नेत्रों में कृतज्ञता के आँसू भर कर) मेरी अब केवल यही इच्छा है कि परमात्मा महाराज के यश और कीर्ति को अधिक से अधिक करें। संसार उनके राज्यके अन्दर सुख भोगे। भारत उनके पवित्र विचारों से लाभ उठाता हुआ अपने अतीत गौरव को प्राप्त करे।

चाणक्य—परमात्मा आशीर्वाद दें।

❀ दूसरा भाग समाप्त ❀

वीर वृषल

तीसरा भाग

प्रथम परिच्छेद

प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो

"ज्यूस (Zeus) खुदावन्द! क्या मुझे इसी तरह कुढ़ कुढ़ कर मरना होगा, देवी अफ्रोदिति (Aphrodite)! क्या मुझे इसी तरह रोते रोते उम्र गुजारनी होगी, खुदावन्द हेरो (Here)! क्या मैं इस दुनियाँ से नाकाम ही जाऊंगी? खुदावन्द! कमजोरों के वली खुदावन्द! क्या मेरी पुकार खाली जायगी?...... हां हां, मुझे उम्र भर इसी जलती आग में जलना होगा। मुझे इस जहन्नुम में झुलसना होगा। मेरे लिए कोई रास्ता नहीं, कोई जरिया नहीं, इससे छुटकारा पाने के लिए कोई वसीला

नहीं, मैंने यह दुःख अपने हाथों खरीदा और इसे इसी तरह खामोशी से बर्दाश्त करना होगा। .... अपने हाथों? नहीं नहीं, मैंने इसे अपने हाथों नहीं खरीदा; मैं इसे खरीदने के लिए इण्डिया में नहीं गई थी। यह मेरी किस्मत थी, मेरा फूटा नसीबा था जो मुझे कशां कशां वहां ले गया। ......फूटा नसीबा? ......नहीं नहीं, मैं इसे फूटा नसीबा नहीं कह सकती, वह दिलकश सूरत, वह कुशादा पोशानी फूटे नसीबे वालों के लिए नहीं, उसका दीदार हर किसी के लिए नहीं। मैं फूटे नसीबेवाली नहीं, खुश किस्मत हूं। ......खुश किस्मत? वह कैसे? उनसे हजारों कोसों के फासले पर पड़ी उनकी याद में नींद हराम कर रही हूं। क्या खुश किस्मती की निशानी है? क्या खुशकिस्मती इसीको कहते हैं? आह! क्या मैं इस जन्म में उन्हें देख सकंगी? नहीं, कोई उम्मेद नहीं, कोई उम्मेद नहीं......"(कंठ रुंध गया।)

"ज्यूस खुदावन्द! दुनियां मुझे खुशकिस्मत समझती है, अब्बाजान अपने सारे मुखालिफों पर गालिब आ गए, उनके सामने सिर उठाने वाला कोई नहीं रहा, अब वह शहन्शाह हैं, अब वह लाखों इन्सानों की किस्मत के मालिक हैं और मैं उनकी बेटी, उनके खून का खून? हां मैं शहजादी हूं, बड़ी खुशनसीब बड़ी खुश किस्मत। दुनियां ऐसा ही कहती होगी, लेकिन कोई मुझसे पूछे, कोई मेरे दिल को टटोले और उसे पता लगे कि मैं कौन हूं। यह शहन्शाही मुझे कहां तक खुशी दे रही है, यह ऐश के सामान मुझे कहां तक आराम दे रहे हैं!!!

"रुक्शाना, बदकिस्मत रुक्शाना! यह किस्मत का फेर है कि दुनियाँ तुझे खुशकिस्मत समझे; लेकिन तू जो अपने आप को बेहतर समझती है; खुद को दुनियां में बदकिस्मत-तरीं इन्सान समझे!!! आह!

कस्साम ने किस्मत में तेरी लिखके फकीरी,
फर्माया कि लिबास इसका अमीराना रहेगा।

यह तू ही है कि खुले बंदों अपने दुःख का इजहार भी नहीं कर सकती। कोढ़ी, जजामी, दुखी इन्सान अपने दुख की कहानी से आस्मान सिर पर उठा लेते हैं। एक तू है जो अन्दर ही अन्दर जली जा रही है; लेकिन अपने दुःख को जबान पर नहीं ला सकती।"

"हा ! यह बादशाहत का फल, यह शाहन्शाहत की सजा है, यह ताजोतख्त का सुख है।...... हा ! कितना जी चाहता है कि इस ताजोतख्त को लात मार कर, इस बादशाहत और शाहन्शाहत को जवाब देकर इण्डिया की खाक जिस्म पर रमाऊं। उस बेनवा फकीर डंडामस की तरह जिसने सिकन्दर को खरी खरी सुनाई थीं, झरनों का ठंडा पानी पीकर, दरख्तों के फल खाकर, हरी हरी घास पर लेट रहूं, दिन निकले तो उस मोहिनी सूरत के दीदार से अपनी प्यास बुझाऊं, रात आए तो उसी की याद में सो जाऊं।"

"ओह ! यह क्या ? किस्मत ! मेरी फूटी किस्मत ! तू यह भी नहीं होने देगी......चारोनाचार, जबर्दस्ती मुझे इस बादशाहत और शाहजादी पन का कड़वा प्याला मुंह से लगाना होगा। अब चारोनाचार मुझे इस दुनियां में रयाकारी और दोरङ्गी की जिन्दगी बसर करनी होगी। ......हां, तो क्या इसका इलाज कोई नहीं ? क्या इससे किसी तरह छुटकारा नहीं ? क्यों नहीं ? एक गोली अफीम, खञ्जर का एक वार, कमान से निकला हुआ एक तीर इस जिस्म को रूह से अलग कर सकता है,........लेकिन क्या इस तरह मैं उनसे मिल सकूंगी, क्या मैं उनके दीदार कर सकूंगी ?"

"रुकशाना ! तुझे क्या हो गया ? क्यों पगली हुई जाती है ?

आदमी की जात दरअसल बेवफा हुई है, इसके लिए क्यों अपने आपको हलकान कर रही है? क्या तू समझती है कि वे तेरी खातिर बैठे होंगे, वे इन्तजार कर रहे होंगे कि रुक्शाना आए और उसे गले लगाऊ ? .. . .(हंसकर) लेकिन तू यह उम्मेद कर भी कैसे सकती है? क्या कोई जरिया है जो तू उन तक पहुँच सके ?"

"यकीनन नहीं। तो फिर तेरी खातिर वे अपने सुखको क्यों कुर्बान करें? तेरी खातिर वे क्यों दुखी हों। तो फिर... हां फिर ?......

"एक ही जरिया है, और वह यह कि तू अन्दर ही अन्दर जलती और सड़ती रहे; लेकिन दुनियां तुझे देख देखकर तेरी खुशियों पर रश्क खाए।"

"खुदाबन्द! अगर तेरी यही ख्वाहिश है, अगर तेरी यही मर्जी है, अगर तू यही चाहता है तो रुक्शाना तेरी इस ख्वाहिश की तामील से इन्कार नहीं करती। अगर इसे गीली लकड़ी की तरह ही जलना है तो जलेगी, और कोई यह न जान सकेगा कि इसे अन्दर ही अन्दर कैसा खौफनाक मर्ज खाए जा रहा है।"

"हां हां रुक्शाना, अपने आपको उस बहादुर के काबिल साबित करने के लिये, अपने आपको उस आस्मानी वजूद के कदमों की खाक के काबिल बनाने के लिये तुझे इस आग में से गुजरना होगा और गुजरना पड़ेगा। इस लिए हिम्मत करके कमर कस कर बांध ले, क्योंकि देवताओं की मर्जी यही है, तेरे खुदा की यही ख्वाहिश है, तेरी किस्मत के पासबानों की यही मर्जी है।"

द्वितीय परिच्छेद

बेटी ? क्या हिन्दुस्थान की महारानी बनोगी

रुक्शाना के नेत्रों में एक चमक दिखाई दी। उसके मुख मण्डल पर एक दृढ़ संकल्प की झलक नजर आई। अब उसका दुःख कुछ हल्का दिखाई देता था; क्योंकि उसके सम्मुख रास्ता दुःख की रात्रि की नाईं अन्धकारमय नहीं था, अपने जीवन के लिए अब उसने एक प्रोग्राम तैयार कर लिया था और इसी कारण उसे शांति सी प्रतीत हो रही थी। परन्तु यह शांति वह नहीं थी जो कामनाओं के पूर्ण होने के पश्चात् प्राप्त होती है, जो मनोवांछित पदार्थ की प्राप्ति के पश्चात् मिलती है, प्रत्युत वह जो एक दुःख और निराशा से मारे हुए मनुष्य को प्राप्त होती है। चिरकाल के संग्राम के पश्चात् वह चौपट्ट गिरी थी, इस कारण उसका मन इस समय शान्त था, यद्यपि यह कहना कठिन था कि यह दशा कब तक रहे।

वह उठी, मुह-हाथ धोया, बिखरे हुए बालों को संवारा, दर्पण में (जो उस समय तक केवल बड़े बड़े मनुष्यों को ही प्राप्त हो सका था) मुख देखा तो आश्चर्यित रह गई, क्योंकि सन्मुख जो आकार उसे दिखाई दिया वह हँसती-खेलती रुक्शाना का नहीं प्रत्युत एक ऐसी स्त्री का था जिसके मुख पर निराशा और धीरता के भाव कुछ विचित्रता के साथ अंकित हुए दिखाई देते थे।

अपने विचारों में निमग्न हुई खड़ी थी, कि दर्पण में एक और आकार दिखाई दिया। पीछे मुड़ी तो एक दासी खड़ी थी।

रुक्शाना ने एक ऐसी दृष्टि से उसकी ओर देखा जो जानना चाहती थी कि वह क्या कहती है। फिर दासी ने कहा :—

दासी—शाहंशाह-ए-अर्ज़ी व समा तशरीफ़ ला रहे हैं !

रुक्शाना—(आश्चर्य्य से) इस वक्त ?

यह कहकर वह जल्दी से दर्पण के सामने से हटी और आंख झपकते ही उसके मुखमण्डल पर एक असाधारण परिवर्तन आ गया। एक क्षण पहले जिसने उसे दर्पण के सन्मुख देखा था और इससे भी एक क्षण पहले जिसने उसे अपने मन से बातें करते निहारा था, अब उसके लिए उसे पहचानना कठिन था, क्योंकि मुख की पीतता के अतिरिक्त शेष चिह्न जो अभी अभी दिखाई दे रहे थे, छिन्न-भिन्न हो चुके थे।

अपने कमरे से बाहर निकलकर उस स्थान पर पहुँची जहां शाहंशाह विराजमान थे। दोनों पिता-पुत्री आमने-सामने हुए और कुछ साधारण सी बात चीत के पश्चात् शाहंशाह ने कहा :—

शाहंशाह—रुक्शाना ! आज हमने दर्बार जल्द बर्खास्त कर दिया है। तुझे पता लगा, क्यों ?

रुक्शाना अधीर नेत्रों से पिता के मुख की ओर निहारने लगी।

शाहंशाह—लश्कर तैयार हो रहा है, अब चन्द दिनों में ही नक्काराए जङ्ग पर चोट पड़ेगी और हवा से बातें करने वाले घोड़े दुश्मनों के सीनों पर कदम रखते हुए फ़तहयाबी हासिल करेंगे।

रुक्शाना—अब्बाजान ! दुश्मन सबके सब तबाह व ख्वार हो चुके, अब किस तरफ की तस्वीर बाकी है ?

शाहंशाह—रुक्शाना ! क्या तुम्हें पता नहीं ! इण्डिया में हमारे तमाम मकबूजात हाथ से निकल चुके हैं। हम इस वक्त बफजले एजद अपने मशहूरे-आलम पेशरु के तमाम एशियाई मकबूजात के मालिक हैं। मगर जब तक इण्डिया यूनानी सल्तनत

में शामिल नहीं होता, सैल्यूकस के लिए नकाटोर* का नाम हासिल करना नामुम्किन है।

"इण्डिया" "इण्डिया" न जाने इस शब्द के अन्दर क्या जादू था कि रुक्शाना का हृदय व्याकुल होकर फड़कने लगा। वह रुक्शाना जो अभी अभी निराशा की मूर्ति बन रही थी, और की और देख पड़ने लगी। मुखपर जो पीला पड़ रहा था, लाल लाल फुटकियाँ प्रकट होने लगीं।

कंपित हृदय से उसने कहा :—

रुक्शाना—किस शख्स को यह जुरअत हुई कि हमारे इण्डियन मकबूजात पर कब्जा करे।

सैल्यूकस—उस गासिब का नाम संड्राकोटस (Sandracotus) बताया गया है। "सड्राकोटस" यह विचित्र सा नाम सुनकर रुक्शाना का धड़कता हुआ हृदय स्थिर हो गया। वह मुख जिस पर अभी अभी हल्की सी गुलाबी रङ्गत प्रकट हुई थी; फिर से पीला पड़ गया। कदाचित् उत्तर उसकी इच्छा के अनुकूल नहीं था।

सैल्यूकस—यह शख्स पाली बोथरा (Poly Bothra) के तख्त पर है और हमारी अदम तवज्जही का फायदा उठाकर उसने हमारे मकबूजात-इ-हिन्दी पर अपना तसल्लत जमा लिया है, मगर शायद उसे याद नहीं कि उसे उसके ऐमाल की सजा देने वाला हाथ अभी तक मौजूद है। वह शख्स जो सिकन्दर के तमाम बड़े बड़े अफसरान का मुकाबिला करके इनकी मुतफिका ताकत को शिकस्त दे सकता है, वह कुदरत भी रखता है कि इस जैसे कई राजाओं के तख्तोताज को मिट्टी में मिलाकर अपने पेशरु के तस्खीर हिन्द के अजम को पूरा करे। बेटी रुक्शाना ! दुनियां

*नकाटोर—दिग्विजयी।

देखेगी और बहुत जल्द देखेगी कि सैल्यूकस नकाटोर सिकन्दर आजम के इरादों को पूरा ही नहीं कर रहा; बल्कि उसके तस्वीर आलम के ख्वाब को अमली शक्ल भी दे रहा है। इस वक्त एशिया को उसके कदमों में डालने में सिर्फ इण्डिया की फतह की कसर है और जिस दिन यह हो गई, मेरी प्यारी बेटी रुक्शाना, हिन्दुस्थान की महारानी बनकर दुनियां में अपने बाप के नाम को रौशन करनेवाली साबित होगी। (प्रेमभरी दृष्टि से पुत्री की ओर निहारकर) क्यों रुक्शाना? क्या वहशी हिन्दुस्तानियों की महारानी बनने में तुम्हें कोई आर तो नहीं?

"हिन्दुस्तान की महारानी" इस शब्द को सुनकर रुक्शाना के हृदय ने एक बड़ी सी छलांग मारी, परन्तु मन के भाव को मन ही में छिपा कर उसने कहा:—

रुक्शाना—मैं दुनियां की महारानी बनने की निस्बत अपने प्यारे अब्बा की खिदमतगुजार बांदी बनने में ज्यादा फख्र समझती हूं।

सैल्यूकस ने गौरवभरी दृष्टि से पुत्री की ओर देखा, पुत्री ने उत्तर में सिर झुका दिया। कुछ समय तक यही अवस्था रही फिर यह कहता हुआ कि "जङ्ग की तैयारियों में हमें बहुत सा इन्तजाम करना होगा" सैल्यूकस बाहर निकल गया।

तीसरा परिच्छेद

इण्डिया मेरे खुदाओं का घर है

"खुदावन्द ज्यूस ! यह क्या है ? क्या मेरी किस्मत मेरे साथ मखौल कर रही है ? क्या यह ख्वाब है ? हाय मेरी बांई आंख क्यों फ़ड़फ़ड़ा रही है, क्या सचमुच मुझे इण्डिया में फिर जाने का मौका नसीब होगा ? ओह ! यह किस्मत कहां ?...... इण्डिया ! इण्डिया ! तेरी मुकद्दस जमीन को......हां उस जमीन को, जिस पर मेरा प्यारा सैर करता है, जिसे मेरे प्यारे के कदमों को छूने का फख्र हासिल है,......क्या देखने का मौका मुझे दिया जायगा या यह मेरे चराग-इ-खुशनसीबी की आखिरी टिमटिमाहट है ?......लेकिन यह क्या ?......इतनी सी खबर से मेरे दिल में खुशी की तरङ्गें क्यों लहराने लग गई हैं ? ......अब्बा जान एक दुश्मन की हैसियत से उस मुकद्दस सरज़मीन पर हमला आवर होंगे, लेकिन क्या मैं उनके इस तबाह-कुन काम में हिस्सा ले सकती हूँ ? क्या मैं इण्डिया के साथ दुश्मनी कर सकती हूँ ?···हरगिज नहीं,......मुतलिक नहीं... इण्डिया मेरी उम्मीदों का आमाजगाह है......इण्डिया वह देवी है जिसकी गोद में मेरा प्यारा खेलता है......इण्डिया की खाक वह मुकद्दस खाक है जिससे मेरे प्यारे का जिस्म बना है......तो फिर क्या मैं इण्डिया से दुश्मनी करूंगी ? नहीं यह नहीं हो सकता, ऐसा होना मुम्किनात में से नहीं.. ...तो फिर ?......मैं किस हैसियत से उस मुल्क में जाऊँगी ?...... क्या मैं इस मुहिम के

साथ जाने का ख्याल छोड़ दूं ? क्या मैं हमलाऽवर फौज के साथ न जाऊँ ?......नहीं, यह भी नामुमकिन है, यह नहीं हो सकता।......यही तो एक तरीका है जिससे मैं अगर उस प्यारी प्यारी सूरत के नहीं, तो उस सूरत को पैदा करने वाली सरजमीन के, दीदार करके अपने जलते हुए दिल को ठंडा कर सकती हूं... ...आह ! टैक्सला की वह पहाड़ियां, वह सरजमीन,...... वह बांका शब्देज,......वह प्यारी २ सूरत,......वह मर्दाना चेहरा,......वह पुर अज तहब्बर जिस्म......ऐक्सेनीज का वह लहराता हुआ पानी,......वह पुर जोश गूंजती हुई आवाज,... सांगल की वह पहाड़ियाँ,......वह जोशीले अलफाज !"......

पिता ! "इण्डिया" का नाम लेते ही यह सब कुछ मेरी निगाहों के सामने क्यों फिर रहा है ? यह सारी बातें याद आ आकर मुझे क्यों सदमा पहुंचा रही हैं ?......इतने साल हो गये मगर एक एक लफ्ज, एक एक वाक्य, मेरे लिए वैसा ही ताजा है......क्या इण्डिया की सरजमीन को देख कर यह सब के सब वाकयात दुगनी ताकत से मेरे सामने नहीं आ जाएंगे ? क्या उस मुकद्दस मुल्क को देखकर मेरी रूह को और सदमा नहीं होगा ?......तो फिर क्या इस नई मुसीबत को खरीदने के लिए, पुराने जख्म को फिर से चर्का देने के लिए, मुझे मुहिम के साथ जाना चाहिए ? (मुस्कुराकर) लेकिन जख्म भरा ही कब था ? इस पर अंगूर ही कब आया था ?......क्या यह मुमकिन नहीं, कि इस पर फाया रखने का सामान ही पैदा हो जाय ?......हां, हाँ, इण्डिया में योगी बहुत रहते हैं, कालानूस (Calanus) और डंडामस (Dandamus) के भाई बन्धु उस सरजमीन में बहुत से हैं जो खुफिया इसरार के माहर हैं......क्या मुझे वह मेरे प्यारे का पता न बता सकेंगे ? क्या उनमें से कोई मेरे दिल की लगी को बुझाने का सामान करने वाला न मिलेगा ? हां हां,......चलूंगी

और जरूर चलूंगी......इण्डिया मेरे लिए मुकद्दस मुकाम है...
...इण्डिया मेरे खुदाओं का घर है। मैं वहां जाऊँगी और जरूर जाऊँगी......वर्ना अब्बाजान के चले जाने के बाद......लश्कर के कूच के पीछे...मेरी जिन्दगी नाकाबिले बर्दाश्त हो जायगी...
...और नहीं तो फौज कशी के जोशोखरोश में ही इस जलते हुए दिल को कुछ तशफ्फी नसीब होगी......हां हां......मैं अकेली यहां नहीं रह सकती......फौज में मेरी मौजूदगी जख्मियों के लिए बाइसे आराम होगी। वहां न जाकर यहां रहना मेरे लिए दूभर हो जायगा।"

रुक्शाना अपने विचार में इतनी मग्न हो रही थी कि उसे यह भी ज्ञान न था कि कमरे में कौन है। अपने विचार को दृढ़ करके उसने एक अङ्गड़ाई ली, गोरी गोरी सुन्दर और कोमल कलाइयां वायु में ऊँची हुईं। विचारों ने पल्टा खाया, तो सहसा उसे जान पड़ा कि वह अकेली नहीं है, इसलिए पीछे मुड़ी तो एकाएक उसके मुख से निकला "पेट्रोक्लीस।"

चौथा परिच्छेद।

जंगल का फूल

कितने फूल हैं जो जंगल में उत्पन्न होते हैं, उस स्थान की वायु को शुद्ध करते हैं, वहीं कुम्हलाते हैं और उसी स्थान पर गिर कर मिट्टी का एक अंश बन जाते हैं। कोई मनुष्य उनकी सुगन्धि तक नहीं पाता, और कदाचित् किसी जंगली जन्तु को भी उन तक पहुंचने का अवसर प्राप्त नहीं होता। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी वह संसार में भेजे जाते हैं। क्या केवल इसी लिए कि खिलें, अपने आप खिलें और फिर कुम्हला जायें ?

कितने फूल हैं; सुहावने फूल हैं जो एक विशेष उद्देश्य को लेकर संसार में आते हैं, परन्तु इससे पूर्व कि इस उद्देश्य की पूर्ति के साधन प्राप्त हों, तोड़ने वाले के निर्दयी हाथ का शिकार होकर इस लोक से मिट जाते हैं !

कितने मनुष्य जो संसार में उत्पन्न होते हैं, एक विशेष श्रेणी के अन्दर चमकते हैं, तरुण होते हैं, बुढ़ापे का शिकार बन जाते हैं और फिर इस लोक से चल देते हैं। लोग कहते हैं, हां सरल दृष्टि रखने वाले लोग कहते हैं, कि उनका जीवन अकारथ और व्यर्थ था और प्रकट में लोग इस बात पर विश्वास कर लेते हैं।

परन्तु यदि कोई मनुष्य इस जंगली फूल के हृदय के अन्दर प्रवेश करके (Cor crete) में (Abstract) को देख सके, यदि कोई मनुष्य शरीर के अन्दर प्रवेष करके आत्मा की जिज्ञासा और

विवेचना की शक्ति रखता हो, तो उसे पता लगे कि इस संसार में जन्म लेने वाला कोई जगली फूल व्यर्थ जीवन लेकर नहीं आया।

पेट्रोक्लीस इसी भांति का जङ्गली फूल था, जिसके जीवन के उद्देश्य को साधारण जगत् नहीं जानता था।

वह सिपाही था, फिलासफर था और साथ ही विद्वान भी था। उसकी रचना आज तक इस संसार के सम्बन्ध में लोगों के ज्ञान को बढ़ाती है। परन्तु कौन जानता है कि इसकी आंखों के सामने उद्देश्य क्या था?

रुक्शाना के प्रश्न के उत्तर में उसके मुख से निकला:—

पेट्रोक्लीस—हां, शाहज़ादी; गुलाम कदमबोसी के लिए हाज़िर हुआ है।

रुक्शाना—इस वक्त ?

पेट्रोक्लीस—लश्कर बहुत जल्द कूंच किया चाहता है, इस लिए आख़ीरी क़दमबोसी के लिए हाज़िर हुआ हूं। कौन जाने इस जिन्दगी में फिर यह मौक़ा मिले या न......

यह शब्द कहते हुए उसका स्वर भर्रा रहा था, कण्ठ रुंध गया था।

रुक्शाना—सिपाही और इस क़िस्म की मायूसाना गुफ्तगू!

पेट्रोक्लीस—मायूसी नहीं, लेकिन जग आख़िर जंग है। कौन जानता है, नतीजा क्या होगा, सारा जहान कहता है, जग दो सिर रखता है।

रुक्शाना—मगर मैं भी तो साथ जा रही हूं ?

पेट्रोक्लीस—आप ? शाहज़ादी आप क्या कह रही हैं ?

रुक्शाना—अमर वाकया।

पेट्रोक्लीस—आपको फ़ौज के साथ जाने की क्या ज़रूरत आ पड़ी, जब हम अपना ख़ून बहाने को तय्यार हैं।

रुक्शाना—पेट्रोक्लीस ! क्या तुम यह समझते हो कि औरत दुनियां में महज खिलौना ही बनाई गई है, खालिक ने इसे सिर्फ इस लिए ही ख़ल्क किया है ताकि मर्द इसे देखा ही करें और वह आईने के चेहरे की तरह कोई काम न करे। यकीनन अगर तुम्हारा यही ख़याल है, तो तुम ग़लती पर हो। मैं उम्मीद नहीं करती थी कि तुम्हारे जैसा आलिम शख़्स भी यह ख़याल रखता होगा।

पेट्रोक्लीस—माफ़ करना शाहज़ादी ! मेरा यह मतलब नहीं था। मैं औरत को मर्द की पैदा कुनिन्दा समझता हूं। इसलिए यक़ीन रखता हूं कि जो शख़्स औरतों की निस्बत अदना खयालात रखता है, कभी भी मर्दों की निस्बत अच्छे खयालात नहीं रख सकता। मेरा मतलब सिर्फ यह था कि एक मामूली सी मुहिम की ख़ातिर, जैसी कि मौजूदा ताजीरी मुहिम है, आपके लिए अपने आपको तकलीफ में डालना मुनासिब नहीं।

रुक्शाना—मगर शायद तुम्हारी निस्बत मुझे हिन्दुस्थानियों का ज़्यादा इल्म है। इसलिए इस मुहिम को मैं न तो मामूली कहती हूं, ना ताज़ीरी ही ख़याल करती हूं। तुमने गालबन वह हालात पढ़े हैं जो शाहंशाह सिकन्दर की मुहिम के मुतल्लिक लिखे गये हैं। इनमें वाक़यात को बहुत कुछ बढ़ा-चढ़ा कर दिखलाया गया है, और यह उन्हीं का असर है कि तुम हिन्दुस्थानियों के मुतल्लिक ऐसी हल्की राय रखते हो। मगर तजरबा सबसे बड़ा उस्ताद है और वह बहुत जल्द तुम्हें बता देगा कि यह मुहिम ताजीरी साबित होती है या तादीबी...। अब तो गालबन आखरी रुखसत की ज़रूरत नहीं रही। लो सलाम...

बातों ही बातों में शाहज़ादी ने एकाएक वार्त्तालाप के रुख को बदल कर अन्तिम शब्द इस ढंग से कहे कि पेट्रोक्लीस को इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न रहा; कि चुपचाप महल से बाहर चला जाए।

पांचवां परिच्छेद

विचार तरङ्ग

"खुदावन्द ! क्यों दुनियां मुझे तङ्ग कर रही है ? मैंने दुनियां का क्या बिगाड़ा है ? मैंने किसी को दुख नहीं दिया, तकलीफ़ नहीं दी; फिर भी मुझे तंग किया जाता है......लेकिन हाय ! मैं किसी को क्यों इलज़ाम देती हूं ? किसी को क्या मालूम, कि उसकी बातों से मेरे दिल पर क्या गुज़रती है । आह कौन जानता है मैं किस दुख का शिकार हो रही हूं । मैं दुनियां के सामने अपनी जिंदगी का जो पहलू रखती हूं, उससे सिवा इसके और क्या हो सकता है कि दुनियां मुझे एक हंसती-खेलती चिड़िया समझे, मुझे एक खुशो-खुर्रम हस्ती यक़ीन करे । लेकिन आह ! समुन्दर की तह और आस्मान की फिजा की खबरें ले आने वाले इन्सान मेरे दिल को कहां और किस तरह समझ सकते हैं ?"

मैं जानती हूं, मैं महसूस करती हूं कि पेट्रोक्लीस का इस आख़ीरी मुलाकात से क्या मतलब था; फिर भी मैंने उससे इस क़िस्म का सलूक किया जो एक इन्सान दूसरे इन्सान से करता हुआ शर्मिन्दा हो । लेकिन मेरे लिए उसके सिवा और क्या चारा है ? क्या मैं इससे बेहतर सलूक करके उसे इस ग़लतफ़हमी में डालूं कि मुझे उससे मुहब्बत है ? नहीं हरगिज नहीं । मैं दुनियाँ में संगदिल हैवान कहलाना पसन्द करूंगी, बेरहम बनना बेहतर समझूंगी, बनिस्बत इसके कि इस ग़लतफ़हमी में एक और जिन्दगी को तबाह करूं ।

पेट्रोक्लीस बहादुर है, दिलेर है, जरी है, आलिम है, फ़ाजिल है, फ़िलास्फर है, मैं उसकी इज्जत करती हूं और शायद उसके साथ ऐसी मुहब्बत भी कर सकती हूं, जैसी बहन एक भाई से कर सकती है। लेकिन मैं महसूस करती हूं कि वह इस क़िस्म की मुहब्बत पर खुश नहीं होगा, और इसके अलावा दूसरी कोई मुहब्बत मैं उसे दे भी नहीं सकती। इस सूरत में इससे बढ़कर और कुछ नहीं हो सकता कि मैं इससे वही सलूक करूं जो कर रही हूं। मेरे दिल को इससे सदमा पहुंचता है; मेरी रूह को दुख मिलता है; लेकिन मिला करे, कुछ पर्वाह नहीं। एक क़ीमती जिन्दगी बर्बाद करने की निस्बत यह हज़ार दर्जा बेहतर है।"

यह शब्द थे जो पेट्रोक्लीस के बाहर निकल जाने के कुछ समय बाद रुक्शाना के मुख से निकले। इस समय उसके दोनों हाथ उसके सुन्दर मुख को ढांप रहे थे, वह शय्या पर औंधे मुंह पड़ी थी, सुनील नयनयुगल अश्रु परिप्लुत हो रहे थे और हृदय अनियंत्रित हुआ जाता था। आह! इतने बड़े प्रभुत्व में, जिसकी प्राप्ति के लिए सैल्यूकस ने लाखों मनुष्यों के रक्त बहा दिये, एक मनुष्य भी ऐसा न था जो इस शक्तिशाली बादशाह की नवयुवती कन्या को धैर्य बन्धा सकता।

कुछ समय इसी अवस्था में व्यतीत हो गया। हृदय का उबाल जो पेट्रोक्लीस की बातों से प्रबलता की पराकाष्ठा तक पहुंच गया था, कुछ हल्का हुआ। रुक्शाना शय्या से उठी, मुंह-हाथ धोया, बाल संवारे और दर्पण के सन्मुख खड़ी हो गई। इस समय उसके नेत्रों में लाल लाल डोरे थे, मुख पर कुछ लाली छा रही थी। आज यह दूसरी बार था, कि उसको अपनी अवस्था के संभालने के लिए दर्पण की आवश्यकता प्रतीत हुई। परन्तु न जाने दर्पण के अन्दर क्या चमत्कार भरा था कि ज्यों ही उसने

अपने चेहरे पर दृष्टि डाली, विचारों का ज्वार फिर उठता दिखाई दिया और उसने अनुभव किया कि यदि यही अवस्था रही तो वह थोड़े ही दिनों में बावली हो जायगी। इस लिए दर्पण को वहीं छोड़कर जल्दी से सीढ़ियों पर चढ़ती हुई महल के शिखर पर खुली वायु में चली गई।

छठा परिच्छेद

पेट्रोक्लीस के विचार

पेट्रोक्लीस रुक्शाना के महल से बाहर निकला, तो वह पेट्रोक्लीस नहीं था जो अभी अभी रुक्शाना के महल में गया था, न ही वह फिलास्फर पेट्रोक्लीस था जो प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घटना को तर्क की दृष्टि से देखा करता था। नहीं नहीं, इस समय वह एक बिल्कुल बदला हुआ मनुष्य था। चोट खाये सर्प की भांति वह इस समय अन्दर ही अन्दर दांत पीस रहा था। आह! किन उमंगों, किन कामनाओं और किन तरङ्गों को मन में लिए हुए वह शाहज़ादी के महल में गया था, परन्तु इस समय वह उमङ्गें और वह तरङ्गें कहां थीं? क्या वह कागज की नाव के समान रुक्शाना के वाक्य-सागर में जर्जरित नहीं हो गई थीं? क्या वह पद-दलित पुष्प की भांति मसल नहीं डाली गई थीं?

वह इस समय एक युद्ध पर जा रहा था, हां उस युद्ध पर जा रहा था जिसमें सहस्रों भय और सङ्कट थे, जिसमें पग पग पर जीवन सङ्कट में था। उस युद्ध में जाने के पूर्व वह शाहज़ादी के मुख से कुछ शब्द सुनने को लालायित था जिन्हें वह मंत्र के रूप में इस युद्ध के अन्दर प्रयोग करना चाहता था। क्या वह शब्द उसे प्राप्त हुए? निस्सन्देह वह शाहज़ादी के साथ बातचीत करने में सफल हुआ था और इसमें भी संदेह नहीं कि वह शाहज़ादी के सुन्दर मुख का दर्शन भी कर आया था; परन्तु

क्या यह बातचीत और भेंट उसी भांति की थी, जैसी वह चाहता था ?

शाहजादी ने उसे कोई शब्द ऐसा नहीं कहा था जिसे वह "कठोर" कह सके। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी इसका अन्तःकरण अपने विचारों के विषय में उसकी बातों को विद्युपात समझता था। इस समय उसको ऐसा प्रतीत होता था कि शाहजादी उसके लिये नहीं। तो क्या कोई और मनुष्य है जो उसके मार्ग में कंटक बन रहा है ? पेट्रोक्लीस सोचता था, परन्तु इस प्रश्न का कोई भी उत्तर उसे नहीं सूझता था। उसकी दृष्टि जहां तक जाती थी उसे एक भी मनुष्य ऐसा दिखाई न देता था जिसे शाहजादी का प्रीतम कहा जा सके।

तो फिर...हाँ फिर···क्या उसकी अचल प्रकृति उसके लिए रास्ता नहीं बनाएगी व नहीं बना सकेगी ? हां हां, वह कौन सा काम है जो उद्योग के सामने असंभव है ? वह कौन सी बात है जिसे एक उद्योगशील मनुष्य पूरा नहीं कर सकता ? पेट्रोक्लीस ! तेरे लिए तो बहुत से अवसर हैं। तू एक युद्ध पर जा रहा है, वह युद्ध, जिसमें तेरे कौशल दिखाने के सहस्रों अवसर होंगे। शाहजादी तेरे साथ है, वह तेरे वीर कर्म अपने नेत्रों से देखेगी। क्या फिर भी यह असंभव है कि तू उसके हृदय को जीत न सके ?

हां हां, साहस कर, निराशा को छोड़, और कठिनाइयों के पर्वत को तोड़ कर खण्ड खण्ड कर दे, अपने नाम को अविनाशी बनाने का यत्न कर, ताकि अपने उद्देश्य में असफल रहने पर भी जब तक यह संसार है लोग तेरा नाम आदर से लेते रहें।

यह विचार थे, जो इस समय उस नवयुवक के हृदय में फिर रहे थे। वह घोर निराशा के साथ शहजादी के महल से निकला था, परन्तु उसका फिलास्फर मस्तिष्क उसे शनैः शनैः निराशा की कोठरी से आशा के प्रकाशमय क्षेत्र में ले आया था, जहां

पहुंचकर उसके सम्मुख इच्छानुसार चक्कर लगाने के लिए काम की विस्तृत श्यामल भूमि पड़ी थी।

इस समय उसे प्रतीत होता था कि उसके भाग्य की अधिष्ठात्री देवी रुक्शाना का रूप धारण करके उसे काम के लिए, रणक्षेत्र में आगे बढ़ कर कीर्ति प्राप्त करने को कह रही थी, और वह बिना कुछ सोचे इस आज्ञा के पालन के लिए आगे बढ़ने को तैयार हो गया।

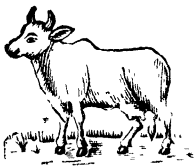

सातवां परिच्छेद

गुरुजी का उपदेश

रात्रि व्यतीत हो गई, अब दिन निकलने को है। महाराज वृषल को शय्या का त्याग किये एक घण्टे से अधिक समय बीत गया। इस समय वह एकाग्रचित्त होकर गुरुजी के उपदेश को श्रवण कर रहे हैं। आओ, हम भी तो सुनें, गुरुजी क्या कह रहे हैं।

"राजन्! पठन पाठन और अन्य कार्य्यों में सफलता प्राप्त करना एक मात्र इन्द्रिय निग्रह पर ही निर्भर है, जिसके लिए यह अत्यावश्यक है कि मनुष्य लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध, मद, मान और हर्ष को त्याग दे।

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका द्वारा शब्द, स्पर्श रूप, रस और गंध में विरक्ति अर्थात् त्याग ही इन्द्रियनिग्रह है। शास्त्रीय आज्ञा-पालन का अर्थ भी यही है, क्योंकि समग्र शास्त्रों का सार इन्द्रिय संयम है।

वह पुरुष जिसकी इन्द्रियां उसके वश में नहीं, जो इन्द्रियों का दास है, वह चक्रवर्त्ती राजा ही क्यों न हो, नष्ट हो जाएगा, जैसा कि इतिहास बतलाता है कि भोज डाण्डक्य एक ब्राह्मण कुमारी पर कुदृष्टि डालने से राज-पाट, धन और बन्धुओं सहित नष्ट हो गया।

यही दशा कराल वैदेह की हुई। जन्मेजय ने ब्राह्मण के विरुद्ध क्रोधवश विनाश का आवाहन किया, और तालजंघा ने

भृगुवंश के विपरीत, इला अजबिन्दु ने लोभ के वश होकर ब्राह्मणों से कर लेने का यत्न किया और परिणाम यह हुआ कि इला और अजबिन्दु समूल नष्ट हो गए।

अभिमान के हाथों में फंसा हुआ रावण पराई स्त्री को वापिस करने को उद्यत न था, इसी भयंकर शत्रु के हाथों में पड़ा हुआ दुर्योधन अपने राज्य का एक गांव भी पाण्डवों को नहीं देना चाहता था और संसार जानता है कि इसका परिणाम क्या हुआ। मदान्ध होकर दम्बोधव और अर्जुन हैहय सारे संसार से घृणा करते थे, परन्तु उनके परिणाम को देखकर जगत् कानों पर हाथ धरता है।

हर्ष के प्रभाव में आकर वातापी ने अगस्ति पर और वृष्णी ने द्वैपायन पर आक्रमण किया।

यह और अन्य अनेक भूपति इन शत्रुओं के दास बनकर इन्द्रियनिग्रह न करते हुए अन्त में राज-पाट और धन-बन्धु सहित नष्ट हो गए। परन्तु ! इन शत्रुओं और अम्बरीष जामदग्न्य पर विजय पाकर अम्बरीष नाभाग ने चिरकाल पर्यन्त पृथ्वी पर राज्य किया।

इसलिए राजन् ! इन छः शत्रुओं का नाश कर दो, इन्द्रियों को वशमें करो। महात्माओं और वृद्ध जनों की सेवा में तत्पर रहो, गुप्तचरों की बातों को सावधानी से सुनो और सदा जागृत रहते तथा प्रजा को प्रसन्न रखते हुए उसे अपने धर्म में लगाने का हेतु बनो। शास्त्रों का स्वाध्याय नियमपूर्वक करते रहो और प्रजा को धन धान्य से प्रसन्न करके उसके हृदय में स्थान बनाओ।

"वह नराधिपति जो इन्द्रियदमन करता है, प्रजा की स्त्रियों को कन्या की दृष्टि से देखता है, दूसरों के धन का लोभ नहीं करता, स्वप्न में भी काम के वश में नहीं आता, असत्य, मद और पाप से दूर रहता हुआ अधर्म नहीं करता, धर्म-कार्य्यों में

प्रवृत्त रहता हुआ सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करता है, दुःख उसे मुंह नहीं दिखाता। इस प्रकार वह धर्म, अर्थ काम को प्राप्त कर लेता है, जो एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और जिन में से एक भी जब कभी मर्य्यादा से बढ़ जाता है, तो केवल अपने लिए ही नहीं, वरन् दूसरों के अर्थ भी हानिकारक होता है।

वृषल—परन्तु, महाराज ! अकेला राजा क्या कर सकता है ? राज्य का वास्तविक भार तो मन्त्रि-मण्डल पर है, उसकी सहायता के बिना राज्य एक चक्र के रथ के समान है, इसलिये क्या आप मुझे यह बताने की कृपा करेंगे कि अमात्य (मन्त्री) कैसा होना चाहिए। जहां तक मैंने दण्ड नीति और राज्य नीति का अध्ययन किया है, इसमें आचार्य्यों की सम्मति एक नहीं है।

गुरुजी—राजन् ! सत्य कहते हो, गुरु-आचार्य्य और अमात्य तथा राज्याधिकारी राजा को अपनी सम्मति देकर अनेक प्रकार के भय से उसकी रक्षा करते हैं। छायानालिका (धूप घड़ी) से समय का पता लेते हुए वह इसे व्यर्थ खोने नहीं देते, इस कारण बुद्धिमान राजा सदा उनका आदर करता है और उनके चुनाव में बहुत बुद्धि खर्च करता है।

राजन् ! तुमने यह भी सत्य कहा कि आचार्य्यों का "अमात्य कैसे हों", इस विषय में मतभेद है। भारद्वाज का कथन है, कि राजा को चाहिए कि अपने सहपाठियों को राज्य के अधिकार प्रदान करे, क्योंकि उनके गुण दोषों का उसे स्वयं ज्ञान होता है इसलिए वह उन पर विश्वास कर सकता है।

परन्तु विशालाक्ष जी महाराज कहते हैं, "नहीं सहपाठी राजा के साथ खेल चुके हैं, इस कारण उनके हृदय में उसके लिए वह आदर नहीं हो सकता, जो होना चाहिए, और संभव है कि उन में से कई एक उससे द्वेष भी करते हों, इस कारण उसे ऐसे पुरुषों को विश्वास के स्थानों पर लगाना चाहिए जिनके भेदों को

वह जानता हो और जो उसके भेदों को जानते हों। ऐसा होने से उन्हें यह भय रहेगा कि कहीं उनके भेद प्रगट न हो जाएं, इस कारण वह उसे हानि नहीं पहुंचा सकते।"

परन्तु इस पर आक्षेप करते हुए पराशरजी महाराज कहते हैं कि ऐसी अवस्था में उभय पक्ष में भय बना रहेगा। जब राजा के भेदों का उन्हें पता होगा तो राजा को भी उनकी अच्छी बुरी सारी बातें माननी पड़ेगी। जितने अधिक मनुष्यों को राजा अपने भेद बतलाता है वह उतने ही अधिकारियों को अपने ऊपर अधिकार दे रहा है। इस कारण केवल ऐसे पुरुषों को अधिकार देना उचित है जिनकी भक्ति की आपत्तिकाल में परीक्षा कर लें।

परन्तु पिशुन महाराज कहते हैं कि "यह भक्ति है, बुद्धिगुण नहीं। अमात्य उन्हें नियत करना चाहिए जिन्हें जब धन-कार्य पर नियुक्त किया जावे तो पहले से यदि अधिक नहीं तो समान तो आय दिखला सकें।"

कौनपदन्त महाराज का कथन है "नहीं ऐसे पुरुषों में और कोई गुण नहीं होता, अमात्यपद केवल ऐसे पुरुषों को सौंपना चाहिए जिनके पिता और पितामह भी अमात्य रह चुके हों, ऐसे पुरुषों को सब बातों का ज्ञान होगा, राजाके साथ पुराना संबन्ध होगा, इस कारण यदि वह क्रुद्ध भी हो जाय तो भी वे उसका त्याग नहीं कर सकेंगे। पशुओं में भी यह बात देखी जाती है, गौएं भी नई गौओं के साथ मिलने के स्थान परिचित गौओं के अन्दर रहना चाहती हैं।

परन्तु बातव्याधि जी इससे सहमत नहीं और कहते हैं कि "ऐसे लोग राजा को अपने वश में करके स्वयं सारे कार्य अपने हाथ में ले लेते हैं। इस कारण अमात्य केवल ऐसे नवीन पुरुषों को बनाना चाहिए जो शास्त्र और नीति में निपुण हों। नवीन

मनुष्य ही राजा को वास्तविक दण्डधर मानते हैं और उसे क्रोधित करने का कारण नहीं बनते।"

लेकिन वाहुदन्ती पुत्र कहता है कि "नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए। जिस पुरुषने केवल ग्रन्थों में ही विद्या को पढ़ा है और जिसने कार्य रूप में नीति का अनुभव नहीं किया जिस समय उसे कोई कार्य सौंप दिया गया तो पग-पग पर भूल करेगा। इसलिए ऐसे पुरुष को अमात्यपद का भार सौंपना चाहिए जो राज्यकुल में उत्पन्न हुए हों, बुद्धिमान हों, शूरवीर हों और राजभक्त हों, जिनका हृदय शुद्ध हो, अमात्यपद केवल गुणों पर मिलना चाहिए।"

यही मत राजन! कौटिल्य का है। किसी मनुष्य की विद्या की परीक्षा वास्तव में उसके कार्य द्वारा ही हो सकती है। इस कारण अमात्य के चुनाव में इन सारी बातों का ध्यान रखो।

राजन्! मैं देखता हूं, तुम्हारे हृदय में इस समय अनेक शंकाएं उत्पन्न हो रही हैं, तुम पूछना चाहते हो कि अमात्य व मन्त्री की परीक्षा किस प्रकार होनी चाहिए, इत्यादि। परन्तु बाहर से बाजों का शब्द बतला रहा है कि पठन-पाठन और सन्ध्योपासन का समय हो चुका। इस कारण तुम्हारे नित्यनियम में बाधक न होता हुआ मैं इन प्रश्नों के उत्तर किसी अन्य समय के लिये उठा रखता हूँ। जाओ देश-रक्षक, सेनापति और प्रधान मन्त्री तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनसे वार्तालाप करो, प्रभु आशीर्वाद दे कि तुम महापुरुषों के जीवन को सन्मुख रखते हुए देश और जाति को उच्च से उच्च दशा में पहुंचाने का हेतु बनो!

आठवाँ परिच्छेद

मंत्रिपरिषद्के विचार

महाराज वृषल महल से बाहर निकले तो सूचना मिली कि मंत्रिपरिषद् के अधिवेशन का समय आ पहुँचा। वे सभा भवन में विराजमान हुए। पहले महामन्त्री राक्षस को प्रणाम किया, फिर अन्य मन्त्रियों के नमस्कार का मुस्कुराते हुए उत्तर दिया और सिंहासन पर विराजमान हुए। गुरुजी के लिए सम्मुख आसन सजाया गया था, आजकी परिषद्में सभाभवन खचाखच भर रहा था, कदाचित् कोई ही मंत्री व अधिकारी होगा जो अनुपस्थित हो। पंजाब के प्रतिनिधि काठी वीरोंके नेता, मालव क्षुद्रक जातियोंके नायक, कौलूत गांधार सौभीतके शासक, कौशलाधीष और नये विजित प्रदेश सौराष्ट्र (गुजरात) के प्रतिनिधि परिषद् में अपने अपने आसन पर विराजमान थे, जिसको लक्ष्य करके महाराज ने कथन किया :—

"गुरुजी ! महामन्त्री महोदय तथा मंत्रीगण ! आज इस परिषद् में एकत्र होने के लिये मैंने आपको जो कष्ट दिया है उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूं। परन्तु जिस विषय के लिए यह परिषद् बुलाई गई है, इतना कठिन है कि ऐसा करना आवश्यक था।

महापुरुषों और मित्रो ! मैं जानता हूं कि नीति निपुण महर्षि भारद्वाज जी कहते हैं कि "ऐसे आवश्यक विषयों में राजा को अपने विचार किसी पर प्रकट नहीं करने चाहिये, क्योंकि जो बात दो कानों से बाहर चली जावे उसे गुप्त रखने का भार कोई व्यक्ति अपने सिर पर नहीं ले सकता।

परन्तु महात्मा विशालाक्ष का कथन है कि "अकेला मनुष्य चाहे वह राजा ही क्यों न हो, सम्भव है कहीं न कहीं चूक जाए।" इस कारण मैं सारे विषय को आपके सन्मुख रखना चाहता हूं। आपको स्मरण होगा कि जिस समय राज्य का भार मेरे निर्बल कन्धों पर डाला गया था, मैंने आपसे यह प्रार्थना की थी कि आप इस भारको उठाने में मेरी साहयता करते रहेंगे। मुझे हर्ष है कि मेरी इस प्रार्थना को पूर्णरूप से स्वीकार किया गया है और यह उसका फल है कि इस समय सारा भारतवर्ष पंचनद देश से लेकर पाटलीपुत्र और सौराष्ट्र से लेकर कौशल देश तक एक सूत्र में पिरोया गया है।

इस समय भारत के अन्दर किसी प्रकार का दुख नहीं, प्रजा सुखी है और सुख से धर्म-कार्य्यों में लग रही है।

परन्तु केवल इतनी सी बात पर ही हमें सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। संसार के लोग, हां, भारतवर्ष से बाहर के लोग भारत को देख चुके हैं। भारत की स्वतंत्रता के उस महान् शत्रु अलक्षेन्द्र ने जिसके परिश्रम पर हमने बड़ी कठिनता से धूल डाली है, संसार को बता दिया है कि भारतवर्ष स्वर्ण का अण्डा देने वाला पक्षी है। इस कारण हम उस समय तक सुख की निद्रा नहीं सो सकते, जिस समय तक हमारे अन्दर इतना बल न आ जाए कि हम संसार की समस्त शक्तियों को तोड़ सकें।

मित्रो! हम किसी को दुख नहीं देना चाहते, हम किसी की स्वतंत्रता पर आक्रमण नहीं करना चाहते; परन्तु अपने देश में, अपने गृह में, परमात्मा ने हमें धन-सम्पत्ति से सम्पन्न किया है तो दूसरों को क्या अधिकार है कि हमसे छीनने का यत्न करें।

मित्रो तथा महात्माओ! यद्यपि यह सत्य है कि सत्य ही बल है, परन्तु बहुत थोड़े लोग हैं जो इस बात को हृदय से स्वीकार करते हैं। उनके निकट बल ही सत्य है, यह लोग प्राकृतिक

बल को ही सब कुछ समझते हुए यह मानते हैं कि जो कुछ वह दूसरों के हाथों से छीन सकें उनकी बपौती है।

मैं इन बातों में अधिक समय न लेता हुआ आपका ध्यान कुछ वर्ष पहले की घटनाओं की ओर ले जाना चाहता हूं। क्या आपको भूल गया कि किस प्रकार यवनाधीश अलचेन्द्र ने संसार में रक्त की नदी बहा कर जातियों की स्वतंत्रता को छीना था। हां, क्या आपको वह संग्राम भूल गया है जो उसके पापों के प्रभाव को निर्बीज करने के लिये किया गया था ?

नहीं नहीं, मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता कि आपमें से कोई भी उस संग्राम को भूल सकते हैं। तो फिर आप पूछेंगे कि इस वृथा वार्ता का प्रयोजन क्या है ?

सज्जनो ! हमारे गुप्तचरों ने जो अपने प्राण हथेली पर रखे हुए यवन प्रदेशों में विचर रहे हैं, यह सूचना दी है कि अलचेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसके सेनापतियों में जो युद्ध हो रहा था उसका अन्त हो गया। दो बार उसके राज्य के भाग किए गए, उन भागों पर फिर युद्ध हुए; परन्तु अब सारा झगड़ा निपटारे पर है। महाराज बल के देश बाबल का राज्य अलचेन्द्र के प्रसिद्ध सेनापति सैल्यूकस के भाग में आया है और आपमें से बहुत से लोग उस शूरवीर की अटल कल्पनाओं से परिचित होंगे।

मैंने स्वयं उस योद्धा के दर्शन किए हैं (यहां पहुंच कर न जाने किस विचार ने महाराज के मन में चुटकी ली कि आपके मुख मण्डल की रंगत में असाधारण परिवर्तन आ गया) और मैं इस बात को जानता हूं कि वह उस समय तक सुख की नींद न सोयेगा जब तक एक बार भारत के शूरवीरों से दो दो हाथ न कर लेगा।

वह भारत को, न्यून से न्यून भारत के उस भाग को जिसे अलचेन्द्र ने धर्म व अधर्मसे प्राप्त किया था, अपना स्वत्व समझता

है और जब तक उसे और शेष भारत को वह विजय न कर लेगा, सांस न लेगा।

क्या आप अपनी स्वतंत्रा को उसकी दया पर छोड़ना पसन्द करेंगे? क्या आप एक बार फिर यवन-राज्य और यवन-तलवार का स्वाद चखना पसन्द करेंगे? यह प्रश्न है जिसका उत्तर लेने के लिए मैंने आपको यहां आने का कष्ट दिया है, क्योंकि यह केवल मुझ से ही सबन्ध रखने वाली बात नहीं। भारत को बड़ी कठिनता से अभी युद्ध से सांस लेने का अवकाश मिला है, परन्तु उसकी स्वतन्त्रता पर फिर विदेशियों का वज्रपात होने को है। आप भारत भर के प्रतिनिधि हैं, इसलिए मैंने सारा विचार आप के सम्मुख उपस्थित कर दिया है; क्योंकि मैं अपने आपको आप से पृथक् नहीं समझता।"

महाराज की प्रबल तथा प्रभावशाली वक्तृता समाप्त हो गई। मन्त्रीगण और राजा लोग कुछ क्षण अधोमुख बैठे रहे, अन्त में सौराष्ट्राधीश ने कुछ कथन करने की आज्ञा मांगी। आज्ञा दी गई और आपने कहना अरम्भ किया :—

सौराष्ट्राधीश–"महात्मा कौटिल्य, महाराज राक्षस, श्रीमहाराज चन्द्र, मन्त्री तथा राजगण! मेरे को भारतवर्षीय जातीय महासभा अर्थात् मगध राज्य में सम्मिलित हुए अधिक समय नहीं हुआ। जिस समय मेरे देश पर मागधी शूर वीरों ने आक्रमण किया, मैंने जिस प्रकार भी हो सका उसका सामना किया। परन्तु आज जब कि मैं इस वृहत् राज्य का एक अंग हूं, मैं यह अनुभव करता हूं कि यदि मैं ऐसा न करता तो बहुत अच्छा होता; क्योंकि मेरे देश की स्वतन्त्रता आज भी उसी प्रकार सुरक्षित है जिस प्रकार एक अलग राज्य होते हुए थी, प्रत्युत अब तो मैं यह मानने को भी उद्यत हूं कि मेरे देश की स्वतंत्रता पहले से अधिक सुरक्षित है। क्योंकि आज यदि कोई उसे मेरे

देशवासियों से छीनना चाहे तो गांधार से लेकर भागीरथी तक और शाक्य देशसे लेकर विंध्यातक भूचालसा आ जाएगा। इस कारण मेरी आत्मा अब मुझे इस बात पर लज्जित करती है कि मैंने क्यों वह शक्ति जो भारत के शत्रुओं के विरुद्ध प्रयुक्त हो सकती थी महाराज चन्द्र के विरुद्ध लगाई।

परन्तु कदाचित् इस पाप का प्रायश्चित्त करने का समय आ गया है, और मैं महाराज से आज्ञा चाहता हूं कि वह मुझे यवन योद्धा के साथ दो हाथ करने का अवसर दें।"

कौशलपति—"मेरे माननीय भ्राता सौराष्ट्राधीश ने जो कुछ कहा है, सर्वथा सत्य है। मगध का राज्य एक व्यक्ति का राज्य नहीं, यह भारतवर्ष की सम्पूर्ण जातियों की प्रतिनिधि-सभा का राज्य है, इसलिए इसके किसी भी अङ्ग को दुख होने से सारे देश को दुख होना चाहिए। परन्तु मैं समझता हूं कि सौराष्ट्राधीश का यवन राजा से दो हाथ करने का विचार अभी बहुत दूर की बात है, वह तो जब होगा देखा जाएगा। इस समय हमारे सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित है कि वर्त्तमान काल में हमारा क्या कर्त्तव्य है। मेरी सम्मति में बहुत अच्छा होता यदि उस समय जब कि अलक्षेन्द्र के सेनापति परस्पर युद्ध में लगे थे, हम भेद नीति के प्रयोग से उनका नाश कर देते। परन्तु समय व्यतीत हो गया है, अब भी यदि बलपुरी (बाबल) का कोई अधिकारी दिखाई देता हो तो हमें उसे आगे करके यवन राजा से भिड़ा देना चाहिए, ताकि हमारा देश युद्धाग्नि से सुरक्षित रहे।"

काठी प्रतिनिधि—"मेरे पूजनीय मित्रों ने जो कुछ कहा, सत्य है। परन्तु मेरा विचार है कि हम इस समय इतने शक्तिमान् हैं कि यवन तथा कोई अन्य शत्रु हमें हानि नहीं पहुंचा सकता। इसलिए मेरी राय में सबसे अच्छा यह होगा कि हम

शत्रु के देश में चलकर युद्ध करें, ताकि उसे अपने गृह की रक्षा की पड़ जाए और वह इस ओर मुंह ही न कर सके।"

मालव सर्दार—"मैं आज यह श्रवण करके विस्मित रह गया हूं, कि यवन-सेनापति इतनी जल्दी उस शिक्षा को भूल गया है जो मालव शूरवीरों ने इसके राजा अलक्षेन्द्र को सिखाई थी। कदाचित् मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी बनी है तो भी उसे आने तो दो; यदि प्राण लेकर जाएगा तो उसे अपना प्रारब्ध अच्छा समझना चाहिए।"

कितनी ही वक्तृताएं हुई, प्रत्येक ने अपनी अपनी समझ से उपरोक्त विषय पर विचार किया। अन्त में महाराज ने गुरुजी (चाणक्य) की ओर देख, जिन्होंने कहा :—

"राजन् तथा मन्त्रिमण्डल ! आप सब महानुभावों ने अपनी अपनी सम्मति दे दी है और यह हर्ष की बात है कि प्रयोजन प्रायः सबका एक ही है। मेरा विचार है कि राजा को इन सारी सम्मतियों पर एकान्त में तथा दो चार मन्त्रियों सहित विचार करके किसी परिणाम पर पहुंचना उचित है। कार्य्य करने की विधि, मनुष्यों तथा धन की न्यूनता न होना, काल और देश का विचार, सब प्रकार के भय, इत्यादि विषयों का सोचना तथा कार्य में सफलता, यह पांच बातें किसी भी परिषद् की सम्मतियों का मुख्य अंग होना चाहिए। हर्ष का समय है कि आपकी परिषद् में यह सारी बातें विद्यमान हैं, इस कारण सफलता में सन्देह नहीं हो सकता। यदि अलक्षेन्द्र छोटी छोटी और अकेली जातियों के साथ युद्ध करता हुआ विपाशा (व्यास) से आगे नहीं बढ़ सका था तो सारे भारत के साथ युद्ध करके कोई कारण नहीं कि उसका सेनापति हमें अधिक क्लेश दे सके। परन्तु सावधानी की आवश्यकता है, इस कारण मैं आप से

प्रार्थना करूंगा कि अपने अपने देश में सावधानी से कार्य करें। शत्रु के गुप्तचर हमारी न्यूनताओं का पता लगाने का यत्न करेंगे। हमारे अपने देश के देशघातक शत्रु को सहायता देने का कारण बनेंगे। उन सब पर अत्यन्त गुप्त रीति से दृष्टि रखने की आवश्यकता है। तनक सी चूक भयङ्कर विनाश का हेतु बन सकती है। हस्ती जैसे वृहत्काय जन्तु की निर्बलता को जानकर एक पिपीलिका भी उसका नाश कर देती है। इस कारण मैं अब आपको आपकी परिषद् की सफलता पर बधाई देता हुआ महाराज को विचारार्थ समय देने की आपसे याचना करता हूं।"

नवां परिच्छेद

मोहनगृह की सैर !

अर्ध रात्रि व्यतीत हो चुकी है। चारों ओर मौन का साम्राज्य है। कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं देता, दशों दिशाएं निद्रादेवी के अङ्क में शयन कर रही हैं, पशु-पक्षी सब के सब घोर निद्रा में मग्न हैं। इस समय यदि कोई जागता है, तो वे पक्षी व हिंस्र जन्तु जो रात्रि को ही जागते हैं, जो दिन के समय मुंह दिखलाते डरते हैं और रात्रि-काल में घोर निद्रा में सोए हुए जीवों को खा जाने में ही अपनी वीरता समझते हैं। अथवा वह डाकू और चोर (जिनकी संख्या सौभाग्य वशात् हमारी कथा के समय भारतवर्ष में बहुत थोड़ी है) जो परद्रव्यापहरण को ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं, अथवा वह राज्य-कर्मचारी (पुलिसमैन) जो अपनी निद्रा को छोड़ कर संसार को सुख की निद्रा में सुलाने का कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं, अथवा कोई कोई विद्यार्थी जो नेत्रों पर छींटे मार कर पाठ को घोटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हां, इस समय चारों ओर निद्रादेवी अपनी काली चादर पसार रही है। और तो और वृक्ष भी इसके प्रभाव में आकर जो कुछ खाते हैं, वैसे का वैसा ही उगलते चले जाते हैं। उन्हें इस समय यह ज्ञान नहीं कि खाने को चबा कर पचा तो लें।

अर्थात् दिन भर के परिश्रम से थका हुआ संसार इस समय विश्राम कर रहा है, पुलिसमैन भी तो ड्योढ़ी पर ऊंघ रहे हैं। राजकीय प्रासाद की सैर के लिये इससे अच्छा अवसर कदाचित् बड़ी कठिनता से मिल सकेगा, इस कारण आओ दबे पाँव चले

आओ। आज हम आपको महाराज के मोहन गृह की सैर कराएँ, कदाचित् पीछे इसे देखना असम्भव हो जाएगा।

प्रासाद के बाहर बने हुए दमदमे की देख-भाल में समय न गंवाइए, न इस वृहत् परिखा के जल की ही गहराई मापने की व्यर्थ चेष्टा कीजिए, जो इसे अपने अङ्क में ले रही है। यह काम दिन के समय भी हो सकेगा। आओ, जल्दी जल्दी पांव उठाओ, क्योंकि पहरे वाला तंद्रा से सचेत हो गया तो फिर अन्दर जाना असम्भव हो जाएगा; क्योंकि हम मुद्रालांछन (पर्वाना राहदारी) के बिना अन्दर जाने की चेष्टा कर रहे हैं।

हां हां, चलिए, इन पेचीले मार्गों और असख्य कमरों में से गुजरते हुए आगे बढ़ आइए। हमने इन्हें बनते देखा है, इसलिये रास्ता भूलने की आशंका नहीं। यह देखिए, इन कमरों की दीवारें जिनके बनाने में चूने गच्च और मिट्टी के साथ बिजली से जली हुई राख मिलाई गई है, इनके बनाने में साधारण जल नहीं बर्ता गया वरन् ओलों का जल बर्ता गया है, यही कारण है कि अग्नि का इसको कोई भय नहीं है।

जीवन्ती, श्वेता, मुष्कक, पुष्प, त्रिन्दाक आदि बनस्पतियां और नाग दौन तथा अश्वत्थ आदि वृक्षों की शाखाएं जहां-तहां रखी हुई हैं ताकि सर्प न आ सके। स्थान स्थान पर क्रौञ्च, जीवक, मटकोकिल, चकोर, मैना, भृङ्गराज आदि के पिञ्जरे लटक रहे हैं; क्योंकि इन जीवों के होते सर्प और विष की विद्यमानता का तत्काल पता लग सकता है। इस ओर जिधर गमले रखे हैं, जाने की चेष्टा न कीजिए, यह रणवास है। इस महल के आगे राजकुमार और कुमारियों के प्रासाद हैं जिन्हें गुजर कर अलङ्कार भूमि, मंत्र भूमि और अधिकारियों के कार्यालय दिखाई देंगे।

किन्तु इन सब की ओर से ध्यान हटा लीजिए। उधर महल के दर्वाजे अफसर की सेना भी पड़ी है, यदि हम इनके देखने में

लग गए तो कदाचित् रात्रि यहीं व्यतीत हो जाएगी और हम मोहन गृह तक पहुंच भी न सकेंगे। इसलिये शीघ्र शीघ्र चलिये, यह सामने मोहन गृह का भुवन ही तो है।

अन्दर जाने पर चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। झाड़-फानूंस और न जाने किस किस भांति की रोशनियों से, जिनके नाम भी वर्त्तमान समय में लोगों को स्मरण नहीं रहे, प्रासाद में दिन चढ़ रहा है। चारों ओर श्रीरामचन्द्र जी, हनुमान-जी, सुग्रीव जी, महाराज बलि और सैकड़ों ऐसे महापुरुषों के विचित्र चित्र रखे हैं, जिनको आधुनिक लेखक कदाचित् कल्पित कहकर ही टाल देंगे। देखिए महा मुनि वाल्मीकि जी आसन जमाए बैठे हैं, वह इस कोने में भगवान कृष्णचन्द्र जी गीता का उपदेश सुना रहे हैं, कैसा मनोहर चित्र है, मानो अभी बोलना चाहते हैं। मुख से यही प्रगट होता है मानों इस समय महाराज के अन्दर मानुषिक नहीं, ईश्वरीय अर्थात् आत्मिक बल अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा है। आत्मा की शक्ति के सम्मुख मानुषिक और प्राकृतिक शरीर लुप्त होता हुआ दिखाई देता है। वह देखो, दूसरी ओर महात्मा व्यास जी महाराज महाभारत सुना रहे हैं, आस-पास ऋषिजन बैठे हैं। यह सामने देखिए, महाराज नंद की मूर्ति पड़ी है। परन्तु इस धोखे में न रहना कि यह सब चित्र और मूर्तियां केवल प्रासाद की सजावट के लिए ही रखी गई है और ऐसा करना महाराज चाणक्य के दूरदर्शी मस्तिष्क की अवहेलना करना है, जिनका कोई भी कार्य उन्हीं के कथनानुसार व्यर्थ नहीं हुआ करता। यदि इन मूर्तियों का रहस्य देखने की इच्छा हो तो तनक आगे बढ़कर वाल्मीकि जी के हाथ से रामायण छीन देखिये। हाय, यह क्या? महात्मा कहां गए, वह दोनों बाहु जो पुस्तक को थामे थे क्या हुए, क्योंकि अब हमारे सम्मुख महात्मा नहीं, प्रत्युत एक भयानक गुफा का मुंह है, जिसमें

झांकते हुए भी भय प्रतीत होता है। नीचे बहते हुए जलका शब्द भी कर्ण गोचर होता है और शीतल वायु का झोंका यह भी पता दे रहा है कि खुला मैदान भी दूर नहीं है।

परन्तु रहने दो, इस भूल-भूलैयां में पड़ गये तो कदाचित एक ही मूर्ति की खोज में महीनों व्यतीत हो जायेंगे। इधर रात का अधिक भाग बीता जा रहा है। एक ही मूर्ति के चमत्कार से शेष सब पदार्थों को अनुमान द्वारा जान लीजिए कि इस छोटे से कमरे के बनाने में कितनी बुद्धि और कारीगरी लगाई गई है।

एँ! महाराज ने करवट बदली। कदाचित् हमारे शब्द को सुनकर जाग उठे हैं। नहीं, यह तो पहले ही से जागते प्रतीत होते हैं। तनक सुनना, मुंह में कुछ बड़-बड़ा भी रहे हैं:—

"हाय, पन्द्रह वर्ष बीते जा रहे हैं, परन्तु मेरे लिये अभी यह सब कुछ कल ही हुआ है। गुरु जी जोर दे रहे हैं, मंत्री जी समझाते हैं, प्रजा इच्छा करती है कि मैं विवाह करूं। परन्तु मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती, मेरा हृदय ग्लानि खाता है। वह कारण पूछते हैं। क्या मैं उन्हें यह कह दूं कि यह हृदय पन्द्रह वर्ष हो गये एक विदेशी देवी की भेंट हो गया? अब इस अस्थि-चर्ममय शरीर के अन्दर वह वस्तु ही नहीं जिसे लेकर मैं विवाह की वेदी पर बैठूं।

हा! तो क्या मौर्यवंश का मेरे शरीर के साथ ही अन्त हो जायगा? वह वंश जिसे बनाने के लिए गुरु जी ने सम्पूर्ण शक्तियां लगा दी हैं, एकाएक नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। परन्तु कदाचित् परमेश्वर की यही इच्छा है, कदाचित् नंदवन्श के विनाश का यह दण्ड है, शेष नाग बंश के विध्वंस का फल है।

यदि विधाता की यही इच्छा है, तो मैं इसको मिटाने वाला कौन? प्रारब्ध को रोकने की सामर्थ किसमें है? परन्तु जगत् विवाह करता है, प्रति दिन करता है। राजा लोग एक

नहीं, अनेक विवाह करते हैं। क्या मैं ऐसा नहीं कर सकता? क्या इस प्रकार मैं गुरु जी, मंत्रीगण और प्रजा की इच्छाओं को पूर्ण नहीं कर सकता? इससे पूर्व मैंने उनकी इच्छाओं की पूर्ति के निमित्त इतना कुछ किया है, तो क्या अब यह नहीं कर सकता?

नहीं नहीं, विवाह से शरीर का सम्बन्ध नहीं। और कोई यह समझे वा नहीं परन्तु मैं इसे ऐसा नहीं समझता। यह आत्मा का संबंध है और आत्मा का संबन्ध सदैव के लिये केवल एकबार ही होता है और अटूट होता है, इसमें किसी और का हस्तक्षेप नहीं हो सकता। गुरुजी, मन्त्रीगण और प्रजाजन यदि इससे असंतुष्ट हैं तो हुआ करें, मैं राज्य को त्याग सकता हूं, परन्तु आत्मा को किसी व्यक्ति के हाथ बेच नहीं सकता।

हा! पन्द्रह वर्ष बीत गये, वह पन्द्रह वर्ष जिनमें मगध का राज्य विन्ध्या से हिमाचल तक और गान्धार से पाटलीपुत्र तक विस्तृत हो गया, वह पन्द्रह वर्ष जिनमें उत्तर भारत का सारा प्रबन्ध बदल गया, जिनमें मुझे अतिशय कार्य-व्यग्र रहना पड़ा; परन्तु राज-पाट के कार्य्यों में, राज्य के प्रबन्ध में, आखेट आदि में कहीं और कभी वह मूर्ति मेरे नेत्रों से ओझल नहीं हुई, जिसे पहले पहल मैंने तक्षशिला के मैदान में देखा था।

"जीना है तो तुम्हारे साथ, मरना है तो तुम्हारे साथ" उसके यह शब्द उसी दिन से मेरे कानों में गूंज रहे हैं। हा! यह वह शब्द हैं जो चन्द्रभागा के विस्तृत और क्षुब्ध जल को साक्षी रखते हुये कहे गए थे। प्रभो! क्या यह मिथ्या ही सिद्ध होंगे? परन्तु क्या मैं पागल हो गया हूं? क्या यह संभव हो सकता है कि एक राजा की पुत्री पन्द्रह वर्ष पर्यन्त अविवाहित पड़ी रहे? जब तू पुरुष होता हुआ अभी अपने आपको इस अवस्था में रखते हुए दुःख अनुभव करता है तो क्या यह सम्भव हो सकता है कि

एक स्त्री, एक अबला, इतने दीर्घ काल तक कुमारी रह सके? तो फिर? हां यदि वह विवाहित है तो फिर हां हां, तो फिर तेरा क्या कर्त्तव्य है? हाय! यह विचार ही दुखदायक है, इसके सामने आते हुए मेरी आत्मा पर वज्र गिरता है, मैं इसपर विचार करने को सर्वथा अशक्त हूं, नहीं नहीं,मैं इसे दृष्टि के सामने भी नहीं ला सकता।

परन्तु सम्भव है कि ऐसा हो, फिर? हां, मैं सन्देह में नहीं रह सकता, अब अधिक समय तक सन्देह मेरी आत्मा का हनन कर देगा। मैं इस विषय में वास्तविकता का पता लगाऊंगा, फिर जो हो देखा जायगा।"

क्यों पाठक! तुम अपने आपको अभागा समझते हो, किन्तु देखा, तुम्हारे सम्मुख वह मनुष्य पड़ा है जिसे संसार सब से अधिक सौभाग्यवान समझता है, जिसने एक साधारण सवार की स्थिति से उन्नति करके एक चक्रवर्त्ती राजा के पद को प्राप्त किया है, जिसकी दशा पर बहुत से लोग ईर्षा करते हैं। परन्तु आपने उसके मनके अन्दर घुसकर आज देख लिया कि इतने बड़े विस्तृत राज्य में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं जिसके सम्मुख वह दिल का बुखार निकाल कर अपने दुखको हलका कर सके, एक मनुष्य भी ऐसा नहीं जिससे वह सहानुभूति की आशा रख सके, निस्सन्देह यह राजा होने का दण्ड है।

दसवां परिच्छेद

भारतीय दूत-मण्डल

बाबल के पुरातन नगर में आज जिधर चले जाओ एक ही बात प्रत्येक मनुष्य की जिह्वा पर है जिधर देखो एक ही चर्चा सुनने में आती है और वह "भारतीय दूत मण्डल" है। भारत-वर्ष के हमारे पुराने "इन्दुशर्मा" जी इस मण्डल के प्रधान बन कर विराजे हैं, जो आज सैल्यूकस के दर्बार में पेश होंगे। बाबल-निवासी इस दूत-मण्डल की चर्चा में अपना सारा काम-काज भूल रहे हैं।

कहीं पर राजदूतों के गजवत् वृहत् आकार पर नोंक-झोंक हो रही है, कहीं उन पर्वताकार हाथियों को देख देखकर आश्चर्य प्रकट किया जा रहा है और कहीं उन सुचारु गति अश्वों की प्रशंसा हो रही है, जिसको दूत-मण्डल अपने साथ उपहार स्वरूप लाया है, कहीं पर उसके उद्देश्य को जानने का प्रयत्न हो रहा है। कोई कहता है, इण्डिया के बादशाह ने आधीनता स्वीकार कर ली है क्योंकि उसे हमारे शांहशाह की शक्ति का पता लग गया है। कोई कहता है कि दूत मण्डल मित्रता का प्रार्थी होकर आया है, कोई कहता है कि युद्ध की सूचना के लिए आया है। जितने मुंह उतनी बातें, परन्तु चर्चा एक ही है और वह है भारतीय दूत-मण्डल।

ठीक दस बजे दूत-मण्डल को शाहंशाह के दर्शनों का अवसर मिला। "इन्दुशर्मा" जी ने अपने सहकारियों सहित नकीबों और

गुर्जबाजों की कई पंक्तियों में से गुजर कर यथा विधि से शाहंशाह को प्रणाम किया। बादशाह ने मुस्कराते हुए प्रणाम का उत्तर दिया, जिसे इन्दु ने अपने लिए शुभ-शकुन समझा और आगे बढ़कर महाराज चन्द्रगुप्त का वह पत्र पेश किया जो सैल्यूकस के नाम था। यह पत्र एक बहुमूल्य सन्दूकचे में बन्द था, जिस पर भारतीय शिल्पियों ने अपनी विचित्र कुशलता का परिचय दिया था।

शाहंशाह ने उसे प्रधान मन्त्री को दे दिया, उसने उसे खोला और खोलकर फिर शाहंशाह के हाथों में रख दिया।

जिस समय शाहंशाह ने पढ़ने का संकेत किया, सम्पूर्ण दर्बार उसे सुनने के लिए उत्कंठित था। प्रधान मन्त्री ने निम्न लिखित शब्दों में ऊंचे स्वर के पढ़ना आरम्भ किया।

"भारतवर्ष के चक्रवर्त्ती राजाधिराज मौर्य्य कुल-सूर्य्य श्री चन्द्रगुप्त की ओर से यवन-राज्याधिपति शूरवीर योद्धा सैल्यूकस निकाटोर (Nikator) की सेवा में। महाराज बल की राजधानी और असुर देश के राज्य की प्राप्ति पर बधाई। शूरवीर योद्धा के पराक्रम की सफलता पर सन्तोष तथा हर्ष। आशा है कि यवनाधीश अपने पूर्व राजा के उदाहरण को सम्मुख न रखता हुआ हमारे साथ सम्मिलित होकर इस तप्त पृथ्वी पर शान्ति और सुख के फैलाने का हेतु बनकर यश और कीर्ति को प्राप्त करेगा। इस पृथ्वी पर प्रत्येक देश और उसके देशवासियों को सर्व पिता परमात्मा ने, जो आर्य्य तथा यवन सबका पिता है, यह अधिकार दिया है कि वह अपने गृह में सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करे। यह प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है, जिसकी रक्षा के लिए राजा लोग इस पृथ्वी पर भेजे जाते हैं। जो पापी प्रजा से उस अधिकार को छीनने का प्रयत्न करता है, वह इस योग्य नहीं कि पृथ्वी पर रहने दिया जावे। यवन-राज्याधिपति स्वयं इस बात से

अनभिज्ञ नहीं, अतएव आशा की जाती है कि वह जगत् में युद्ध और उससे उत्पन्न होने वाले दुःखों को फैलाने में ही शूरवीरता न समझता हुआ इस जगत् में सुख और शान्ति फैलाने में सहायक होगा।"

शब्द थोड़े थे, परन्तु महान् अर्थ से परिपूर्ण थे। शाहंशाह सैल्यूकस ने सिर उठाकर कहा :—

सैल्यूकस—सफ़ीर ! इन अलफाज़ का मतलब क्या है ?

इन्दु—महाराज से कोई बात छिपी हुई नहीं।

सैल्यूकस—क्या सैन्ड्राकोटस यह ख्वाहिश रखता है कि हम हिन्दुस्थान पर फौजकशी का इरादा तरक कर दें ?

इन्दु—महाराज व्यर्थ रक्तपात से घृणा करते हैं।

सैल्यूकस—लेकिन फिर भी यूनानी मकबूजात हिन्द को अपने क़ब्जे में रख रहा है ?

इन्दु—महाराज ! वह भारतवर्ष के प्रदेश हैं।

सैल्यूकस—मगर सिकन्दर आजम ने और उससे पहले दारा गश्तासब ने उन्हें फतेह किया, इसलिए वह यूनानी सल्तनत का हिस्सा थे।

इन्दु—महाराज बुरा न मानें तो मुझे यह कहने में तनक भी भय नहीं कि एक अन्यायी अत्याचारी और परधनापहारी के हाथों स्वतन्त्रता छिनवा कर कोई मनुष्य सदा के लिए दासत्व का जीवन गुजारने के लिए बाध्य नहीं हो जाता। स्वतन्त्रता मनुष्य-मात्र का जन्म-सिद्ध अधिकार है, जैसा कि महाराज मौर्य्य-कुल-सूर्य्य अपने पत्र में कथन करते हैं, उसे किसी से छीनने वाला पापी ही नहीं वरन् महा पापी है।

सैल्यूकस—तुम्हारे कहने को अगर तस्लीम कर लिया जावे,

तो दुनियां से बादशाहों और बादशाहतों का फौरन खात्मा कर देना चाहिए।

इन्दु—महाराज ! बात विवादास्पद हो चली है, किन्तु राज्य-धर्म, कमसे कम भारत का राज्य-धर्म, हमें स्पष्ट बतलाता है कि राजा जहां प्रजा की स्वतन्त्रता का स्वामी है वहां उसका रक्षक भी है, जहां वह प्रजा का अफ़सर है वहां उसका सेवक भी है। भारत के राज्य-धर्म में राजा और प्रजा का सम्बन्ध पति और पत्नी का है, जिस प्रकार पति पत्नी का स्वामी होते हुए भी बहुत-सी बातों में उसका सेवक है, इसी प्रकार राजा प्रजा का स्वामी होते हुए भी उसका सेवक है। प्रजा को अत्याचारियों के अत्याचार से बचाना, शत्रुओं से उसकी रक्षा करना, बलवानों को अपने शक्तिशाली हाथों से निर्बलों पर अत्याचर करने से रोकना, यह राजा का धर्म है। जिसके बदले में प्रजा उसे अपना आप समर्पण कर देती है, अतएव वह राजा राजा नहीं रहता जो अपने धर्म से प्रमाद करता है अर्थात् प्रजा की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा का भार राजा के सिर पर है। भारत का राज्य-धर्म यह बताता है कि प्रत्येक मनुष्य के जन्म-सिद्ध अधिकार की रक्षा के अर्थ राजा की भारी आवश्यकता है। मेरे स्वामी श्री महाराज-चन्द्र इसी नियम पर चलते हैं और मैं विश्वास रखता हूं कि श्रीमान् भी इसी एक बात को दृष्टि के सम्मुख रखते हैं, इसलिए यदि संसार की भलाई को दृष्टि में रखने वाली यह दोनों शक्तियां इस पवित्र कार्य्य में एक दूसरे का हाथ बटाने लग जाएं तो मैं समझता हूं, आज इस प्राकृतिक जगत् में वह समय आ जाए, जिसे हम लोग सतयुग के नाम से स्मरण करते हैं।

सैल्यूकस—तुम अपने मक्सद को बहुत अच्छी तरह अदा करते हो मगर हम अपने मकबूजात हिन्द से इस तरह आसानी से

दस्तबर्दार नहीं हो सकते । ताहम इस मुआमले पर ग़ौर किया जावेगा । इस अर्सा में तुम्हें इस जगह हर क़िस्म का आराम मुहय्या होगा । हमारे दारुल्सल्तनत की सैर की तुम्हें पूरी आज़ादी होगी; क्योंकि तुम शाही मेहमान हो । एक शाही अफसर तुम्हें शहर की क़ाबिलेदीद जगहों की सैर कराएगा, अपनी ज़रूरियात का तुम हर वक्त हम पर इज़हार कर सकते हो ।

ग्यारहवां परिच्छेद

गुप्त पत्रिका

राजकुमारी रुक्शाना का सुख स्वप्न भङ्ग हुआ। यह स्वप्न एक अत्यन्त मनोरंजक स्वप्न था, जिसने उसके शरीर के एक एक अङ्ग में आनन्द और आह्लाद की लहर दौड़ा दी थी। वह आज पहले की अपेक्षा बिस्तरे से कुछ सवेरे ही उठ खड़ी हुई, क्योंकि अधिक समय तक करवटें लेना उसे अच्छा न लगता था। नहा-धोकर वस्त्र पहने और स्वाध्याय के कमरे में दाखिल हुई। इस समय उसका चित्त प्रसन्न था और वह चाहती थी कि प्रभात का समय किसी मनोरञ्जक पुस्तक के पाठ में लगाए; परन्तु अभी मेज़ तक पहुंची ही थी कि एक बन्द लिफाफा देख पड़ा। विस्मित सी होकर उसने लिफाफे को उठाया तो उसे बन्द पाया। मन में विचार हुआ कि शायद यह किसी और के लिये है, परन्तु यदि ऐसा है तो मेरी मेज पर क्यों पड़ा है? कुछ समय इसी तर्क-वितर्क में बीता और अन्त में यही निश्चय हुआ कि इसे खोलकर देखना चाहिये। जो किसी और के लिए होगा तो इस भांति के किसी दूसरे लिफाफे में बन्द कर दिया जायगा।

इस विचार के उठते ही राजकुमारी ने लिफाफा खोल डाला। उसके अन्दर एक छोटा सा कागज का पुर्जा था, जिस पर यह शब्द भली भांति पढ़े जाते थे :—

"श्रीमती राजकुमारी! क्या आप इण्डिया का कोई समाचार सुनना चाहती हैं? क्या आपके मन में उस मनुष्य की कुशल-

क्षेम पूछने की इच्छा है जिसने इण्डिया के मैदानों, नदियों और पर्वतों में अनेक बार आपके प्यारे प्राणों की रक्षा की थी ? यदि इस बात का उत्तर हां में है तो इस पत्र को पढ़ कर फाड़ दीजिए परन्तु इसी लिफाफे में इसका उत्तर लिख कर बन्द कर दीजिये और कल सूर्य्योदय से पहले पहले उस वीर के हाथ का लिखा हुआ पत्र आपकी मेज पर होगा।"

थोड़े से शब्दों के इस समूह में न जाने कौन सी विद्युतकी शक्ति भरी थी कि राजकुमारी का सारा शरीर थर्रा उठा। पन्द्रह वर्ष तक बाट देखने के पश्चात् आज उसकी दृष्टि के सम्मुख यह थोड़े से शब्द थे, जिन्होंने उसके सम्मुख जीवन का एक नया अध्याय खोल दिया। क्या सचमुच "उस बहादुर के हाथ की लिखी हुई चिट्ठी" को पढ़ेगी ? क्या यह मुमकिन हो सकता है ? नहीं, इन्सानी दिल इसे कबूल नहीं कर सकता। यह कैसे मुमकिन हो सकता है ? क्या कोई जरिया है, जिससे इतना दूर-दराज फासला तय करके यह चिट्ठी मुझ बदकिस्मत तक पहुंच सके ? खास कर ऐसे मौके पर जब कि अब्बाजान इण्डिया के साथ जंग की तय्यारियां कर रहे हैं।

"नहीं, मेरे साथ किसी ने मजाक किया है, कोई शख्श मेरी बदकिस्मती के साथ खेल रहा है, मगर वह कौन हो सकता है ? जहां तक मैं अपनी गुजश्ता जिन्दगी पर निगाह डालती हूं, मैंने किसी को अपने राज़ का हिस्सेदार नहीं बनाया। इसे छिपाने में इसे महफूज करने में मुझे मुश्किलात का सामना करना पड़ा है। ओह ! किन किन मुसीबतों का मुंह देखना पड़ा। इसे मैं जानती हूं या दिलों की हालत जानने वाला वह सब का मालिक !"

"तो फिर यह मुआमला क्या है ? यह चिट्ठी किस तरह मेरी मेज़पर पहुंच गई ? क्या यहां और कोई शाहजादी है, जिसके लिये यह चिट्ठी लिखी गई है ? नहीं इण्डिया के मैदान, पहाड़

और दरिया जिसका इस मुख्तसर से कागज में तज़्करा है, आः ! वह सबके सब किस तरह मेरी निगाहों के सामने फिर रहे हैं, मैं अपनी गुजश्ता जिन्दगी को किस तरह फिर से गुजार रही हूं ?"

"खुदावन्द ! यह सारे नज़ारे मेरी निगाह के सामने आकर मुझे कहां ले जा रहे हैं ? लेकिन क्या मेरे राज़ को किसी हद तक मालूम करके किसी शख्स ने इसे पूरे तौर पर जानने की कोशिश की है ? तो क्या मुझे इसका जवाब लिख देना चाहिए ? नहीं, अन्धेरे में कूदना गालबन अच्छा नहीं होगा। यह चिट्ठी बतलाती है कि इसका लिखने वाला मेरी जिन्दगी के एक अहम क़िस्से से जरूर वाकिफ है। तो क्या मैं उसे सारी बात बतला दूं ? नहीं, यह औरतों की कमजोरी है, मैं इसका शिकार नहीं हूंगी, जब तक मुझे इसके लिखने वाले का कुछ न कुछ पता न लग जाए,मैं इसका जवाब न दूंगी। उफ ! उफ !! यह नाकाबिले बर्दाश्त है, उफ ! उफ.........!"

"रुक्शाना ! इस गर्मी में कमरे के अन्दर क्या कर रही हो ?"

"अब्बाजान !" कह कर रुक्शाना जल्दी से बाहर निकली, तो सैल्यूकस निकाटोर (Salucus Nikator) देख पड़ा जो नित्य-नियम के अनुसार अपनी प्यारी पुत्री के साथ बाग की सैर के लिये आ पहुंचा था।

पिता-पुत्री महल के साथ वाले बाग में सैर के लिए पहुंचे, कुछ मिनट चुप-चाप घूमते रहे। अन्त में राजकुमारी ने कहाः—

राजकुमारी—अब्बाजान ! आज खिलाफ मामूल आप कुछ मुतफिक्कर नजर आते हैं।

सैल्यूकस—(एक क्षण भर पुत्री के मुख की ओर निहारकर) हां, कल से चन्द एक मुआमलात मुल्की पर ज़हन लग रहा है। अभी तक उनका हल नहीं हुआ।

राजकुमारी—शायद मैं उसमें आपकी मदद कर सकूं।

सैल्यूकस—(कुछ सोचते हुये) हां .....मुमकिन है...... शायद तुमने इण्डियन सफारत की आमदन का हाल सुन लिया है।

राजकुमारी—(बात काट कर) इण्डियन सफारत ?...... इण्डियन सफारत ? आप का मतलब मैं नहीं समझी।

इस समय उसके गौर वर्ण कपोलों पर जलते हुए दो निशान थे, जिन्हें अपने विचार में मग्न होने के कारण सैल्यूकस देख न सका और उसने उसी प्रकार भूमि की ओर निहारते हुए उत्तर दिया—

सैल्यूकस—हां, इण्डिया के राजा सन्ड्राकोटस के दर्बार से एक सफीर कल दर्बार में हाजिर हुआ था।

राजकुमारी—वही सन्ड्राकोटस जिसका आपने उस दिन तजकरा किया था ?

सैल्यूकस—हां, जिसने हमारे इण्डियन मकबूजात पर कब्जा जमा रखा है।

राजकुमारी—सफारत का मक्सद क्या है ?

सैल्यूकस—इसी बात ने तो हमें परेशान कर रखा है। जाहरा वह हमें तख्त सल्तनत पर बैठने पर मुबारक बाद देने आया है; लेकिन महज इतने से मक्सद के लिए इतनी दूर-दराज का सफर इखत्यार करना एक तअज्जुब खेज़ अमर है......

न जाने किस विचार ने राजकुमारी के मन में चुटकी ली कि उसके मुख मण्डल पर एक असाधारण परिवर्तन दिखाई देने लगा, परन्तु विचारों की उठती हुई आंधी को उसने अन्दर ही अन्दर दबा कर कहा :—

शाहजादी—क्या इसके असली मक्सद को जानने की कोई तजवीज़ नहीं की गई ?

सैल्यूकस—अफ़सरान ममलुकत को यह इजाज़त, नहीं नहीं, हुक्म दिया गया है कि सफीर की जियाफतों पर दिल खोल कर रुपया खर्च करें। उसके नौकरों को रिश्वत वगैरह देकर असलीयत का पता लगावें, खुद उसे किसी न किसी जरिया से असल मुआमला इजहार करने पर मजबूर करें। नीज़ और कई वसाइल से इस मुआमले का पता निकालने की कोशिश की जायगी। ताहम जब तक ऐसा हो तशवीश बरकरार रहेगी।

राजकुमारी—आप तशवीश न करें, अजनबी आपके मुल्क में आकर आपको नुकसान नहीं पहुंचा सकता।

सैल्यूकस—हां, हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं ताहम ऐसे वक्त में जब कि हम इण्डिया पर हम्ले की तैयारियों में हैं एक जाहरा सुलहजू और ख्वाहान दोस्ती सफीर का यकबयक नमूदार होना खुशगवार नहीं हो सकता।

राजकुमारी—क्या मुझे सफीर से मिलने की इजाज़त है?

सैल्यूकस ने आश्चर्य्य से पुत्री के मुखमण्डल की ओर दृष्टि डाली। उस समय वह दृष्टि उसके मनके विचारों को पढ़ने की इच्छुक थी। कोई और मनुष्य होता तो उस समय उसकी दृष्टि के सम्मुख उसके नेत्र अवश्यमेव नीचे झुक जाते; परन्तु रुक्शाना न केवल पिता को ही जानती थी, परन्तु समय को भी पहचानती थी, इसलिए उसने उसी तरह भोलेपन से पिता की दृष्टि का उत्तर दिया। एक मिनट तक उसके चेहरे पर गौर से घूरने के पश्चात् सैल्यूकस ने कहा:—

सैल्यूकस—यदि तुम्हारी यह ख्वाहिश है तो मैं इसमें रुकावट डालना नहीं चाहता। शायद तुम दूसरों की निस्बत इस काम में ज्यादा कामयाब हो सकोगी, क्योंकि तुम्हें इण्डिया और इण्डियन लोगों से दिलचस्पी है और यह दिलचस्पी मुमकिन

है, सफीर के मुंह से कोई मतलब क लफ्ज निकलवाने में कामयाब हो।

रुक्शाना ने झुके हुये सिर से पिता को हार्दिक धन्यवाद दिया। सैल्यूकस का मन भी इतने समय में पहले की अपेक्षा हल्का हो गया था। सुतरां अब वह बाग की सैर में लग गया। कुछ समय तक वायु सेवन के पश्चात् साधारण बात-चीत करते हुए वे एक दूसरे से अलग हो गए।

बारहवां परिच्छेद

मैं सफीर से मिलूंगी

"हो न हो, यह चिट्ठी इण्डियन सफीर के साथ सफर करके आई है। अगर सफीर नहीं तो इसके साथ कोई और शख्स है जो इस चिट्ठी को लेकर आया है। क्या वृषल खुद ही तो इसके लिखने वाले नहीं? नहीं मेरा खयाल एक नामुमकिन अमर को मुमकिन बना रहा है। मेरी किस्मत में यह कहां कि इस तरह आसानी से उस मोहनी मूरत के दीदार कर सकूं। रुक्शाना! तू पागल हुई जा रही है। तेरा दिल जरा जरा से मुआमलात को बड़े बड़े अहम नतायज की तर्फ लिये जा रहा है। यकीनन दिल की यह हालत ठीक नहीं।"

"लेकिन, इस वक्त मुझे करना क्या चाहिये? सफारत में कोई न कोई शख्स जरूर इस चिट्ठी का लाने वाला है। इसका पता कैसे लगाया जाय? यह एक सवाल है जिसका जवाब मुझे आसानी से न मिलेगा। सफीर दिल के हल्के नहीं हुआ करते जो आसानी से हर्फ मतलब जबान पर ले आवें, इसलिए अगर सफीर खुद इस चिट्ठी का लाने वाला नहीं तो वह बड़ी मुश्किल से इस चिट्ठी के लाने वाले का पता देगा।"

"मगर यह चिट्ठी मेरे कमरे तक किस तरह पहुंची? क्या एक दो दिन में सफीर के आदमियों ने इस मुल्क में, नहीं नहीं, मेरे महलों में, इतने दोस्त पैदा कर लिये हैं कि वह इस तरह ना मालूम तौर पर यह कागज यहां पहुंचा सके? मगर इस में

शक ही क्या है ? क्या यह चिट्ठी खुद इसका सबूत नहीं ? क्या इसके होते हुए किसी और सबूत की जरूरत है ?"

"खुदावन्द ! यह क्या मुआमला है ? यह क्या भूलभुलैयां है ? मेरी अक्ल चक्कर में आ रही है और मुझे इससे निकलने का रास्ता नहीं सूझता, करूं तो क्या करूं ?"

इन विचारों ने रुक्शाना के कोमल हृदय को व्याकुल कर दिया और वह थक कर बिस्तरे पर लेट गई; परन्तु इतने सवेरे निद्रा कैसे आती ? बिस्तरे पर लेटते ही नेत्रों के सामने पिछले पन्द्रह वर्ष की घटनाएं एक एक करके आने लगीं। भारतवर्ष के वह दृश्य जो कभी उसके मन से परे नहीं होते थे, अपने पूर्ण यौवन के साथ आंखों के सामने आने लगे। सिकन्दर की मृत्यु और दिग्विजय के लिए अपने पिता के युद्ध स्मरण हो आए, फिर उन बीसियों रकीबों की सूरतें दिखाई दीं जो उसके अपने हाथ की प्राप्ति के लिये एक दूसरे के प्राणों के शत्रु बन रहे थे। इस विचार के आते ही उसके माथे पर शिकनें पड़ गईं, भवें बल खाकर टेढ़ी हो गईं। इन दुखदायक विचारों से छुटकारा पाने के लिये वह उठकर बैठ गई, मस्तक पर हाथ फेरा मानों व्याकुलित विचारों को हाथ की गति से मस्तिष्क से निकाल रही है और निस्सन्देह कुछ क्षण के लिये उसी की प्रकृति में शान्ति सी प्रतीत हुई। परन्तु यह शान्ति क्षणिक थी, क्योंकि सामने मेज पर दृष्टि पड़ते ही पत्र की उलझन फिर सामने आ गई, जिसका सुलझना असम्भव सा हो गया था।

सुतरां वह उठी और उठकर मेज पर पहुंची। इस समय उसका मन चाहता था कि पत्र के उत्तर में दो शब्द लिखकर उस कागज के पुर्जे को प्राप्त कर ले, जिस पर उसकी इतनी आशाएं इकट्ठी हो रही थीं। ऐसा करने के लिये उसने लेखनी को उठाया भी, परन्तु फिर किसी अज्ञात विचार ने उसके हाथ को काम

करने से रोक दिया। कुछ समय तक लेखनी को हाथ में लिये वह सोचती रही, बारम्बार उसे स्याही में डुबोती, परन्तु फिर इधर-उधर के विचारों में डूब जाती और वह लेखनी उसी प्रकार हाथ में रह जाती। कुछ काल पर्य्यन्त यही दशा रही, इसके पश्चात् उसने हाथ से लेखनी को फेंक दिया और "पहले सफीर को देखना चाहिये" यह कह कर मेज से उठ खड़ी हुई।

तेरहवां परिच्छेद

राजकुमारी और राज दूत की भेंट

पण्डित इन्दु शर्म्मा मनमें बहुत से विचार लेकर भारतवर्ष से चले थे। सैकड़ों आने वाली कठिनाइयों का उपाय आपने चलने से पहले ही सोच रखा था......। वीरता, साहस, समय की परख और वाक्पटुता सर्वदा प्रत्येक अवसर पर आपके काम आती रही थी, और इस दौत्य कर्म में भी वह उसी प्रकार उनकी सहायता के लिए विद्यमान थी। एक प्रत्यक्ष शत्रु के देश में, जो युद्ध के लिए पूर्णतया सज्जित था, दूत मडली लेकर चले आना और सैल्यूकस जैसे सम्राट् के सम्मुख स्वच्छन्दता से अपने उद्देश्य को प्रगट करना, आप ही का काम था। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी आपके मन में कभी कल्पना भी न हुई थी कि आपको स्वयं राजकुमारी रुक्शाना के दर्शनों का अवसर मिलेगा, इसलिए जब राजकुमारी का बुलावा पहुंचा तो वह उसके लिए बिल्कुल तैयार न थे।

यही कारण था कि एक क्षण के लिए तो आप भी घबरा गए, परन्तु तत्काल अपने आपको संभाल कर आप इस गुरुतर और कठिन भेंट के लिए उद्यत हो गए और इस समय राजकुमारी के सम्मुख आदाब बजा रहे हैं।

स्मितवदन और प्रफुल्ल नेत्रों के साथ राजकुमारी ने उन्हें बैठने का संकेत करते हुए कहा :—

राजकुमारी—सफीर ! शायद तुम अपने आपको मेरे सामने देख कर हैरान हुए होंगे क्योंकि अगलबन शाहजादियों का अजनबी सफीरों से मुलाकात करना खिलाफ मामूल है, मगर मुझे तुम्हारे मुल्क और अहालियान मुल्क के साथ इस कद्र दिलचस्पी है कि मैंने शांहशाह से ऐसा करने की इजाज़त मांग ही ली।

सफीर—यह भारत का सौभाग्य है कि शाह बाबल की पुत्री उसमें दिलचस्पी रखती है, इससे मेरे मिशन को सफलता की आशा बढ़ गई है और मैं भारत वासियों की ओरसे श्रीमती को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

राजकुमारी—तुमने अपने मिशन की तर्फ इशारा किया है। क्या मैं पूछ सकती हूं कि वह किसका मिशन है, जिसके लिए तुमने इतनी दूर-दराज का सफर इख्त्यार करने की तकलीफ गवारा की है ?

दूत—राजकुमारी ! मेरा मिशन कोई गुप्त मिशन नहीं, न इसमें कोई भेद की बात ही है। मेरे स्वामी महाराज श्रीचन्द्र की यह प्रबल आकांक्षा है क जम्बू द्वीप की प्रजा को सुख और शान्ति से उन्नति करने का अवसर मिले। इसी इच्छा की पूर्ति में मैं यहां उपस्थित हुआ हूं, ताकि आपके पिता महाराज सैल्यूकस को इस बात पर प्रस्तुत करूं कि वह रक्त पात के सङ्कल्प को छोड़ कर महाराज चन्द्र के साथ इस पवित्र कर्म में सम्मिलित हों, ताकि संसार सुख और शान्ति को प्राप्त कर सके। महाराज अलक्षेन्द्र ने जिस तरह इस हतभाग्य देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक रक्त की नदियां बहाई हैं, वह आपसे छिपी नहीं और अब संसार चाहता है कि उसका उत्तराधिकारी उसका अनुकरण न करे और उसे विश्राम लेने का अवसर दे।

राजकुमारी—तुम्हारा मिशन एक मुबारक मिशन है और किसी भी सञ्जीदा आदमी को इसमें हिस्सा लेने से इनकार नहीं हो सकता, अब्बाजान को खुद हर किस्म की खूंरेजी से नफरत है, लेकिन तुम ही बताओ वह उन हजारहा यूनानियों की आवाजों की तर्फ से किस तरह कान बहरे कर सकते हैं, जिन्हें तुम्हारे राजा के मातहत गुलामी की जिंदगी बसर करने पर मजबूर किया गया है ?

दूत—राजकुमारी ! क्षमा करना ! आपको और आपके पिता जी को गलत इतलाह दी गई है। महाराज श्री चंन्द्र के राज्य में कोई गुलाम नहीं, प्रत्येक मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता देना महाराज और महाराज के राज्य-कर्मचारियों का प्रधान उद्देश्य है। प्रजा का एक एक मनुष्य जब और जिस समय चाहे महाराज तक पहुंच सकता है। उनके जीवन का कोई क्षण ऐसा नहीं जब कि उनकी प्रजाके किसी छोटे से छोटे मनुष्य की उनतक पहुंच न हो सकती हो। देश का नियम दासत्व का नितान्त शत्रु है। सच पूछो तो उनके राज्यमें बिदेशी लोगों को हम देश-वासियोंकी अपेक्षा अधिक लाभ और अधिक सुख प्राप्त है, क्योंकि महाराज की यह हार्दिक इच्छा है कि कोई मनुष्य केवल बिदेशी होने के कारण कष्ट न उठाय।

राजकुमारी—सफीर ! मैं तुम्हारी तरदीद करना नहीं चाहती, मुमकिन है, तुम्हारा राजा ऐसा ही हो जैसा कि तुम उसे बयान कर रहे हो, फिर भी कोई कौम जो खुद एक दुनिया को जेरनगीं रख चुकी हो, किसी दूसरी कौम के मातहत होना पसंद नहीं कर सकती।

दूत—राजकुमारी ! मैं श्रीमती की युक्तिकी प्रबलताको स्वीकार करता हूं, परन्तु इसी युक्ति से मुट्ठी भर यूनानियों के

बदले लाखों भारतवासियोंको यूनानी बादशाहके रहमपर छोड़ना घोर स्वार्थपरायणता होगी।

राजकुमारी—(मुस्कराकर) "दीवाना बकारि ख्वेश होश्यार" वाली मिसाल तुमपर खूब सादक आती है। मगर बाईंहमा मुझे अफसोस करना पड़ता है कि अगर तुम्हारी सफारत महज इस मक्सद को लेकर आई है तो तुम्हें इसमें नाकामयाबी होगी, क्योंकि जब तक इंडिया का वह हिस्सा, जिसे शहंशाह अलैग्जैन्डर ने फतेह किया था, अब्बाजान वापस नहीं ले लेते, वह अपनी जिंदगीको बेफायदा समझते हैं। इसलिये इस मुआमलेके मुतल्लिक हमारा ज्यादा जोर देना गालबन बेफायदा होगा। हां, मुझे याद आ गया। क्या तुम वृषलको जानते हो?

दूत—(मुस्कराकर) वृषल! कौन भारतवासी है जो "वृषल" के नामसे अनभिज्ञ है?

राजकुमारी के मुखपर प्रसन्नता की एक झलक दिखाई दी और उसने कहाः—

राजकुमारी—सफीर! तुम्हारा यह मुअज्जज़ हमवतन एक से ज्यादा बार मेरी जिंदगी का मुहाफज साबित हो चुका है, इसलिये मैं उसकी बहुत अहसानमंद हूं। मेरी ख्वाहिश है कि तुम्हारे जरिया वृषल और उनके बीवी-बच्चों के लिए कुछ तहायफ भेजूं, क्या मैं यह जान सकती हूं कि उनके हां अपने बहादुर बाप की तरह दलेर और जर्री, कितने बच्चे हैं?

दूत—राजकुमारी वृषल ने आज तक विवाह नहीं किया, इसलिये कदाचित् आप की यह इच्छा पूर्ण न हो सकेगी।

राजकुमारी—विवाह नहीं किया, क्यों? इण्डिया की वसी मुमलकित में कोई औरत ऐसी नहीं जो वृषल की जिंदगी की साथी बनने के काबिल हो।

दूत—राजकुमारी ! इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना असंभव है, क्योंकि सबके सब भारतवासी यह विश्वास रखते हैं कि देश सेवा को अपने जीवन का आदर्श बनाने के कारण वृषल गृहस्थ के झंझट में पड़ने की इच्छा नहीं रखते, परन्तु जहाँ तक मुझे उनसे पता लगा है, वह किसी ऐसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहते हैं, जिसकी आत्मा को वह अपनी आत्मा का अंश समझते हों।

राजकुमारी (हंसकर)—सफीर ! तुम्हारी बात चीत अब ज़रा ज्यादा दिलचस्प होती जा रही है। क्या अब मैं यकीन कर लूं कि हजारहा मील लंबे-चौड़े इण्डिया के अन्दर करोड़ों इन्सानों की आबादी में वृषल को इतने सालों के अन्दर कोई भी ऐसी औरत नहीं मिल सकी जो उसकी आत्मा का हिस्सा हो ?

दूत—श्रीमती ! क्षमा करना। आध्यात्मिक विषय में हस्तक्षेप करना प्रत्येक व्यक्ति का काम नहीं, इनके समझने के लिए बहुत से स्वाध्याय और सोच-विचार की आवश्यकता है। मनुष्यों की नाईं परमात्मा किसी एक भूमि के विशेष प्रदेश के साथ अपने प्रेम को मर्य्यादित नहीं रखता, न वह एक आत्मा के दो भागों को ही आवश्यक रूप से एक विशेष सीमा के अन्दर भेजने पर बाध्य है। परमात्मा के प्यारे देश और काल की सीमा से मुक्त होते हैं, क्योंकि उनका बनाने वाला देश और काल की सीमा के बन्धन से मुक्त है। इसलिये यह कहना कि किसी देश विशेष की चार दीवारी के अन्दर ही एक मनुष्य को अपने जीवन का साथी ढूंढना चाहिए, भूल है और ऐसी भूल करने वाले मेरे पूज्य देशवासी वृषल नहीं हो सकते।

राजकुमारी ! मेरे देश के विद्वान् ऋषि-मुनि और अन्य महात्मा लोग सनातन काल से ही इस विषय पर विचार करते चले आए हैं और अन्त में वह सब के सब इसी परिणाम पर पहुंचे हैं

कि विवाह दो शरीरों का नहीं, प्रत्युत दो आत्माओं का होना चाहिए, ताकि वह दोनों मिलकर एक दूसरे की त्रुटियों को दूर करती हुईं एक पूर्ण पुरुष बनाने में सफल हों। इसी कारण मेरे देश में स्त्रियों को स्वयं वर खोजने की आज्ञा है और यह इसी का प्रभाव है कि मेरे देश में जहाँ पर ज्योतिष आदि विद्याएं बहुत उन्नत हुई हैं, माता-पिता ज्योतिषियों से सम्मति लेने लग गये हैं, ताकि जिस प्रकार भी हो सके इस बात का निर्णय कर लिया जावे कि स्त्री और पुरुष का संयोग उचित है वा नहीं। ताकि इस विषय में कोई संशय न रह जावे कि राम की टोपी श्याम के सिर पर नहीं प्रत्युत राम ही के सिर पर पहनाई जा रही है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि भूल करना मनुष्य की प्रकृति में है, मनुष्यों से भूलें होती हैं और होती रहेंगीं। परन्तु वृषल की (जहां तक मुझे पता है) यह हार्दिक आकांक्षा है कि वह इस प्रकार की भीषण भूल न करें।

राजकुमारी—सफीर! मैं तो तुम्हें महज एक सियासी शातर ही समझती थी, मगर अब मालूम हुआ कि तुम इसके साथ ही सोशल फिलासफर भी हो। मेरे खयालात खुद कुछ इसी सिमत में चल रहे हैं; लेकिन क्या तुम्हारे उल्माने कोई ऐसा तरीका भी बताया है, जिससे एक आत्मा अपने दूसरे हिस्से को जानने में आसानी से कामयाब हो सके?

दूत—राजकुमारी! बालक जिस समय संसार में जन्म लेता है, कोई मनुष्य उसे दूध पीने की विधि नहीं सिखाता; किन्तु और तो और एक गाय का बछड़ा भी उत्पन्न होते ही स्तनों को खोजने लगता है। बड़े-बड़े विद्वान् बड़ी कठिनता से जान सके हैं कि किस प्रकार सुगमता से, बिना किसी कष्ट के, दूध माता के स्तनोंसे बच्चे के मुख में चला जाता है। परन्तु जन्मान्तर के अभ्यास ने बालक के लिए इस समस्या को हल करने की आवश्यकता नहीं

रहने दी, इसकी यह आवश्यकता प्रकृति ने अपने आप पूरी कर दी है। इसी प्रकार अपने अंश को पहचानने की बुद्धि प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य के अन्दर रखी है। दूसरे लोग अवस्था को जानकर यह तो बता सकते हैं कि यह जोड़ा वास्तविक जोड़ा है व बनावटी। परन्तु जो कुछ एक मनुष्य स्वयं जान सकता है वह दूसरा नहीं यदि वह ऐसा करने का कष्ट उठाए, परन्तु कठिनाई यह है कि साधारण लोग यह चाहते हैं कि दूसरे ही उनके लिए सोचें और दूसरे ही उनके सारे काम करें। इस अवस्था में आप अनुमान कर सकती हैं कि उन्हें कहाँ तक सफलता की आशा रखनी चाहिये?

मेरे देश के सोचने वालों ने विवाह की वास्तविक तथा सर्वोत्तम आयु पुरुष के लिए ४८ वर्ष और स्त्री के लिए २४ वर्ष होने की व्यवस्था दी है। यह वह आयु है जिसमें मनुष्य सर्वांगपूर्ण ही नहीं हो जाता वरन् उसका मस्तिष्क भी विषयों की आंधीपर विजय प्राप्त करके सच्चे परिणाम तक पहुंचने के योग्य हो जाता है परन्तु सच तो यह है कि वास्तविक आदर्श तक पहुंचने वाले लोग बहुत थोड़े हैं। संसार में प्रकृति का शासन है, लोग विषयों के हाथ बिक जाते हैं और न केवल अपने लिए, प्रत्युत संसार के लिए विपत्ति का कारण होते हैं।

राजकुमारी—मालूम होता है तुम्हारा मुतालआ और विचार इस पहलू में बहुत गहरा है। मुझे तुम्हारी बात से बहुत खुशी हासिल हुई है और गो मुझे अफसोस है कि तुम्हें तुम्हारे असली मक्सद में कामयाबी नहीं हो सकती; लेकिन अगर एक कमजोर औरत की हमदर्दी कोई वकअत रखती है तो रुक्शाना हमेशा और हर तरह से तुम्हारी मदद को तैयार है।

दूत—राजकुमारी! मुझे अपने मिशन में सफलता की आशा पहले ही बहुत थोड़ी थी; क्योंकि, क्षमा करना, अलक्षेन्द्र की चढ़ाई

तथा यूनानियों के संपर्क ने हम लोगों पर इससे पूर्व ही बहुत सी बातों को प्रकट कर दिया है, तथापि मुझे आशा है कि यह काम जो मेरी जिह्वा नहीं कर सकी, भारत की तलवार सहज ही में कर देगी। मैं महाराज श्री चन्द्र और महाराज सैल्यूकस को एक दूसरे का मित्र देखना चाहता हूं और यह काम यदि बलपुरी में नहीं हुआ तो भारत में हो जाएगा। इसलिए इस विषय में मुझे अपनी अकृतकार्य्यता पर तनक भी शोक नहीं, हां, मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूं कि मैं महाराज बाबल की राजकुमारी को अपने हितैषियों की सूची में गिनने के योग्य हो गया हूं।

राजकुमारी - अच्छा! खुदा हाफज! उम्मीद करनी चाहिए कि अगर वह वक्त आया, जिसके आने का तुम्हें इतना यकीन है, और जिसकी मुझे इस कदर ख़्वाहिश है, तो फिर हम एक दूसरे को मुबारकबाद देने के काबिल होंगे, इस अर्से में जिस किस्म की भी मदद मैं कर सकती हूं, तुम बिना ताअमुल बता सकते हो और हत्तुलवसा दरेग न होगा।

यह कहकर राजकुमारी ने उठकर अपना हाथ आगे कर दिया। दूत ने इस कोमल और सुन्दर हाथ का चुम्बन किया और अपने सौभग्य पर अभिमान करता हुआ विदा हुआ।

चौदहवां परिच्छेद

गुप्त पत्रिका का गोलमोल जवाब

दूत विदा हुआ, परन्तु राजकुमारी के सोचने के लिये काफी सामग्री छोड़ गया, क्योंकि उसे अब निश्चय हो गया था कि इस पत्र का लाने वाला इस दूत के सिवा और कोई नहीं, जिसे इस तरह गुप्त रूप से महल में पहुंचाने से उसका कोई विशेष प्रयोजन था। उसे यह पता भी लग गया कि वृषल इस समय तक उसकी ही तरह ब्रह्मचारी है। आश्चर्य यह था कि दोनों के अन्दर एक ही भाव काम करता हुआ प्रतीत होता था। जिस विचार से प्रभावित होकर स्वयं उसने सैकड़ों विवाह के अभिलाषियों को निराश किया था, उसी विचार से प्रेरित होकर वृषल ने विवाह को अस्वीकार किया है, सुतरां यह सम्भव नहीं कि इसके मन में उसके लिये वही भाव न हो जो उसके मन में इसके लिए है।

"शायद वह चिट्ठी इसका जवाब दे। हां, मैं पहले से ही देख रही हूं कि इस चिट्ठी में क्या है, वह मेरे लिए लिखी गई है, इसका क्या मानी? इसका मतलब यह है कि चिट्ठी लिखने वाला इतने साल गुज़र जाने पर भी मुझे नहीं भूला, अभी तक उसके दिल में इस हकीर तोदाखाक की याद बाकी है, वर्ना वह यह पुर्जा कागज लिखता ही क्यों?"

"पता नहीं, सफीर के हाथों तक इसे पहुंचाने में उसको कितनी दिक्कत हुई हो, लेकिन नहीं, मेरा यह खयाल गलत है। सफीर की

बातें बताती हैं कि आज वृषल का नाम, हां, मेरे वृषल का नाम इण्डिया के एक एक बच्चे की जबान पर है और हो भी क्यों न? मेरा वृषल किसी दिन आस्मान शोहरत पर मेहरे-मुनव्वर बनकर चमकेगा। पहले दिन ही जब मैंने उसे देखा था, मैं यह जानती थी; लेकिन क्या मैं उसकी शान और उसकी चमक इन आंखों से देख सकूंगी?"

"शायद यह मुमकिन हो सके, खुदा कारसाज मशहूर है, उसके काम के तरीके निराले हैं। आदमजाद—जरा से सिर के अन्दर जरा सा दिमाग रखने वाला—उनको समझ सके, ऐसा ख़याल करना ही भूल है। अकलेकुल के कामों को अकले महदूद समझ सके, यह ख़याल ही अकले-महदूद की कम अकली पर हाल है।"

"हां हां, तो क्या मेरा नसीबा चमकेगा? क्या मेरी उजड़ी खेती में भी बहार आएगी? क्या मेरे दिल की पजमुर्दा कली भी खिलेगी? लेकिन यह क्या? मेरे दिल के किसी पोशीदः गोशे में से उम्मीद की तरंगे क्यों निकली आ रही हैं? मेरे दिल में नई नई उमंगें क्यों वल्वलेजन हो रही हैं? आज मुझे क्या हो गया है? कहीं मैं पागल तो नहीं हो चली? हां हां, सफीर की बातें बताती हैं कि वह वृषल के राजदारों में से नहीं तो दोस्तों में से जरूर है। आह! मैं कितनी बेवकूफ हूं, कितनी सादालौह हूं, जिसने उससे इतना भी न पूछा कि आज कल मेरा प्यारा इंडिया में किस बुलन्दी पर पहुंच रहा है, आज कल इंडिया किस हैसियत में उसकी खिदमत से बहरा अंदोज हो रहा है।"

"लेकिन नहीं, मैं यह पूछ ही नहीं सकती थी, बगैर दिली ख्यालात के इजहार किये मैं किस तरह उससे सारे अमूर दर्याफ्त कर सकती थी, और वह भी पहली मुलाकात में। सफारत के लिए जिन अशखास को मुंतखिब किया जाता है, वह दिलों को

पढ़ने की ताकत रखने वाले होते हैं, जरा जरा से नुक्तों से मानी के दरिया हजम कर जाने वाले हुआ करते हैं। तो क्या मैं ऐसे शख्श से दिल की सारी बातें खोलकर कह डालती ? नहीं, यह उससे भी बड़ी बेवकूफी होती।"

"हां, तो क्या इस रौशन तस्वीर का स्याह रुख मुम्किन नहीं ? क्या यह नहीं हो सकता कि वृषल की चिट्ठी बिल्कुल मेरी उम्मीदों के ख़िलाफ हो ? उस सूरत में, (हृदय पर हाथ रखकर) उफ ! उस सूरत में तेरे लिये कोई जरिया था, जिससे अपने अलफाज को वापस ले सकती ? नहीं, यकीनन नहीं, लिहाजा यही दुरुस्त था जो तूने किया।"

"हां, तो इस खत का हसूल मेरे लिये लाजमी और ज़रूरी है।"

यह विचार थे, जो मेज पर दोनों कुहनियां टिकाए हुए, राजकुमारी के मनमें उठ रहे थे। इस समय वह अपनी धुन में लवलीन हुई इर्द-गिर्द के तमाम हालात से ऊपर उठी हुई थी, अन्तिम विचार के आते ही उसने लेखनी उठा कर एक कागज के टुकड़े पर

"हां"

का शब्द लिखकर उसे लिफाफे में डाल दिया।

पंद्रहवां परिच्छेद

वह वस्तु जिसकी खोज थी

आज की रात राजकुमारी ने जिस बेचैनी के साथ काटी, इसे वही जान सकता है, जिसे कभी इस हालत में से गुजरना पड़ा हो। किनने बार वह नींद से हड़बड़ा कर उठी, कितनी बार उसने आकाश की ओर झांका, यह जानने के लिये कि चन्द्रदेव ने अपनी रात्रि भर की यात्रा समाप्त की है या नहीं। कितने बार उसने उठकर स्वाध्याय के कमरे में जाने की इच्छा की, परन्तु काल किसी का दास नहीं—प्रकृति किसी के हृदय की व्याकुलता की पर्वाह नहीं करती, अन्यथा आज तक कदाचित् कितने ही वर्ष ३६५ दिन के स्थान में कुछ घंटों के और कितने ही दिन २४ घंटे के स्थान में २४ सैकंड के हो गए होते।

ईश्वर ईश्वर करके पौ फटी। राजकुमारी बिस्तरे से उठी, शौचादि आवश्यक कार्य्य से निबट कर स्नान किया और वस्त्र पहन कर स्वाध्याय के कमरे में पहुंची। इस समय उसका हृदय धड़क रहा था और मुख पर लाली और सफेदी की झलक बारी बारी अपनी छटा दिखा जाती थी।

मेज के निकट पहुंची तो सामने वही कल वाला लिफाफा दिखाई पड़ा। हृदय ने कहा, "तुझे धोखा दिया गया, तेरा उत्तर ज्यों का त्यों पड़ा है।" परन्तु साहस करके उसे उठाया तो अन्दर एकाक्षरी उत्तर के स्थान में एक मुद्रांकित लिफाफा दिखाई दिया, जिसे स्पर्श करते ही विद्युत की एक तरंग सरसराती हुई शरीर से

होकर मस्तिष्क में पहुंच गई। राजकुमारी के नेत्रों के आगे अंधेरा छा गया और यदि इस समय वह पास पड़ी कुर्सी पर बैठ न जाती तो आश्चर्य नहीं था कि वह गिर पड़ती। कोई एक मिनट पीछे जब प्रकृति कुछ स्थिर हुई, तो उसे आश्चर्य हुआ कि पत्र में क्या भरा पड़ा है, जिसने पढ़ने से पूर्व ही यह असर कर दिया।

इसके बाद वह इस लिफाफे को होठों से लगाकर हृदय पर रख रही थी, परन्तु हृदय पर रखने के साथ ही व्याकुलता और बढ़ गई और उसने उसे खोलना ही उचित समझा।

खोलने पर अन्दर एक और लिफाफा दिखाई दिया, जिसके अन्दर वह कागज था जो इतनी तहों के अन्दर से मस्तिष्क के अन्दर हलचल मचा रहा था।

राजकुमारी ने इसे बाहर निकाला और पढ़ने से पहले एक बार फिर हृदय पर रख लिया परन्तु मनमें ठंडक कैसे पहुंचती, वहां पर तो इस समय एक अद्भुत अग्नि धधक रही थी। कदाचित् शब्द शान्ति देने का कारण हों, इस विचार से उसे पढ़ने का साहस किया। उसमें लिखा था :—

"प्यारी रुक्शाना!

मैं नहीं जानता कि तुम्हारे मन में मेरे लिए कोई याद बाकी है या नहीं। अतएव यह पत्र लिखता हुआ हिचकिचा रहा हूं, जिसे मैं इसके लाने वाले के हाथ इस शर्त से सपुर्द कर रहा हूं कि यदि वह कोई ऐसा कारण देखे जिससे इस पत्र का तुम्हारे हाथों में पहुंचना उचित न हो तो इसे फाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर दे। इस लिये मैं इस समय तक यह भी नहीं कह सकता कि यह तुम्हारे हाथों में पहुंचेगा या नहीं।

परन्तु यदि यह तुम्हारे पास पहुंच जाए और तुम्हारे वह सुनील सुन्दर नेत्र—जिन्होंने अपने जादू से मुझे मुग्ध किया था,

हां, जिनके द्वारा तुम्हारी आत्मा ने मेरी आत्मा को देखा था—इसे पढ़ें तो मैं केवल यही कहूंगा कि मेरी आत्मा के यह दोनों शीशे तुम्हारी मनमोहिनी छबि के दरस के प्यासे हैं, पूरे पन्द्रह वर्ष से प्यासे हैं, परन्तु निष्फल!

प्यारी रुक्शाना! मुझे इस शब्द (प्यारी) के लिये क्षमा कर देना। "जीना है तो तुम्हारे साथ और मरना है तो तुम्हारे साथ" तुम्हारे यह शब्द आज तक मेरे कानों में उसी तरह गूंजते हैं, जिस तरह से वह चन्द्रभागा के गर्जते हुये जल-प्रवाह में गूंजते थे। क्या इनके अन्दर कोई सच्चाई है अथवा केवल तत्कालीन जोश का परिणाम था?

प्यारी! उस समय, जबकि साकल देश के वनों में हमारी आत्माओं ने एक दूसरे को पहचाना था, मैंने तुम्हें तृषित नेत्रों से बिदा किया था; क्योंकि उस समय मेरा देश, मेरी जन्म-भूमि जिसकी मिट्टी से यह शरीर बना है—हां, जिसने इस अमर आत्मा को लपेटने के लिये यह पार्थिव शरीर प्रदान किया है, मुझ से यह बलिदान चाहती थी।

उस समय मैंने अपने सबसे प्यारे भाव का इस देश की सेवा के अर्थ बलिदान दिया और परमात्मा को बारम्बार धन्यवाद है कि मेरा बलिदान निष्फल नहीं गया; क्योंकि अब मेरा देश स्वतंत्र है, स्वतत्र ही नहीं प्रत्युत एक सूत्र में पिरोया हुआ है। भारत माता ने प्रसन्न होकर इस समय मेरे निछावर किये हुए सुख मुझे वापस दे दिये हैं; मेरे सुख और आनन्द के कटोरे को पूर्ण करने के लिये अब केवल तुम्हारे प्रेम की आवश्यकता है, जिसकी खोज में मेरी आत्मा चिरकाल से घूम रही है।

प्यारी रुक्शाना! क्या वह मुझे मिलेगा या मैं उससे वंचित रहूंगा? नहीं, कोई आवाज मेरे कानों में कह रही है कि

संसार की कोई शक्ति तुझे इससे वंचित नहीं रख सकती; परन्तु मनुष्य अविश्वासी है, वह चाहता है कि इसके विश्वास का कोई समर्थन करे। प्रिये ! क्या तुम अपने मुख से मेरी आत्मा की आवाज का समर्थन करोगी ?

प्यारी रुक्शाना ! तुम्हारा वृषल तुम्हारी माधुरी छवि को फिर देखना चाहता है और कदाचित् परमात्मा उसी की इच्छा को पूर्ण करने के लिये तुम्हारे पिता को भारत चलने के लिये उद्यत कर रहा है। मैं तुम्हें यह नहीं कहता कि उसे इससे रोकने का प्रयत्न करो; क्योंकि प्रत्येक काले बादल के अन्दर बिजली चमकती है जो बता जाती है कि घटाटोप अंधकार में भी प्रकाश प्रगट हो सकता है; परन्तु मैं विश्वास करता हूँ कि तुम मेरी कठिन स्थिति को समझती हो, जिसे रुक्शाना का दास होते हुये उसके पिता के विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ेगा। अच्छा, जो हो।

प्यारी, मैं जानता हूं, मैं ही नहीं प्रत्येक नीतिनिपुण पुरुष जानता है कि भारत का दूत-मण्डल अपने उद्देश्य में अकृतकार्य रहेगा, अतएव मैं उस घड़ी की बड़े चाव से प्रतीक्षा कर रहा हूं, जब तुम्हारे पवित्र चरण-कमल मेरी मातृ-भूमि पर फिर से पड़ेंगे, जिसकी धूलि मेरे लिये प्रथम पूज्य है। प्यारी ! तुम्हारा वृषल सिपाही है, बहुत शब्द लिखने की सामर्थ्य नहीं रखता, इसलिये इतने से ही उसके मन की दशा का अनुमान कर लो, जो तुम्हारी स्मृति को कभी नहीं भूलता। और बातों को, यहां तक कि परमात्मा के चिन्तन को भी भूल जाए, परन्तु तुम्हें नहीं भूल सकता"।

तुम्हारी प्रेममयी माधुरी मूर्ति को नेत्रों के सम्मुख देखता हुआ—

तुम्हारा—वृषल

रुक्शाना ने पत्र को पढ़ा। पढ़ने के साथ ही जलते हुये हृदय ने जल का एक फव्वारा ऊपर को उछाल दिया, जिसने निकलने के लिये नेत्रों का रास्ता ढूंढ़ लिया। राजकुमारी ने दोनों हाथ मुख पर रख लिये, क्योंकि नेत्र जल से परिप्लुत थे। यही वस्तु थी, जिसकी प्राप्ति के लिये वह पन्द्रह वर्ष से व्याकुल हो रही थी।

सोलहवां परिच्छेद

दुर्ग-रचना

लोग संसार में जब सुख और सौभाग्य की पराकाष्ठा का नमूना ढूंढते हैं तो उसे राजा व महाराजा कहकर अपने विचारों को प्रकट करते हैं। परन्तु क्या सचमुच राजा लोग सुखी और सौभाग्यवान् होते हैं? यह प्रश्न ऐसा है जिसका उत्तर कोई राष्ट्रपति ही दे सकता है, तो भी संसार के बड़े बड़े विद्वानों ने इस पर जो विचार प्रकट किये हैं वह विचारणीय हैं।

करोड़ों मनुष्यों के पूज्य हजरत मुहम्मद साहब कहते हैं, "खुदा ने जितने नबी पैदा किए हैं, गरीब लोगों में से ही पैदा किए हैं।" क्यों? क्या सचमुच परमेश्वर को धनवानों से घृणा है, जो करोड़ों मनुष्यों का खुदावन्द मसीह उच्च स्वर से पुकार कर कह रहा है? "निस्सन्देह एक ऊंट का सूई के नाके में से गुजरना आसान है, इसकी अपेक्षा कि एक धनवान परमेश्वरके राज्य में दाखिल हो।"

यह आध्यात्मिक संसार की बातें हैं, जिनमें उपरोक्त दो महा-पुरुषों की सम्मति के अनुसार एक धनवान (राजा) का प्रवेश पाना कठिन है।

परन्तु, क्या इस प्रपञ्चमय जगत् में एक धनवान को बड़ाई प्राप्त है? सरल दृष्टि से देखने वाले साधारण लोग इसके उत्तर में तुरन्त "हां" कह देंगे; परन्तु वह जिनकी दृष्टि सूक्ष्म है, कुछ और देखते हैं।

संसार के अन्दर रहते हुए मनुष्य के मन की प्रसन्नता के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, उनमें सबसे आवश्यक वस्तु आरोग्यता है। परन्तु क्या धन आरोग्यता को खरीद सकता है?

सर रिचर्ड टैम्पल साहब कहते हैं, "धनवान मनुष्य यदि आरोग्यता चाहता है तो उसे निर्धन मनुष्य का सा जीवन बनाना होगा।"

तो क्या धन प्रेम और प्रीति को खरीद सकता है? इसका उत्तर एक अंग्रेज फिलास्फर ने क्या ही अच्छा दिया है—वह कहता है कि "प्रेम वह वस्तु है जिसे संसार का सारा धन भी नहीं खरीद सकता किन्तु जो बिना मोल के मिल जाता है। सारे संसार का राज्य उसे प्राप्त करने में असमर्थ है, परन्तु एक दृष्टि उसका मूल्य है।"

चीन का महात्मा कन्फ्यूशस कहता है, "नवाब सी अनन्त धन-सम्पत्ति रखता था, परन्तु कोई मनुष्य उससे प्रेम नहीं करता था, पाई को भूखा मरा परन्तु आज तक लोग उसके शोक से शोकातुर हैं?"

बरमी भाषा में एक कहावत है, "मन के विचार मनुष्य का धन है।"

निस्सन्देह जिसके पास यह विद्यमान है, वह उन गिल्ट हुए धनवानों से सहस्र गुना अच्छा है, जिनके अन्दर यदि तुम घुसकर देखो तो कङ्गाल से कङ्गाल मनुष्य से भी अधिक दुःख कष्ट, शोक और विपत्ति के अम्बार दिखाई देंगे।

लार्ड बेकन का कथन है कि "बड़ी बड़ी सम्पत्तियों के स्वामी अपने आपसे अजनबी हो जाते हैं, काम की व्यग्रता में आत्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता।"

हमारा हीरो वृषल इन सब बातों को समझता है अनुभव करता है; परन्तु यह सब होने पर भी उसके पास उनका कोई उपाय नहीं। उसने वह समय देखा है, जब कि सांय काल के समय सरोवर के तट पर कटि बन्ध खोले लेटा हुआ वह अपने विचार में मग्न हुआ इस प्रपंचमय जगत् को भूल जाता था और स्वामिभक्त घोड़ा पास उगी हुई घास पर मुंह मार अपनी क्षुधा को निवृत्त करता था। हां, जबकि उसे अपनी और अपने इस स्वामिभक्त साथी की आवश्यकताओं के अतिरिक्त और कोई चिन्ता न होती थी। किन्तु आज......हां, आज करोड़ों मनुष्यों के प्राणों की चिन्ता उसे व्याकुल कर रही है। लोग इस समय सुख से अपने अपने गृहों के अन्दर बाल-बच्चों के साथ बैठे हुए आनन्द से आमोद-प्रमोद में लग रहे हैं; परन्तु वह इस समय घर से बेघर हुआ उन किलों की देखभाल कर रहा है, जो प्रजा को बाह्य और आभ्यन्तरिक शत्रुओं के हाथों से सुरक्षित रखने के लिये देश के चारों ओर बनाए जा रहे हैं। आओ, हम भी तो देखें कि इन किलों की रचना किस तरह से हुई है।

यह किले देश के चारों कोनों पर, वनों में, पर्वतों पर, बड़ी नदियों के मध्य में तथा अन्य आवश्यक स्थानों पर बनाए गए हैं। उनमें से बहुतों के अन्दर दाखिल होने के लिए पहले तो तीन प्राकारों को पार करना आवश्यक है, जिनमें से हर एक एक दूसरे से एक दण्ड (६ फीट) की दूरी पर खोदा गया है। प्रत्येक प्राकार की चौड़ाई १४, १२, और १० दण्ड और गहराई चौड़ाई की अपेक्षा $\frac{1}{8}$ व $\frac{1}{2}$ न्यून है, नीचे से प्राकार चौकोन हैं, परन्तु ऊपर आते आते तृतीयांश चौड़े रह गए हैं, प्राकार पक्के और जल से भरपूर हैं।

सबसे अन्दर के अन्तिम प्राकार के चार दण्ड (८ गज) के अन्तर पर ऊंची मिट्टी का एक दमदमा है, जिसकी ऊंचाई

६ दण्ड और चौड़ाई १२ दण्ड है। इस दमदमे को कूट कूटकर बहुत मजबूत बनाया गया है और कंटकमयी तथा विषैली झाड़ियों के साथ भलीभांति सुरक्षित किया गया है। बीच में जहां जहां रखने हैं उन्हें नयी मिट्टी के साथ बराबर किया गया है।

दमदमे पर एक दूसरे से १२ से २४ हाथ के अन्तर पर पक्के कंगूरे बनाए गए हैं, जिनकी ऊंचाई चौड़ाई से दुगनी है।

रथों के लिये रास्ता पत्थर की मोटी और चौड़ी शिलाओं का बनाया गया है, जिन पर बन्दर के शिर की भांति गोल रेखाएं खींची गई हैं, तथा चौकोन बुर्ज जहां-तहां बनाए गए हैं, जिनके साथ सीढ़ियां लगी हैं, उन्हें इच्छानुसार उतारा जा सकता है। दो दो बुर्ज के बीच के स्थान में तीस दण्ड के अन्तर पर एक खुली सड़क दो भागों में बनाई गई है, जिसके ऊपर छत डाली गई है।

बुर्ज और उस सड़क के मध्य में इन्द्रकोष बने हैं, जिनमें तीन तीन धनुषधारी निर्विघ्न बैठ सकते हैं, क्योंकि उनके ऊपर लकड़ी के तख्ते डालकर उन्हें एक चोबीघर के समान बना दिया गया है, जिसके ऊपर छत डाली गई है।

दमदमे के एक ओर सुरक्षित और गुप्त स्थल पर प्रधावतीक (भागने के लिए मार्ग) और एक निष्कर द्वार (चोर दरवाजा) विद्यमान है, ताकि समय-कुसमय काम आवे।

इस दमदमे के बाहर की ओर जिसे इस समय में प्राचीर कहा जा सकता है, जानुभंजनी, त्रिशूल कांटे, खाइयां, सर्प के पुच्छ के सदृश शस्त्र बखेर कर उन्हें रेत से ढांप दिया है।

कंगूरों के मध्य में एक गहरा कंवल तालाब है, फिर चार कमरों का (जो एक दूसरे के अन्दर बने हैं) एक चौकोना भवन,

कुमारीपुर और एक गोल इमारत है तथा शस्त्रागार के सुरक्षित रखने के लिये कुल्या (नहरें) बनी हैं।

इन कुल्याओं में पत्थर, कुदाल, कुठार, लाठियां मुसरंठी मुद्गर, चक्र, यंत्र, शतघ्नी (तोपें) खड्ग, त्रिशूल, तलवार, गँड़ासे, अग्निसंयोग, और सब प्रकार के शस्त्र इकट्ठे किये गये हैं।

प्राचीर के अन्दर प्रवेश करने पर किले के अन्दर एक भारी शहर की चहल-पहल दिखाई देती है। तीन राजकीय सड़कें तो पश्चिम से पूर्व को और तीन दक्षिण से उत्तर को गई हैं।

किले के १२ द्वार हैं, जिनके अतिरिक्त एक अन्ध और एक जलीय (चोर) द्वार है।

रथों के चलने के लिए सड़कें तथा राजपथ, द्रोणमुख, स्थानीय गांव और वनकी ओर जाने वाली सड़कें चार चार दण्ड चौड़ी हैं, यही चौड़ाई वनों और बगीचों की ओर जाने वाली सड़कों की है। परन्तु हस्ति-वनों की ओर जाने वाली सड़कें इससे आधी अर्थात् दो दो दण्ड चौड़ी हैं।

चारों वर्णों के मकानों के मध्य में राजकीय प्रासाद तैयार किये गए हैं।

प्रत्येक कर्म और प्रत्येक श्रेणी के लोगों के लिए न्यारी न्यारी दिशाएं नियत कर दी गई हैं और प्रत्येक दुर्ग के अन्दर तेल, अन्न, खांड़, लवण, औषधियां, सूखी और हरी तर्कारियां, घास, लकड़ी, धातुएं, कोयला, ईंधन, स्नायु, विष, सींग, बांस, वस्त्र, शस्त्र इत्यादि आवश्यक सामग्री का इतना भारी भण्डार एकत्रित कर दिया गया है कि घेरा पड़ जाने पर वर्षों तक काम आ सके।

——:※:——

किं बहुना, प्रत्येक दुर्ग अपने अपने स्थान पर एक ऐसा नगर है जो अपनी आवश्यकताओं को वर्षों तक पूरा कर सकता

है। महाराज वृषल और गुरुदेव चाणक्य अपने नेत्रों से सब कुछ जांच-पड़ताल करके रद्दी और निरर्थक वस्तुओं को फिंकवा कर उनके स्थान में नवीन वस्तुएं रखवा रहे हैं और बनावट की त्रुटि को दूर करवा रहे हैं जिससे कि उनकी बनावट की दृढ़ता और सामग्री की संप्राप्ति में कोई कसर न रहे।

यह प्रत्येक राजा और उसके मन्त्रियों का प्रधान कर्त्तव्य है, जिस पर उस राज्य की रक्षा निर्भर है; परन्तु वृषल के समान कितने राजा हैं जो इन कर्मों को मन लगा कर करते हैं।

हमारे हीरो ने चाणक्य की पाठशाला में शिक्षा पाई है, उसने आज तक कोई कार्य अधूरा करना सीखा ही नहीं, अतएव इसे किलों की देख-भाल करने दो, यह हमारे मनोरञ्जन की सामग्री नहीं। आओ, इतने अवसर में हम पता लगाएं, हमारे मित्र पण्डित इन्दुशर्म्मा की दूत-परिषद् क्या काम कर रही है।

सत्रहवां परिच्छेद

भारतवर्ष का सच्चा परिचय ।

सम्राट् सैल्यूकस के कथनानुसार उसके मन्त्री और अन्य दर्बारीगण दूत को भोज पर भोज दे रहे हैं, क्योंकि वह चाहते हैं कि उसके मुंह से भारत-दूत-परिषद् के सम्बन्ध में जो कुछ भी परिचय मिल सकता हो, प्राप्त कर लें; परन्तु इन्दु शर्म्मा चाणक्य के शिष्य हैं, जिनकी ओर से प्रस्थान के पूर्व उन्हें यह शिक्षा मिली थी कि—

"सावधान ! स्त्री और मदिरा से बचना, शयनागार में अकेले सोना, क्योंकि मद्यप होने से अथवा स्वप्न में बकवाद करने से कई मन्त्री अपने भेद को शत्रु को दे बैठे हैं"

सैल्यूकस के मन्त्रीगण उनके मुख से कोई सच्चा परिचय प्राप्त करने के लिए उनकी योग्यता पर मानों मोहित होकर उनके चारों ओर बैठे हैं। सुतरां वह देखिए, पेट्रोक्लीम के यहां भोज में उसके एक प्रश्न के उत्तर में वे कैसा अमूल्य परिचय दे रहे हैं। तनक सुनिए—

"मेरे पूजनीय मित्रों ने मुझ से पूछा है कि मेरे देश में कैसे कैसे लोग बसते हैं ? यद्यपि एक ऐसे मनुष्य के लिये, जो एक राजनैतिक मिशन के साथ आया है, इस प्रकार का परिचय देना अनुचित है, तो भी आप लोगों ने मेरे साथ श्लाघनीय व्यवहार

किया है, इसलिए आपके प्रश्न का उत्तर न देना भी उचित नहीं, अतएव मैं आपकी इच्छा को पूर्ण किये देता हूं।

मुझे शोक है कि जिस उद्देश्य को लेकर मेरी दूत परिषद् इस देश में आई थी, उसमें अभी तक सफलता की कोई आशा नहीं, अन्यथा यदि वह शुभ अवसर आ जाता, जिसे शीघ्र लाने के लिए मैं इतनी दूर की यात्रा करके यहां आया हूं, तो मैं आपको अपने देश की जातियां दिखला सकता, जिनका अभी वर्णन करने को मैं बाध्य हुआ हूं। क्योंकि सचमुच और निस्सन्देह यह बातें वह हैं, जिन्हें सुनकर कोई भी मनुष्य सहज में विश्वास नहीं कर सकता; परन्तु मेरा देश विचित्र पदार्थों से भरा है, वहां वह पदार्थ विद्यमान हैं, जो संसार के किसी देश में नहीं।

हां, तनक अपनी विश्वास-शक्ति को खुला छोड़ दीजिए ताकि वह यह मान सके कि मेरे देश के अन्दर ऐसे लोग भी विद्यमान हैं जिनमें कोई १। गज और कई ।।। गज ऊंचे हैं। (सुनने वाले "तअज्जुब" "तअज्जुब") हां, अनेक ऐसे हैं जिनके नाक होती ही नहीं। मुंह के ऊपर दो छेद होते हैं, जिनसे वे सांस लेते हैं। फिर आप हैरान होंगे, पश्चादाङ्गुलुज लोग हैं, जिनके पांव की एड़ियां आगे को और अंगूठे पीछे की ओर होते हैं। आप हैरान न हों। मैं कोई कहानी नहीं कह रहा हूं, क्योंकि उन में से कई लोग महाराज श्री चन्द्रगुप्त के दर्बार में लाए गए थे।

ऐसे लोग भी हैं जिनके मुंह ही नहीं हैं। यह लोग उस स्वर्गीय नदी के स्रोत के निकट मिलते हैं, जिसे गङ्गा के नाम से पुकारते हैं। यह लोग केवल गन्धि सूंघ कर पेट भर लेते हैं।

इसी प्रकार एक ऐसी जाति है, जिसे हम लोग एकपाद कहते हैं। उनके केवल एक ही पांव होता है, परन्तु भागने में इतने तेज हैं कि घोड़ा भी उन्हें पकड़ नहीं सकता।

एक और जाति है, जिसके कुत्ते जैसे कान और आंख मस्तक के बीच में होती है, उनके सिर के बाल सीधे खड़े होते हैं और छाती पर गुच्छेदार बाल होते हैं।

एक जाति ऐसी है जिसके कान पांव तक लटकते हैं, इतने लम्बे कि उनके अन्दर सो सकते हैं। उस जाति के बल का क्या कहना है, हाथ के झटके से वृक्षों को जड़ से उखाड़ देते हैं। खैबरपुरी के लोग सहस्र वर्ष तक आयु पाते हैं।

यह और इसी प्रकार की सैकड़ों जातियां मेरे देश में बसती हैं, जिन्होंने आज तक किसी बाह्यशत्रु का मुख तक नहीं देखा और कदाचित् उनका ज़िक्र करने से यह समझा जाएगा कि मैं आप लोगों को धोखा दे रहा हूं, अतएव मैं केवल यह बात करके इस विषय को समाप्त कर देना चाहता हूं कि पूर्वीय सीमा के पर्वतों में "दरद" जाति के देश में स्वर्ण की खाने हैं। यहां वह चिउंटियां पाई जाती हैं जो स्वर्ण खोदती हैं। हम उस स्वर्ण को "पपीलक" कहते हैं। बताने वाले बताते हैं कि यह चिउंटियां आपके यहां की जङ्गली लोमड़ी के बराबर आकार रखती हैं। अत्यन्त वेग से भागती हैं और आखेट पर निर्वाह करती हैं।..."

पेट्रोक्लीस—(बात काट कर) तो वे सोना कब खोदती हैं?

इन्दु—शीतकाल में, सोना खोदते समय वे मिट्टी के ढेर खान के मुंह पर फेंकती जाती हैं, जिन्हें आस-पास के लोग चुपके से जानवरों पर लादकर ले जाते हैं। किन्तु चिउंटियां उन्हें देख पाएं तो झुंझला कर आक्रमण कर दें। इसलिए ये लोग गुप्त रूप से कई स्थानों पर जङ्गली जन्तुओं का मांस रख देते हैं और जब उसकी गन्ध पाकर चिउंटियां उधर भागती हैं तो चुपके से अपना काम कर लेते हैं।

सब के सब सुनने वाले—तअज्जुब! हैरत! क्या यह सच है?

इन्दु—मैं फिर कहता हूं कि आप लोग मुझे मेरे उद्देश्य की सिद्धि में सहायता दीजिए, मैं ईश्वर के लाखों अमृत-पुत्रों के प्राण बचाना चाहता हूं; क्योंकि परमेश्वर के बनाए हुए इस मन्दिर को तोड़-फोड़ कर नष्ट कर देना सुगम है, परन्तु एक मनुष्य को फिर जीवित कर देना वह काम है, जिसे सारे संसार के छोटे और बड़े लोग मिलकर नहीं कर सकते।

आप मेरी सफारत को कामयाब बना दीजिए, आर्य्य और यवन जातियों में मिलाप हो जाए। आप भी मेरे अतिथि हों, जिस प्रकार कि आज मैं आपका अतिथि हूं। मैं आपको भारत की सैर कराऊं और फिर आपको पता लग जाए कि जो कुछ मैंने कहा है, वह सत्य का अंशमात्र भी नहीं है।

सब के सब—बिला शुबह आपका मिशन एक मुबारक मिशन है; लेकिन इसमें कामयाबी सिर्फ शाहंशाह की मर्जी पर इनहसार रखती है, ताहम आपने जो कुछ बताया, वह निहायत तअज्जुब खेज़ है और शायद असलियत इससे भी तअज्जुब-खेज हो।

इस प्रकार का "सच्चा" परिचय है, जिसे बतला कर हमारे मित्र ने यवनमन्त्री और सैनिक नायकों के हृदयों पर आसन जमा लिया है।

और जब यह खुले बन्दों इस प्रकार अपने देश के विषय में परिचय देते हैं तो कोई कारण नहीं कि प्रति-पक्षियों की ओर से उनके साथ वैसा ही व्यवहार न हो। इसके अतिरिक्त उनके गुप्तचर भी इस समय शत्रु के देश में पूरे चातुर्य्य से काम कर रहे हैं। यही कारण है कि उन्हें इस थोड़े से अवसर में सैल्यूकस की सम्पूर्ण युद्ध सम्बन्धी तैयारियों का नहीं वरन् उसके देश के समस्त दुर्ग, नगर, सीमा और बनों के सम्बन्ध में भी उचित परिचय मिल चुका है।

परन्तु इस परिचय से अधिक मूल्यवान हृदयों का शासन है, जिसे वह यूनानी सर्दारों के अन्दर प्राप्त कर चुके हैं, एक नहीं, वरन् बहुत से यवन सर्दार उनकी मित्रता का दम भर रहे हैं और उनमें पेट्रोक्लीम तो उनका भक्त ही बन चुका है।

अठारहवाँ परिच्छेद

दूत-मण्डल का प्रत्यागमन

महाराज वृषल देश की सुरक्षा के लिए जहां-तहां घूम रहे हैं। उनका यह दौरा एक प्रकार से सारे देश के हिसाब-किताब और कारोबार की पड़ताल है क्योंकि जहां तहां से उनकी सवारी गुजरती है, वह एक एक गांव, नगर, वन, नदी, खान अर्थात् राज्य के प्रत्येक विभाग के अधिकारियों के कागजों की अपनी आंखों से जांच-पड़ताल करते और लोगों के कष्टों को सुनते हुए उन्हें दूर करने का प्रबन्ध करते चले जा रहे हैं। यही कारण है कि घर घर में उनका नाम गूंज रहा है। देश का एक एक बालक प्यारे वृषल के नाम को आदर और श्रद्धा से लेता है। गांव और कसबे में, जिधर से महाराज का गुजरना होता है, बूढ़ी बूढ़ी स्त्रियां हाथों में जयमाला लिए उन्हें आशीर्वाद देने को इस प्रकार तैयार रहती हैं, मानों उन्हें अपना बालक समझती हों। और जिस समय वह सिर झुकाकर उनकी श्रद्धा के फूल स्वीकार करते हैं तो उनमें से कई एक के आंसू निकल आते हैं।

वृषल के इस दौरे ने देश में प्रेम की एक ऐसी धारा बहा दी है, जिसकी उपमा जगत् के इतिहास में कदाचित् ही कहीं देखने में आई होगी। यही कारण है कि इस विस्तृत राज्य का एक एक व्यक्ति, जहां उनका पसीना गिरे, अपना रक्त बहाने को उद्यत है।

एक एक गांव में अनाथ, बूढ़े, रोगी और अपाहज लोगों की आजीविका राज्य की ओर से लगी हुई है। असहाय और बिधवा

स्त्रियों तथा उन स्त्रियों के खर्चे, जो गर्भवती हैं परन्तु प्रसूत के खर्च को सहन करने में असमर्थ हैं, सरकार की ओर से बन्धे हुये हैं, जन्म के पश्चात उनके बालकों का पालन-पोषण और शिक्षा का प्रबन्ध भी राजा ने अपने सिर ले रखा है।

देश के अन्दर कृषकों के लाभ में जहां-तहां नहरें खुदवाकर देश को अदेवमातृक बना दिया है। नहरों में से सर्कारी खर्च पर सेतु बनाए गये हैं। जहां गवर्नमेन्ट ऐसा नहीं कर सकी वहां पर अपने आप सेतु बनाने वालों को लकड़ी, भूमि तथा अन्य आवश्यक सामग्री देने का बोझ सरकार ने अपने सिर ले रखा है।

निदान प्रजा के सुख और ऐश्वर्य्य की खातिर सम्पूर्ण पदार्थ विद्यमान हैं। बाहर के शत्रुओं से उनकी रक्षा के लिए तो प्रत्येक गवर्नमेन्ट ही प्रबन्ध किया करती हैं, परन्तु उसके दुख में दुख और सुख में सुख अनुभव करने वाली गवर्नमेन्ट का नाम यदि किसी सरकार को दिया जा सकता है तो वह वृषल की गवर्नमेन्ट है।

वागरीक (वन्य जन्तु पकड़ने वाले), शबर (बाण चलाने वाले) पुलिन्द (आखेटक), चाण्डाल और अरण्यचारी जातियां, जो आज कल जरायम पेशा प्रसिद्ध हैं, उन दिनों जङ्गलों की रक्षा पर नियुक्त थीं।

खान से धातुएं निकालना और उनसे अनेक प्रकार के कला-कौशल को वृद्धि देना, जङ्गलों और वनों को साफ करना, व्यापार और कृषि की अड़चनों को दूर करना, उपवन और गोचर-भूमियां तैयार करना, सड़कों और जल मार्गों का प्रबन्ध करना, स्थान स्थान पर पत्तन (मण्डियां) बनवाना, इन सब कार्यों का भार राज्य ने अपने सिर पर ले रक्खा था।

निदान वृषल की गवर्नमेन्ट एक ऐसी गवर्नमेन्ट थी, जिसका उद्देश्य प्रजा के दुख को दूर करना और उसे सुख से जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाना था। प्रजा भी इस बात से भलीभांति परिचित थी। इस कारण वह अपने राजा और उसके मंत्रियों पर प्राण तक निछावर करने को तैयार थी। देश के डाकुओं और बटमारों का बीज नाश हो चुका था; क्योंकि चाणक्य के गुप्तचर स्वयं चारों ओर डाकुओं का वेश बनाकर, उनके गुप्त स्थलों का पता लगाकर उन्हें नष्ट कर चुके थे। देश सुखी था और राज्य के अफसर शासक होने के स्थान में प्रजा के सेवक थे।

महाराज का पड़ाव तक्षक-शिला के निकट पड़ा है। आसपास के स्थानक* (जिलाधीश) विद्यमान हैं और अपने अपने प्रान्त के गोप (पटवारी) लोगों के कागजात पेश कर रहे हैं। महाराज उन कागजातों की प्रोद्दष्टार (कमिश्नर) की रिपोर्ट और गुप्तचरों की दी हुई सूचनाओं से तुलना करते हुए, जहां अन्तर प्रतीत होता है उसकी पड़ताल करके कई स्थानों पर भूमि-कर को क्षमा करने और स्थानों पर उसे घटाने-बढ़ाने की आज्ञाएं दे रहे हैं। आस पास के लोग उपस्थित हैं और राजा के दर्शन और अपनी चिरकाल से दबी हुई इच्छाओं को प्रकट करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर रहे हैं।

इतने में एकाएक पता मिलता है कि पण्डित इन्दु शर्म्मा

*आठ सौ गांव के अन्दर एक स्थानक हुआ करता था, चार सौ गांव के अन्दर एक द्रोणमुख, दो सौ गाँव के अन्दर एक खार्वोटक और दस गाँव के अन्दर एक संग्रहण। उन्हें आज-कल के जिला और तहसील के प्रतिनिधि समझा जा सकता है।

बाबलपुरी से वापस आ गए और महाराज के दर्शनों के इच्छुक हैं।

आज्ञा मिल गई और हमारे मित्र इन्दु शर्मा ने महाराज के चरणों में पेश होकर साष्टांग प्रणाम करके कहा, "महाराज की जय हो।"

वृषल—कहो इन्दु! तुम्हारी यात्रा का क्या परिणाम रहा?

इन्दु—महाराज जो कुछ कहा था, अक्षरशः सत्य निकला।

वृषल—अर्थात्?

इन्दु—प्रताप*!

वृषल—प्रताप?

इन्दु—हां महाराज!

महाराज वृषल—(उपस्थित सभ्यों को लक्ष्य करके) आप सबने सुन लिया, इन्दु शर्म्मा ने क्या कहा है?

उपस्थित लोग—हां महाराज सुन लिया।

महाराज—यवन राजा के हृदय में हमारे पवित्र विचारों का कोई मूल्य नहीं, वह जगत् के अन्दर रक्त का सागर बहाने पर तुला हुआ है। माता वसुन्धरा एक बार फिर शूरवीरों का रक्त पीकर अपनी पिपासा बुझाना चाहती है। आकाश पर घटा-टोप अन्धकार फैलना चाहता है, जिसे आप लोगों के खड्ग के अतिरिक्त और कोई दूर नहीं कर सकता।

उपस्थित लोग—महाराज, यवन राजा के प्रताप *(अल्टीमेटम) को भारत स्वीकार करता है। हम लोग अपने रक्त से उसका उत्तर देंगे।

---

*प्रताप-(लड़ाई के लिए चैलेञ्ज)

वृषल—मुझे तुम से यही आशा थी—भारत अपने एक एक सपूत से यही आशा रखता है कि वह जगत् के अन्दर अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ, उसके सिर को ऊंचा करने का प्रयत्न करेगा। अतएव मेरी यह इच्छा है कि स्थान स्थान के स्थानक अपने अपने हाथों में यह कार्य लें कि नगर नगर और ग्राम ग्राम में भारत की प्रजा को यह ज्ञान हो जाय कि उनके देश पर आपत्ति आ रही है, उनके देश पर यवन लोगों का दूसरा आक्रमण होनेवाला है। राज्य उसे निष्फल करने का यत्न करेगा, परन्तु इसमें प्रजा की सहानुभूति अत्यावश्यक है। अतः एक एक व्यक्ति, हां, राज्य का एक एक पुरुष और एक एक स्त्री यह समझ ले कि यवन-आक्रमण देश पर नहीं, राजा पर नहीं; प्रत्युत उसके अपने गृह पर है, जिसकी रक्षा उसके लिऐ अत्यावश्यक है।

उपस्थित लोग—महाराज की आज्ञा राज्य के एक एक नर-नारी तक पहुंच जाएगी।

दर्बार के लोग विदा हुए। अब महाराज वृषल और इन्दु-शर्म्मा अकेले थे। इस समय महाराज ने एक सारगर्भित दृष्टि से अपने साथी की ओर देखा। उसकी यह दृष्टि मानों किसी वस्तु को ढूंढ़ रही थी। इन्दु शर्म्मा ने उसके उत्तर में आदर से सिर झुकाकर अपने पत्रों में से एक रेशमी खरीता निकाल कर उनकी भेंट किया, जिसमें वह वस्तु बन्द थी, जिसे महाराज अपनी प्रबल देश भक्ति के होते हुए भी कदाचित् अपने सारे राज्य से अधिक प्रिय समझते थे, क्योंकि यह उनके पत्र का उत्तर था जो यवन राजकुमारी ने अपने हाथ से लिखा था।

इन्दु शर्म्मा ने इस समय वहां से खिसक जाना उचित समझा, क्योंकि वह जानते थे कि महाराज इस समय एकान्त चाहते हैं।

अपने आपको अकेला पाकर महाराज ने उस रेशमी खरीते को हृदय पर रखा, फिर होंठों से चूंबन किया और खोलने से पहले एक बार फिर छाती से लगाया। आः! उस जड़ पदार्थ के अन्दर न जाने कौन सी बिजली भरी हुई थी, जो उनके जलते हुए हृदय को शीतल कर रही थी!

इस समय उनके मन में अनेक प्रकार के विचार उठ रहे थे, जिन्हें अन्दर ही अन्दर दबाकर अन्त में आपने उसको खोला तो अत्यन्त सुन्दर पत्र पर निम्नलिखित शब्द लिखे हुये थे:—

"मेरी जानोदिल के मालिक, मेरी जिन्दगी के अकेले आधार! क्या वक्त की रफ्तार प्रेम की आग को ठंडा कर सकती है? क्या सालों का गुजर जाना मुहब्बत की धधकती हुई ज्वाला पर ठंडा पानी बरसा सकता है? क्या आंखों से दूरी रूह को बदल सकती है? तुम्हारा ज़मीर ख्वाह इसका जवाब 'हां' में दे, मगर मेरा तजरुबा इसके बर अक्स है, तुम ख्वाह इस पर शक करो; लेकिन तुम्हारी रुक्शाना आज भी वही है, जो साकल के जगलों में थी। उसके वे अलफाज जो ऐक्सिनीज (चन्द्रभागा) के ठंडे पानी में कहे गए थे, महज उस वक्त के लिये ही नहीं थे; बल्कि यह एक रूह का दूसरी रूह को, नहीं, अपने आपके एक दूसरे हिस्से को पैगाम था।

पन्द्रह साल गुजर गए। ओः! इतना लम्बा अर्सा! लेकिन तुम्हारे प्यारे हाथ के लिखे हुए मुहब्बतनामे ने इस सारे लम्बे अर्से को एक लम्हे में तब्दील कर दिया है। तुम्हारी रुक्शाना अब भी तुम्हारी ही रुक्शाना है और अगर तुम उसे न भी अपनाओ, तो भी तुम्हारी ही रहेगी। वृषल! घटाटोप अन्धेरे के बाद बिजली चमकती हुई दिखाई देती है। अषाढ़ का कड़ाका गुजर

गया है, अब वर्षाकाल की आमद है। अमावस की अंधेरी रात के बाद दूर उफ़क पर एकम का चन्द्र दिखाई दे रहा है। मेरी आंखें अब्बाजान की मुहिम के अन्दर खुदाई हाथ को काम करता देखती हैं; लेकिन दिल में कई बार यह शक पैदा हो जाता है कि क्या सचमुच वह वक्त आएगा, जब मैं अपने प्यारे के दीदार कर सकूंगी ?

प्यारे ! इस शक के लिये मुझे माफ करना। पन्द्रह साल की जद्दो जहद ने मेरी बहुत सी उम्मीदों को कुचल दिया है, इसलिए अगर मैं कोई नई उम्मीद बनाती हुई हिचकिचाती हूं तो इसमें तअज्जुब नहीं। लेकिन क्या लश्कर की फौजकशी में, दो फौजों की जंग आजमाई में, सचमुच कोई ज़रिया ऐसा निकल आएगा, जिससे मैं तुम्हारे प्यारे चेहरे को देख सकूंगी ?

खुदावन्द खुदा बेनियाज है, उसकी हिकमतों का वारपार नहीं, इसलिए कुछ कहा नहीं जा सकता। उम्मीद बहुत बड़ी है, यह इस कमजोर जिस्म को मादी दुनियां से ऊपर उठा रही है। क्या यह पूरी होगी ? हां, मेरे अन्दर कोई आवाज़ यह कह रही है कि सच्चा प्रेम पहाड़ों को फोड़ सकता है, आहनी दीवारों को चकनाचूर कर सकता है। इसलिए कोई वजह नहीं कि हमारी दो रूहें जो एक दूसरी से हज़ारहा मील पर पड़ी होने पर भी शबोरोज एक दूसरी में मग्न रहती हैं, आपस में मिलने में कामयाब न हों। जब तक वह वक्त आए, आपसे जुदा, मगर हक़ीकत में आपके साथ,

मैं हूं जानोजिस्म दोनों में आपकी

"रुक्शाना"

शब्दों के इस समूह में क्या था, जिसे पढ़कर महाराज वृषल ने सिर पर रख लिया। इस समय उस वीर की, जो युद्ध-क्षेत्र में लाखों वीरों के सम्मुख खड़ा मुस्कुराया करता था, आंखें भीग रही थीं और हृदय वेग से फड़फड़ा रहा था, जिसे वह दोनों हाथों से दबा रहा था।

यह प्रेम था, यह प्रेम की सम्मोहिनी शक्ति थी।

उन्नीसवां परिच्छेद

असहाय की सहायता

प्रातःकाल का सुहावना समय है। भगवान् भास्कर शनैः २ पूर्व दिशा से सिर ऊंचा कर रहे हैं। उनकी मंद किन्तु मनोहर रश्मियां अटक के सनील सलिल के साथ खेलती हुई प्रतीत होती हैं। दूर फासले पर हिमालय की पर्वतमाला चांदी के पर्वतों के रूप में दिखाई देती हैं, चारों ओर जिधर दृष्टि जाती है एक दिव्य दृश्य दिखाई देता है, जिसके सौन्दर्य्य को स्वर्ग का पूर्ण चित्र बनाने के लिए एक दूसरी छवि भी दिखाई देती है, जो श्वेत वस्त्रों में विभूषित धीरे-धीरे अटक के तट पर टहल रही है।

यह कौन है? क्या स्वर्ग की कोई हूर है जो उषा के साथ ही आकाश से उतर आई है? नहीं, स्वर्गीय हूरों की सृष्टि अभी तक नहीं हुई। कम-से-कम भारत भूमि अभी तक उनकी कल्पना से शून्य है। हां, इस देश के कवियों के ख्याल में कुछ ऐसी स्त्रियां अवश्य हैं, जिन्हें वे स्वर्गीय "अप्सराओं का" नाम देते हैं।

तो क्या यह स्वर्ग की कोई अप्सरा है, जो इस क्षणिक दृश्य को पूर्ण करने के निमित्त उस काल्पनिक स्वर्ग भूमि से इस प्राकृतिक जगत् में भेजी गई है? कदाचित् ऐसा ही हो, क्योंकि इसका गौर वर्ण, छरहरा बदन और उस पर सफेद पोशाक, यह सारी बातें हमारे इस विचार का समर्थन कर रही हैं। परन्तु हाय! यह क्या हुआ? यह धड़ाम से जल में कौन गिरा? यह तो वही चंपकवदनी है, जिसे अटक का वेगवान जल अपने प्रवाह

में बहा ले चला है। यह क्या? और कैसे? अभी अभी हम क्या दृश्य देख रहे थे? अब कानों में चीखों की आवाज़ सुनाई देने लगी, हाय!

सोरठा

एक छिनक के बीच, एक घड़ी पल एक में।
अहो भयानक मीच, हुआ और का और है॥

अभी एक घड़ी पहले जो देवांगना इस सारे बन को अपनी माधुरी छवि से सुहावना बना रही थी, इस समय सिंधु के अगाध जल में डूब रही है। अरे! क्या कोई हाथ इसकी सहायता को नहीं बढ़ेगा? क्या कोई शक्ति इसे बचाने के लिए न पहुंचेगी? परन्तु इस निर्जन बन में कौन है जो इसे बचाए? सुदूर अन्तर पर यूनानी सेना पड़ाव डाले पड़ी है और उसके भय से मीलों तक लोग घर-बार छोड़-छोड़ कर जहां सींग समाए, पहुंच गए हैं, क्योंकि यूनानी युद्ध के नियम आर्य्यावर्त के युद्ध के नियमों से (जो नगर-निवासियों तथा कृषिकारों को कष्ट देना नियम-विरुद्ध समझते हैं), भिन्न हैं, इस लिए उसे सहायता कौन दे? कदाचित् हम इस काम के लिए आगे बढ़ सकते, परन्तु क्या करें, हमारा शरीर भी तो उस स्थान पर विद्यमान नहीं, केवल कल्पना-शक्ति ही उस पदार्थ को, जो हाथ पांव रखता है, जल के प्रवाह से बचा नहीं सकती। परमात्मा! तो क्या यह रजत मूर्ति, यह साक्षात् मोम की पुतली सिन्धु के भयानक वेगवान जल में डूब जाएगी और इस घटना का उसके माता-पिता को पता भी न लगेगा? हा! कौन जाने यह किसकी आंखों का तारा और किसके कलेजे का टुकड़ा है जो इस प्रकार असहाय दशा में वरुण देवता के गर्भ में पहुंच रहा है। कदाचित् सिन्धु को भी उसका प्यारा शरीर भला प्रतीत हुआ है जो उसने उसे उठाकर

कलेजे से लगा लिया है और अब वर्षों के वियोगी प्रीतम की नाईं उसे छोड़ना नहीं चाहता।

"धड़म्म" यह और क्या शब्द हुआ ? क्या कोई और मनुष्य मृत्यु की भेंट हुआ या कहीं से भूमि का कोई खण्ड जल में गिरा ? एं ! यह तो कोई पुरुष है जो लम्बे लम्बे हाथ मारता हुआ उस शरीर को जल के बन्धन से छुड़ाने के लिए बढ़ रहा है। लो ! वह उसके निकट पहुंच गया। अब देखते ही देखते उसे जीता-जागता जल से बाहर निकाल लाएगा, किन्तु......वह जल का रेला आया और उसे वापस बहा ले गया। परमात्मन् ! क्या सचमुच यह मूर्ति सिन्धु में निमग्न होने के लिए बनाई गई थी ?

परन्तु नहीं, "मारने वाले से बचाने वाला बलवान है" वह मनुष्य अथवा देवता जो परमात्मा की ओर से इस प्रकार असहाय को सहायता देने के लिए प्रगट हुआ है, हमारी-तुम्हारी तरह दुर्बल शरीर और मन वाला नहीं है। वह उन में से है जो समुद्र फाड़ने की शक्ति रहते हैं। देखो, उसके अतुल पराक्रम और घोर संग्राम को देखो। सिन्धु क्रुद्ध सर्प के समान फुंकार मारता और झाग उछालता हुआ उसे पीछे हटाने की चेष्टा कर रहा है, परन्तु वह सब प्रकार की कठिनाइयों से युद्ध करता हुआ अपने अभिप्रेत स्थान की ओर बढ़ रहा है। यह लो ! उसका परिश्रम सफल हुआ, क्योंकि अब वह प्यारा शरीर उसकी काख में है।

परन्तु जान पड़ता है कि कठिनाई का आरम्भ अब हुआ है, क्योंकि एक अचेत शरीर को एक हाथ से थामना, केवल थामना ही नहीं, जल तल से ऊपर रखना और दूसरे हाथ से वरुण देवता से युद्ध करना यदि असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य है, विशेषतया इस दशा में जब कि अपने शिकार के हाथ से

छूट जाने पर जलीय शरीर धारी वह देवता अति क्रुद्ध होकर एक के स्थान में दो प्राणियों को हड़प करने पर तुल रहा है।

परन्तु दूसरे के हित अपने जीवन को संकट में डालने वाला यह परोपकारी इस बात की ओर ध्यान न देता हुआ तट की ओर बढ़ा चला जा रहा है। कितने बार जल ने उसके किये-किराए परिश्रम पर पानी फेरा, कितने बार जल के थपेड़े उसे वापस मंझधार में ले गए, परन्तु अन्तमें वह तट के निकट पहुंच ही गया और अब घुटने घुटने जलमें है।

अब काम पहले की अपेक्षा सुगम था, परन्तु बाहर निकलने पर मालूम हुआ कि यह कोमल शरीर कपड़ों-समेत सिर से पाँव तक जलमय हो चुका और अभी तक अचेत अवस्थामें है। हमारे वीरने बाहर आकर उसे हरी घास पर लिटा दिया और स्वयं कुछ दूर आगे बढ़कर जङ्गल में घुसा। यहाँपर एक सुन्दर और वृहदाकार घोड़ा हरी हरी घास चर रहा था, जिसने इसे देखकर हिनहिनाना शुरू कर दिया। हमारे हीरो ने आगे बढ़ कर इसे थपकी दी और ज़ीन के पास से दो चादरें खोल कर उस जगह वापस पहुंचा, जहां पर उस जलनिमग्ना को छोड़ आया था।

वहां पहुंचा तो उस दिव्य मूर्ति के दोनों नेत्र खुले थे। कदाचित् उसके उदर में कई बार डूबने पर भी जल बहुत थोड़ा गया था, जो इतनी जल्दी उसकी मूर्छित अवस्था दूर हो गई थी।

हमारे वीरको देख कर उस कोमलांगी के होंठ हिले, जिनमें से मंद मंद और महीन स्वर में यह शब्द निकलते सुनाई दिए, "वृषल ! वृषल !! क्या मेरा दिमाग मेरे सामने ख्याली मूरतें बना रहा है ?"

अपना नाम सुन कर हमारे वीर के कान खड़े होगए और उसने आगे बढ़ कर उस चीनी की मूर्ति को गौर से देखा, जिसे इस समय तक उसे भली प्रकार देखने का अवसर नहीं मिला था।

जो कुछ उसने देखा, उसे देखकर एक मिनटके लिए वह शून्य होगया, क्योंकि सामने वह वस्तु थी, जिसे मानने को हृदय तैयार न था।

मस्तिष्क ने कहा और होठों ने उसे शब्दों में प्रकट किया, "रुक्शाना।"

रुक्शाना—क्या यह सच है? क्या जो कुछ नजर आ रहा है, स्वप्न नहीं?

वृषल—स्वप्न नहीं, सत्य है। तुम सिन्धुकी छातीपर सवार थी और यदि मैं दैवयोग से वहां न पहुंच जाता तो पता नहीं इस समय कहां होती। परन्तु समय बातोंका नहीं, तुम्हारे वस्त्र जलसे भीग रहे हैं, यदि यह शरीरपर ही सूखे तो सिन्धुके स्थानमें यही तुम्हारे लिए यमराज बन जाएंगे। इसलिए पहले इन्हें उतारना आवश्यक है। परन्तु यह बीहड़ बन है, यहां राजकुमारियों के पहनने योग्य वस्त्रों का मिलना कठिन है, हां, यदि बुरा न मानो तो यह सिपाही की चादर है, इसे कुछ समय के लिए ओढ़ कर इस पोशाक को उतार कर अलग कर दो और मैं इसे शीघ्र ही सुखाने का प्रबन्ध किये देता हूं।

रुक्शाना—लेकिन तुम्हारे कपड़े?

वृषल—यह भी अभी सूख जाएंगे, तुम इस गीली पोशाक को उतारो। मैं इतने समय के लिए इन वृक्षों की ओटमें होकर अपने वस्त्रों को उतारकर यह दूसरी चादर ओढ़े लेता हूं जो साथ ले आया था, परन्तु यह पता नहीं था कि यह इस काम में आएगी।

यह कहकर वह जंगलमें एक ओर चला गया और थोड़ी देर में ही वहां आदिम पुरुष के नमूने के दो मनुष्य दिखाई देने लगे, जो राज्य से निकले हुए नल और दमयन्ती की भांति केवल एक एक चादर में लिपटे थे।

वृषलने अपने और रुक्शानाके वस्त्र धूपमें फैला दिए जो उस समय तक तीक्ष्ण हो चली थी, और घोड़े का कम्बल भूमि पर बिछा कर रुक्शाना को उसपर बैठने को कहा।

उस कोमल बिछौने पर बैठ कर रुक्शाना ने कहा :--

रुक्शाना—तुम यहां कैसे आगए ?

वृषल—इस प्रश्नका उत्तर देने से पूर्व मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम यहां कैसे पहुँच गईं ? परन्तु ठहरो, तुम्हें भूख लगी होगी और मैं तुम्हारे खानेके लिए कुछ लिए आता हूँ।

यह कह कर वह जगल की ओर बढ़ा, रुक्शाना की आंखें इस समय उसके पीछे थीं। घोड़े के निकट पहुँच कर उसने एक थैली को खोला और उसमें से कुछ हल्कीसी खुराक निकाल कर फिर वापस लौटा।

अब आदि सृष्टि के यह दोनों नमूने एक दूसरे के सामने थे और वृषल अपने प्रश्न को फिर दोहरा रहा था।

वृषल— रुक्शाना ! क्या मैं अब पूछ सकता हूं कि सिन्धु को तुम्हें आलिंगन करने का सौभाग्य किस प्रकार प्राप्त हुआ ?

रुक्शाना—यह तो शायद आपको मालूम ही है कि यूनानी लश्कर यहांसे कुछ फासलेपर पड़ाव डाले पड़ा है। अब्बाजान खुद इस लश्कर के साथ हैं, लिहाजा मैं भी इसके साथ थी। क्योंकि मुझे इस सर जमीनके दीदारकी हदसे ज्यादा आर्जू थी, जिसमें मेरा इष्टदेव (वृषलकी ओर कनखियों से देखकर) छुपा पड़ा है। लिहाजा इस जगह पहुंचकर मेरा दिल काबू में न रहा और मैं आज सुबह ही सुबह सैरके लिए इण्डसके किनारे किनारे चली आई। उस वक्त सुबह का नजारा ऐसा था कि मैं अपने आपको भूल गई और घोड़ेसे उतरकर पैदल हो ली। उस वक्त एक तर्फ सूरज मशरिकसे बुलन्द हो रहा था, दूसरी तर्फ हिमाडोस (हिमालय) का अजीमुलशान और बेनजीर सिलसिला कोह जो

अब तक चाँदी के पहाड़ों की शक्ल इख्त्यार किये था, किसी ना मालूम कीमियागर के खुफिया हाथकी हरकत से तलाई पर्वत की शक्लमें तबदील हो रहा था। तीसरी तर्फ यह खिला हुआ जङ्गल था जिसके दूर तक फैले हुए दरख्त दिलको अपनी तर्फ मुतवज्जः करने का सामान कर रहे थे। इन दरख्तों पर से सुबह ही सुबह तरह तरह खूबसूरत परिन्दे रात की नींद से बेदार होकर उड़ते थे और मेरे जैसे नौवारद को अपनी खूबसूरत अदा और शक्लसे मुतहय्यर करनेका सामान कर रहे थे। चौथी तर्फ इण्डसका गहरा मगर नीलगू पानी था, जिसमें कई किस्मकी मछलियां कलोलें करके मेरे दिल में किसी खुफिया याददाश्त को हरकत दे रही थीं।

ग़र्ज़ चारों तर्फ कुदरत मुजस्सम खूबसूरती की शक्ल इख्त्यार किये एक तरह पर मुझे खुश आमदेद कह रही थी। इसलिए क्या तअज्जुब है जो मैं अपने आपको भूल गई और एक जगहपर दरियाके किनारे मेरा पांव फिसल गया।

इसके बाद जो कुछ हुआ वह तुम्हें मालूम ही है लेकिन मुझे अब यकीन हो गया है कि हरएक मुसीबत की तहमें हमारी कोई न कोई भलाई पोशीदा रहती है, वर्ना कैसे मुमकिन था कि मैं आज ऐन इस मुसीबतके दर्म्यान इस सूरतके दीदार कर सकती, जो पूरे पन्द्रह सालसे उठते-बैठते मेरे सामने रही है।

अन्तिम शब्द कुछ इस प्रकार कहे गए थे कि वृषलके हार्दिक भाव, जिन्हें वह इस समयतक बड़े साहस और बलसे दबा रहा था, अब सर्वथा बेबस हो गए और उसने जल्दीसे उठकर रुक्शानाको छातीसे लगाकर बारम्बार अधर चुम्बन करते हुए उसका मुख ढांप लिया। रुक्शानाने भी उस समय नाही न की, क्योंकि कौन कह सकता है कि उस समय उसके अपने मनमें कौनसे विचार लहरा रहे थे?

परन्तु ठीक उस समय एक ओर से आवाज़ आई, "वृषल, यह क्या ?"

दोनों ने मुड़ कर देखा तो महात्मा चाणक्य सामने थे।

वृषलने उठकर गुरुजीको प्रणाम करके रुक्शानाको उनके सम्मुख पेश करते हुए कहा :—

वृषल—यवनाधीश महाराज सैल्यूकस की राजकुमारी रुक्शाना।

महाराज चाणक्य इस समय तक आश्चर्य से स्तम्भित हो रहे थे और वृषल के उन शब्दों ने तो आश्चर्य को और भी बढ़ा दिया।

इधर वृषल ने रुक्शाना की ओर मुख करके कहा, "मेरे आध्यात्मिक और शारीरिक गुरु महात्मा विष्णु गुप्त चाणक्य।

रुक्शाना ने अगे बढ़कर चाणक्य के चरणों में गिर कर उन्हें प्रणाम किया। उस समय का दृश्य दर्शनीय था, क्योंकि वह चाणक्य जिसकी भवों के बलसे आर्य्यावर्त कांपता था, जिसकी नीति के आगे बड़े बड़े शूर वीर सिर झुकाते थे, एक देवी को सम्मुख देख कर अवाक् हो रहा था, सौन्दर्य्य के तेज से उसकी बोलती बन्द हो रही है।

कुछ क्षण तक यही अवस्था बनी रही, जिसके पश्चात् बड़े साहस से उसने अपने आपको संभाला और रुक्शाना को पावों पर से उठाते हुए कहा, "पुत्रि ! चिरञ्जीवी हो, सुहागवती हो।"

रुक्शाना—गुरु जी, मेरा सुहाग आपके पास है, यदि आप यह आशीर्वाद देते हैं, तो इसे मुझे बख्श दीजिए।

चाणक्य—तुम्हारा सुहाग मेरे पास ?...देवि ! तुम यह क्या कह रही हो ?...(वृषल की ओर देखने लगे)।

वृषल ने इस समय सिर झुका लिया। यह दशा देख कर महात्मा-चाणक्य क्षण भर के लिये सोच में पड़ गए। थोड़े समय

पश्चात् उनका बलवान मस्तक ऊपर उठा तो मुख मण्डल पर एक विस्मय था और आपने वृषल को लक्ष्य करके कहा :—

चाणक्य—क्यों वृषल, पन्द्रह वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने का यही उद्देश्य था ? क्या तुम भी भारत को अपने शताब्दियों से वियुक्त हुए भाग्य अर्थात् यवन देश से मिलाना चाहते हो ?

वृषल—(उसी प्रकार अवनत सिर से) भगवान् सर्वज्ञ हैं।

चाणक्य—यदि तुम दोनों की यही इच्छा है तो मैं इसमें बाधा डालने वाला कौन ? परन्तु अपने हृदय को पूर्ण रूप से टटोल लो, अपनी आत्मा को भले प्रकार साक्षी कर लो।

वृषल और रुक्शाना (दोनों)—महाराज, यह सब कुछ हो चुका।

चाणक्य—(मुस्कुराते हुये रुक्शाना से) पुत्रि। वृषल जो कुछ कहता है, मैं उसे समझता हूं। परन्तु क्या तुम जानती हो कि एक खुले घुड़चढ़े के साथ अपने आपको बांध कर तुम क्या गवां रही हो ? तुम राजकुमारी हो और कदाचित् जम्बूद्वीप (ऐशिया) के सब से बड़े राजा की पुत्री हो, इस कारण जानती हो, यह कर्म क्या अर्थ रखता है।

रुक्शाना—महाराज ! मुझे राजकुमारी न कहिए। इस जीवन का दान एक से अधिक बार मुझे वृषल के हाथों मिल चुका है।

चाणक्य—तो क्या कृतज्ञता इस मिलाप का कारण है ?

वृषल—महाराज ! मैं आपका शिष्य हूं, तथापि यह असह्य है। क्या आप यह समझते हैं कि वृषल इतना पतित हो गया है कि वह एक युवती की दया पर अपने आपको डालकर इसके जीवन को नष्ट कर देगा ?

चाणक्य—वृषल, चुप ! मेरा प्रश्न तुमसे नहीं, इस देवी से है।

रुक्शाना—महाराज ! अगर आपका दायां हाथ आपके बायें हाथ की हिफाजत करे तो उसे उसका शुकरगुजार होना होगा ?

चाणक्य—नहीं ।

रुक्शाना—तो फिर आपने यह अल्फाज किस तरह कह दिये, जिन्होंने मेरे प्यारे पति का ही नहीं, बल्कि मेरा दिल भी छलनी कर डाला है ।

चाणक्य—तो मानों तुम पहले से ही एक दूसरे को पति और पत्नी समझते हो ?

रुक्शाना—महाराज ! आज से नहीं पन्द्रह वर्ष से ।

चाणक्य—तो मेरी आज्ञा का क्या अर्थ है ?

रुक्शाना—जो अर्थ कि वाल्दैन की इजाज़त बच्चों के लिए रख सकती है । महाराज ! अगर आप इजाज़त न दें तो हमारे जिस्म एक दूसरे से उसी तरह अलग अलग रहेंगे, जिस तरह कि पन्द्रह साल के लम्बे अर्से से रहते चले आये हैं ।

चाणक्य—देवि ! क्या तुम मुझे मनुष्य नहीं, पशु समझती हो, क्या तुम मुझे आर्य्य नहीं, राक्षस खयाल करती हो ? क्या तुम समझती हो कि मेरे अन्दर हृदय नहीं, पत्थर का कोई टुकड़ा है ? जिस दशा में मैंने तुम्हें देखा है और जो कुछ मैं तुम्हारे प्रेमके सम्बंध में आरम्भसे जानता हूं, उसे जान कर कौन ऐसा मनुष्य है जो तुम्हें एक होने की अनुमति न दे ।

(वृषल की ओर देखकर)

आश्चर्य में क्यों हो, चाणक्य हृदय की बात जानने की शक्ति रखता है । देवि ! चाणक्य को समझने में तुमने भूल की, जिस प्रकार कि संसार ने उसे समझने में भूल की है । चाणक्य मनुष्य है, उसके अन्दर हृदय है, किन्तु एक बात है जो उसे मनुष्य से

पशु और आश्चर्य से राक्षस बना देती है। एक वस्तु है जो उसे इस बात पर विवश कर देती है कि वह अपने भी हृदय को काट डाले, और वह वस्तु देश-भक्ति है। देवि! देश-भक्ति के सम्मुख चाणक्य के लिए संसार के सकल पदार्थ तुच्छ हैं, देश-हित के सम्मुख उसे राजा, रंक और प्रजा किसी का ख्याल नहीं। अपने देश की रक्षा के हित वह चोरी करने को उद्यत है, असत्य भाषण को प्रस्तुत है; पाप करने को कटि बद्ध है। देशके कल्याण के अर्थ उसे नर्क में भी जाना पड़े तो वह जा सकता है, वह ऐसे नर्क पर शतशः स्वर्ग निछावर करने को उद्यत है जो देशहित के निमित्त मिले।

हां, यदि यही देश हित यही देश-भक्ति उसे इस बात से रोकती कि वह यवन राजकुमारी और वृषल का मिलाप न होने दे, तो चाहे इधर का सूर्य्य उधर हो जाता, चाहे पृथ्वी अपने केन्द्र पर घूमने के स्थान में सीधी दौड़ने लग जाती, चाणक्य के मुख से कभी "हां" न निकलती।

परन्तु, परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद है कि ऐसी बात नहीं है अन्यथा वृषल तो क्या, मुझे अपने प्राण देने में भी संकोच न होता।

देवि! चाणक्य देश भक्त है, कौटिल्य देश-हित के रंग में रँगा हुआ है, उसे अपना देश, अपनी मातृभूमि प्रिय है; परन्तु उससे यह न समझा जाये कि वह अन्य देश वासियों का शत्रु है। नहीं नहीं, उसका व्रत यह है कि:—

"यह मेरा है, यह पराया है, यह क्षुद्र-हृदय मनुष्यों का विचार है, उदार चरित पुरुष के लिये तो सारा संसार ही अपना कुटुम्ब है।"

हां, वह अन्य देश वासियों के देश-हित को श्रद्धा और आदर से देखता है, इस कारण नहीं चाहता कि कोई अन्य मनुष्य भी

देश-घातक बने। इस कारण पूछता हूं कि क्या तुम प्रेम के वशमें होकर तो ऐसा नहीं कर रही हो ?

रुक्शाना—मैं और देश घात ! रुक्शाना और देश द्रोही ! महाराज ! आप क्या कह रहे हैं ? यकीनन मैं नहीं समझ सकती, कि किस तरह वृषल के साथ शादी करके मैं अपने देश का घात करूंगी या कर सकती हूं।

चाणक्य–(हंसकर) इस कारण कि तुम्हारा वृषल केवल एक साधारण घुड़चढ़ा नहीं, जैसा कि तुम उसे समझ रही हो वा जैसा कि इस समय तक तुम्हें बताया जा चुका है, प्रत्युत वह आर्य्यावर्त का चक्रवर्ती राजा महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त है, जिसके साथ युद्ध करने के लिए तुम्हारे पिता ने लाखों शूरवीरों के साथ भारत पर आक्रमण किया है।

महाराज चाणक्य समझते थे कि एकाएक इस बात का प्रगट करना रुक्शाना के लिये आश्चर्य का कारण होगा, परन्तु उनका यह विचार ठीक सिद्ध न हुआ, क्योंकि रुक्शाना ने बिना किसी प्रकार का आश्चर्य प्रगट किये उत्तर दिया :

रुक्शाना—गुरुजी ! यह बात मेरे लिये कोई असर नहीं रखती, क्योंकि मैंने अगर वृषल से मुहब्बत की है या मैंने अगर उनसे शादी करने का इकरार किया है तो इसलिए नहीं कि वह एक मामूली घुड़चढ़े हैं या एक चक्रवर्ती राजा, बल्कि इसलिए कि वह वृषल हैं। लेकिन अगर जो कुछ आपने कहा वह ठीक है तो शायद यह कहना गलत न होगा कि हमारी यह शादी दो ज़बर्दस्त क़ौमों के दर्म्यान एक ज़बर्दस्त ताल्लुक पैदा करके उन्हें बाहम दिगर दुश्मन बनने के बजाय हमेशा के लिए एक दूसरे के पुश्तो-पनाह बना देगी, और शायद इससे बढ़कर हुब्बेवतन नामुम्किन है।

चाणक्य—यदि तुम्हारे पिता आज्ञा दें तो ?

रुक्शाना—यह आसान भी है और मुश्किल भी। अब्बाजान मुझ से बहुत मुहब्बत करते हैं, क्योंकि उन्हीं ने मेरी वालिदा की वफ़ात के बाद मुझे पाला है, और अगर मैं उनसे इसरार करूं तो शायद वृषल के अहसानात के साथ मिलकर मेरी इल्तजाएं उन्हें यह इजाज़त देने पर मजबूर कर दें। लेकिन न सिर्फ मैं ही बल्कि अगर मैं ग़लती नहीं करती तो वृषल भी यह गवारा नहीं करेंगे कि वह अहसानात जिताए जाएं, क्योंकि इस तरह यह इजाज़त उनकी मर्जी से नहीं होगी।

चाणक्य—सब कुछ हो जायेगा। चाणक्य की इच्छा के विरुद्ध चलने वाला मनुष्य अभी तक इस पृथ्वी पर उत्पन्न नहीं हुआ और अब, जब कि उस ने तुम्हारे साथ प्रतिज्ञा की है कोई मनुष्य इस कार्य्य में उसके मार्ग में खड़ा नहीं हो सकता। (वृषल से) परन्तु राजन्! मैं अभी तक नहीं जान सका कि तुम किस प्रकार यहां आ पहुंचे।

वृषल— भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, आपसे कोई बात गुप्त नहीं रह सकती। राज्य ने वृषल को बदल नहीं दिया। वह बहिरंग रूप में चाहे बदल गया हो परन्तु वास्तव में वही वृषल है जो कभी अलक्षेन्द्र के शिविर में उसके दर्शनों के लिये पहुंच गया था। इसलिये यवन सेना को अपने देश पर आक्रमण करते देख कर उस से यह नहीं हो सका कि वह केवल गुप्तचरों के कथन पर विश्वास करे। इस कारण अपने नेत्रों से कई बातों को देखने के लिये वह वहां जा रहा था, परन्तु रास्ते में ही रुक गया।

चाणक्य—राजन्! तुम्हारा विचार सराहनीय था, परन्तु इस प्रकार अपने आपको भय में डालना उचित नहीं। क्या तुम नहीं जानते कि एकमात्र तुम पर ही भारतवर्ष की किस्मत का पासा लग रहा है।

वृषल—महाराज ! यही तो बड़ा कारण था, जिसने मुझे स्वयं अपने नेत्रों से सब कुछ देखने पर विवश किया, क्योंकि मैं उन भूलों से बचना चाहता हूं, जिन्होंने इससे पहले भारत को विदेशियों के पांवों में रौंदे जाने पर वाध्य किया था। मैं महाराज सैल्यूकस को यह अवसर नहीं देना चाहता कि वह अलक्षेन्द्र के समान भारत में रक्त की नदियां बहाए।

चाणक्य—राजन्, तुम्हारी सर्व इच्छाएं पूर्ण होंगी। चाणक्य सोता नहीं जागता है। भारत के एक एक बालक का रक्त उसके अपने शरीर का रक्त है। नहीं नहीं, अब, जब कि यह देवी भारत को यवन देश से एक करने में तत्पर है तो यवन देश के एक एक पुत्र का रक्त भी इसका अपना रक्त है। अतः तुम इस बात की चिन्ता न करो। भारत और यवन देश के किसी वीर का भी रक्त अकारण नहीं बहेगा। चाणक्य के सारे प्रबन्ध सर्वाङ्ग-पूर्ण हैं, इस कारण निश्चिन्त होकर सेना को सुसज्जित करो, भारत पर यवन सेना अधिकार नहीं जमा सकती और नां ही जमा सकेगी।

बीसवाँ परिच्छेद

पेट्रोक्लीसका परिणाम

यूनानी शिविरमें चारों ओर व्याकुलता छा रही है। साधारण सवारसे लेकर बड़े बड़े जनरलोंतक सबके मुखपर हवाइयां उड़ रही हैं। और तो और स्वयं शाहंशाह भी घबरा रहे हैं, क्योंकि उनकी प्यारी पुत्री आज प्रतिदिनसे अधिक समयतक कैम्पसे बाहर रही है। यह व्याकुलता उस समयसे और भी अधिक हो गई है जबसे राजकुमारीका घोड़ा बिना सवारके शिविरमें दाखिल हुआ है, क्योंकि यह सन्देह अब निश्चयके रूपमें बदल गया है कि राजकुमारीका कुशल नहीं। या तो वह घोड़ेसे गिरकर कहीं अचेत पड़ी है या शत्रुके हाथों गिरफ्तार हो गई है।

दूसरी बातकी कल्पना पहलीसे भी अधिक भयङ्कर थी। जबसे यह पता लगा है कि जिधरसे घोड़ा भागा हुआ आया है, उस ओर राजकुमारीका कोई निशान नजर नहीं आया, यह आशंका निश्चयके रूपमें बदल गई है। शाहंशाहका क्रोध इस समय अपनी अन्तिम सीमापर पहुंच चुका है, यही कारण है कि राजकुमारीके बाडीगार्ड और विशेषतया पेट्रोक्लीसपर फटकारोंकी झड़ी बन्ध गई है, क्योंकि पेट्रोक्लीस ही विशेष रूपसे राजकुमारी की रक्षा का जिम्मेदार था।

पेट्रोक्लीसको शाहंशाह बारम्बार बुला भेजते हैं और उसने हर बार शाहंशाहकी प्रकृतिमें पहलेसे अधिक क्रोध और आवेश

पाया है। यही कारण है कि वह उनके सम्मुख जाता हुआ घबराता है।

इस समय देखिये, फिर हाजिरीका पर्वाना आया और सामने आते ही शाहंशाहने कहा :—

सैल्यूकस—पेट्रोक्लीस ! पता लगा, रुक्शाना कहां है ?

पेट्रोक्लीसका सिर झुक गया।

सैल्यूकस—(तेजीसे) बोलते क्यों नहीं ? क्या जबान कट गई ?

पेट्रोक्लीस—हजूर मैं कसूरवार नहीं !

सैल्यूकस—"मैं कसूरवार नहीं, मैं कसूरवार नहीं।" कितने बार यह लफ्ज मैं तुम्हारे मुंहसे सुन चुका हूं। क्या तुम मुझे यह बताना चाहते हो कि तुम शाहजादीके बाडीगार्ड नहीं थे ? क्या मुझे यह यकीन कराना चाहते हो कि मैंने तुम्हें शाहजादी की हिफाजत पर तैनात नहीं किया ?

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द नियामत ! यह सब कुछ दुरुस्त है, मगर......... ।

सैल्यूकस—हम अगर-मगर नहीं सुन सकते। तुम्हें शाहजादीको पैदा करना होगा, सही ओ सलामत पैदा करना होगा, घर्ना तुम ही नहीं, तुम्हारे अमलेका एक एक आदमी अपने खूनसे शाहजादीकी गुमशुदगीका कुफारा करेगा, सुनते हो ?

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द आलिम ! सुनता हूं।

सैल्यूकस—जाओ, मेरे सामनेसे दूर हो जाओ, अगर अबके आओ तो शाहजादीको लेकर आओ, वर्ना समझ लो, शाम होने से पहले तुम्हारा सिर गर्दनपर नहीं रहेगा।

इस प्रकारका अपमान पेट्रोक्लीसने पहलीबार सहा था और उसकी तेज़ी को उसके अपने मन की अवस्था ने असह्य बना दिया था। मन बारम्बार हृदयासन से उछल उछल कर बाहर हो रहा

था। रुक्शानाकी स्नेहलताको उसने अपनी बाल्यावस्थासे अपने हृदयके खेतमें पाला था। उसके काल्पनिक चित्रको आंखोंके सामने लाकर उसने घण्टों अपने मनको प्रसन्न किया था। उसकी कल्पनामयी मूर्ति को देख देखकर वह जीवन के दिन काटता था इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सैल्यूकस की धिक्कार-फटकार के बिना भी उसकी दशा क्या होती।

वह दाएं-बाएं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, अपने गुप्तचर भेज रहा है, चारों ओर के समाचारों पर उसके कान लगे हैं; परन्तु सन्तोष जनक परिणाम निकलता दिखाई नहीं देता। दोपहर ढलने पर है, परन्तु अभी तक जल का एक बिन्दु उसके कण्ठ में नहीं उतरा। उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही हैं। रंग पीला है और कुछ घंटों के अन्दर ही आंखों के गिर्द काले निशान दिखाई देने लगे है। वह सोचता है, परन्तु मस्तिष्क काम नहीं देता; क्योंकि एक ही काल में विचारों के इतने बड़े समूह की वर्षा होती है कि सोचते सोचते घबरा उठता है और बिना किसी परिणाम पर पहुंचे फिर नये नये गुप्तचर रवाना करने लग जाता है। परन्तु इतनी दौड़-धूप करने पर भी केवल इतना ही पता लग सका है कि राजकुमारी सिन्ध के किनारे किनारे सैर को जाती देखी गई थी। उसके पश्चात् कोई समाचार न मिलता था कि उसे पृथ्वी खा गई वा आकाश उड़ा ले गया।

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, पेट्रोक्लीस की घबराहट बढ़ती चली जा रही है और इसी घबराहट का परिणाम है कि वह गुप्तचरों और सिपाहियों पर विश्वास न करके स्वयं उस ओर खोज को निकला है, जिधर राजकुमारी के जाने का पता मिला था। परन्तु मनके उद्वेग ने बुद्धि को कर्त्तव्य विमूढ़ बना दिया है, इस कारण उसकी खोज गुप्तचरों से बढ़ कर गई-गुजरी सिद्ध होती है।

अपने विचारों में निमग्न हुआ सैकड़ों तरह के उतार-चढ़ाव करता शिविर से दूर निकल आता है, परन्तु चारों ओर जिधर दृष्टि डालता है, निराशा के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता।

वह हताश होकर वापस जाना चाहता है, किन्तु इस विचार के साथ ही शाहंशाह का क्रोध से तमतमाया हुआ चेहरा दृष्टि के सामने फिर जाता है और उसे मालूम हो जाता है कि शिविर में जाने से उसकी कैसी दुर्गति होगी।

दूसरी ओर जङ्गल में जिधर दृष्टि जाती है कहीं पत्ता भी हिलता नहीं दिखाई पड़ता। करे तो क्या करे, जाए तो कहां जाए ?

अब उसके लिए इस विश्वास के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रहता कि राजकुमारी इस लोक में नहीं रहीं, क्योंकि उसके घोड़े का बिना सवार के वापस आना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि वह शत्रु के हाथ में नहीं पड़ी।

परन्तु यह विश्वास करना कितना भयानक था, इसका अनुमान अब हुआ, जब कि यह अपनी भयानक मूर्ति के साथ पूरे जोर से मस्तिष्क के सामने दिखाई दिया। हाय ! क्या सचमुच वह प्यारी मूर्ति जो उसके जीवन का एकमात्र आश्रय थी, अब इस भूलोक में नहीं है ? क्या सचमुच रुक्शाना का सुन्दर मुख अनन्तकाल के लिये दृष्टि से ओझल हो गया ?

इन प्रश्नों के मन में उठते ही हृदय पर एक चोट लगी जो असह्य थी। पेट्रोक्लीस ने दोनों हाथों से उसे थाम लिया, परन्तु ऐसा करने पर भी वह स्थिर नहीं हुआ। उस समय उसके मस्तक पर बड़े शीतल स्वेदकण मुक्ता बिन्दुओं की नाईं झलक रहे थे। वह निस्तब्ध प्रेम ! हां, वह प्रेम, जिसने आज तक अपने आपको उसकी जिह्वा द्वारा किसी के आगे प्रगट नहीं किया था, उस समय अब अपने वेग से उसे नष्ट करने के लिये उद्यत

था, और ऐसा प्रतीत होता था कि चारों ओर दिन-दहाड़े अन्धकार के सिवा और कुछ नहीं रहा।

पृथ्वी पर अन्धकार था! आकाश पर अन्धकार था! सूर्य्य अन्धेरा था! वृक्ष, वन और पर्वत सब काला भेष धारण कर रहे थे!! क्या उन्होंने रुक्शाना के शोक में यह काला भेष धारण किया था वा पेट्रोक्लीस के प्रेम पर शोक प्रगट करने के लिए यह स्याह लिबास पहना था।

पेट्रोक्लीस का तार्किक मस्तिष्क स्वयं अंधकारमय था। उसकी बाल की खाल निकालने वाली बुद्धि इस समय कुछ भी नहीं सोचती थी। एकाएक एक विचार विद्युत गति के साथ मस्तिष्क में घूम गया, मानों घटाटोप अन्धकार में सौदामनि की रेखा चमक गई।

पेट्रोक्लीस के मन ने कहा, "रुक्शाना अब इस पृथ्वी पर नहीं, तो फिर तू इस समय तक क्यों जीवित है? क्या यह पृथ्वी अब रहने के योग्य है?

दूसरे क्षण में विचार हुआ "आत्महत्या पाप है।"

परन्तु हृदय ने फिर कहा, "पाप हो व पुण्य, रुक्शाना के बिना जीवन पर धिक्कार है, और विशेषतः जब कि वह जीवन अपमान का जीवन हो।"

विचार ने कर्म्म का रूप धारण किया। पेट्रोक्लीस ने अपने घोड़े के गले से रस्सी को उतार कर एक वृक्ष से बांधा, और कुछ क्षण में ही उसका बलवान् शरीर रस्सी को गले में डाले हुए आकाश में लटक रहा था।

एक आरोग्य और बलवान् शरीर से जीवात्मा का उत्क्रमण करना सहज नहीं था, परन्तु पेट्रोक्लीस का विचार अटल था और वह इस निर्जन स्थल में जो कुछ करना चाहता था, उस से उसे रोकने वाला कौन था?

रस्सी का एक झटका लगा और पेट्रोक्लीस को ऐसा प्रतीत हुआ मानों उस पर गहरी निद्रा छा रही है जो उसे इस दुखमय जगत् की ओर से अचेत कर रही है। यह निद्रा एक मीठी और मद से भरपूर निद्रा थी, जिससे जागने के लिए वह इस जगत् में तैयार न था, परन्तु इस समय भी उसके कानों में एक शब्द गूंज रहा था और यह शब्द रुक्शाना का प्यारा और मधुर शब्द था। पेट्रोक्लीस के नेत्र बन्द थे, मस्तिष्क निस्तब्ध और चेष्टा-हीन था, इन्द्रियां अपने ज्ञान से शून्य थीं और वह ध्यानावस्थित होकर उस मनोहारी शब्द को सुन रहा था जो उसके विचार में देव लोक से उसे बुला रहा था।

एकाएक ऐसा प्रतीत हुआ कि रस्सी को एक जोर का झटका लगा और उसका शरीर भूमि पर आ रहा। इस समय उसके मुख से निकला, "रुक्शाना! प्यारी रुक्शाना!! तुम कहां हो; पेट्रोक्लीस तुम्हारी आवाज़ सुनता है, मगर तुम्हें नहीं देखता!"

इसके उत्तर में उसके कान में यह शब्द पड़े, "पेट्रोक्लीस, यह क्या?"

पेट्रोक्लीस ने नेत्र खोल दिए तो उसको एक दृश्य दिखाई दिया, जिसे उसकी शून्य इन्द्रियां न समझ सकीं, क्योंकि सम्मुख एक महा काय देवमूर्ति नवयुवक तलवार हाथ में लिये खड़ा था और उसके पास खड़ी रुक्शाना उसकी फांसी की रस्सी खोल रही थी।

पेट्रोक्लीस– क्या मैं माद्दी दुनियां से ऊपर हूं? क्या मैं आलिमे-अरवाह में यह सब कुछ देख रहा हूं?

यह कहकर उसने फिर नेत्र बन्द कर लिए तो उत्तर में यह आवाज़ कान में पड़ी।

आवाज़—पेट्रोक्लीस! क्या सचमुच तुम रुक्शाना से मुहब्बत करते हो?

पेट्रोक्लीस—जिस्म और रूह दोनों से !

आवाज़—तो इस जिस्म और रूह के मालिक तुम नहीं, यह रुक्शाना के हैं ?

पेट्रोक्लीस—बेशक !

आवाज़—तो तुम्हें हक़ नहीं कि उन्हें इस तरह तबाह ओ बर्बाद करो। तुम अपनी चीज को चाहो और जिस तरह चाहो, बिगाड़ सकते हो; लेकिन बेगानी अमानत में खयानत करने का तुम्हें कोई हक़ हासिल नहीं। इसलिए उठो, ख्वाब में बातें न करो। रुक्शाना तुम्हें तुम्हारी ज़िन्दगी वापस देती है ताकि इससे उसकी और उसके प्यारे पति की ख़िदमत बजा लाओ, सुनते हो ?

पेट्रोक्लीस ने आंखें खोलीं तो सामने रुक्शाना और वृषल दिखाई दिये। वृषल की तलवार जिसने पेट्रोक्लीस की फांसी की रस्सी के दो टुकड़े किये थे, म्यान में पहुंचकर पहलू में लटक रही थी और रुक्शाना मुस्कराती हुई पास खड़ी थी।

पेट्रोक्लीस ने यह दृश्य देखा, तो मस्तिष्क में चक्कर सा आ गया। क्या सचमुच यह सब कुछ स्वप्न नहीं था ? क्या वास्तव में वह देव लोक में दाखिल नहीं हो चुका था ? और क्या रुक्शाना उसे पार्थिव शरीर से यह आज्ञा दे रही थी ? निस्सन्देह यह सब कुछ विश्वास करने के योग्य नहीं था।

पेट्रोक्लीस—क्या यह हकीकत है कि मैं आलिमे अरवाह में नहीं हूं ?

रुक्शाना—नहीं, तुम इस वक्त माद्दी दुनियां में हो, पर हां, इस वक्त तक यक़ीनन आलिमे-अरवाह में दाखिल हो चुके होते, अगर प्यारे वृषल की तलवार उस तक पहुंचने के लिए तुम्हारे तय्यार करदा जीने (रस्सी) के दो टुकड़े न कर देती। उठो! अहसान फरामोश न बनो, अपने मोहसन का शुक्रिया अदा करो।

पेट्रोक्लीस ने आंखें फाड़ कर वृषल की ओर देखा, क्या यह रुक्शाना का "प्यारा पति" है, इस विचार ने एक क्षण के लिए उसके हृदय में प्रतिस्पर्द्धा की आग सुलगाने की चेष्टा की, परन्तु साथ ही अन्तःकरण की ऐसी फटकार पड़ी कि उसके मुख से बलात् निकल गया—

पेट्रोक्लीस—"क्या मैं अपने सामने वृषल को देख रहा हूं? क्या मेरी निगाह के सामने उस बहादुर की शक्ल है, जिसने अलेग्जैण्डर जैसे शाहंशाह को खरी-खरी सुनाई थीं? क्या मेरी आंखें उस देवता के दीदार कर रही हैं, जिसकी शोहरत की दास्तानें इण्डियन सफीर ने सुनाई थीं? क्या मैं उस फैज रसां आलम के दीदार से अपनी निगाहें पवित्र कर रहा हूं, जिसने अपनी बेहतरीन ख्वाहिशात, उमंगों और उम्मीदों को बनी नौ इन्सान की खिदमत के लिए कुर्बान कर रखा है। हां हां, क्या मेरा यह नाचीज जिस्म उस आसमानी हस्ती की खिदमत के लिए वक़्फ़ किया गया है, जिसने खिदमते-खलक़ को अपना शेवा बना रखा है। रुक्शाना! मुझे मुआफ़ करना, अगर इस से एक मिनट पहले मेरे दिल में उसके खिलाफ़ एक जहन्नुमी जज्बे की आग मुश्तअल हो गयी थी। मैं इन्सान हूं और गिरना इन्सान का खासा है। मगर लानत है मुझ पर जो कब्र के मुंह से वापस आकर फिर उन्हीं कमजोरियों का शिकार हो रहा हूं, जिनका शिकार मामूली इन्सान होते आए हैं।

हां रुक्शाना! मैं आज तक जानने से क़ासर रहा था कि वह कौनसा इन्सान है, जिसने रुक्शाना के दिल को चुराया है। मैंने इस अमर की टोह लगाने की कोशिश की, लेकिन नाकामयाब रहा, क्योंकि यह कभी मेरे ख्वाबो-ख्याल में भी नहीं आया था कि वह एक इण्डियन हो सकता है।

ताहम अब जब कि मैं उसके दीदार कर चुका हूं, मैं तुम्हें इस इन्तख़ाब पर मुबारकबाद देता हूं। ख़ुदावन्द करे कि चांद-सूरज की यह जोड़ी अपनी रोशनी से एशिया के बर्रेआज़म को देर तक ज़ियापाश करती हुई इस बदक़िस्मत सर ज़मीन में सुलह ओ आश्ती की पेशरो साबित हो।

हां, शाहज़ादी ! तुमने ठीक कहा है, इस जिस्म और इस रूह पर अब पेट्रोक्लीस का कोई हक़ नहीं रहा। यह अब रुक्शाना और उसके क़ाबिले फ़ख़्र ख़ाविन्द के कदमों में हाज़िर है। वे इसे जिस तरह चाहें इस्तेमाल करें।

यह कहकर उसने अपने आप को दोनों के पांवों में गिरा दिया, परन्तु वृषल ने उसे संभालते हुए छाती से लगाकर कहा :-

वृषल—पेट्रोक्लीस ! तुम्हारे पवित्र जीवन और स्पष्ट कथन ने मेरे हृदय पर जो प्रभाव डाला है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। अभी अभी हम तुम्हारी ही बात करते चले आ रहे थे, जब कि हमारे नेत्रों ने वह सब कुछ देखा, जिसकी कभी आशा न थी। मैं तुम्हें रुक्शाना को प्रेम करने के कारण कोई दोष नहीं देता, क्योंकि वह मर्त्यलोक की नहीं वरन् एक स्वर्गीय देवी है, जिसे देखकर हमारे जैसे संसारी लोगों के नेत्र चुँधिया जाते हैं। लो, अब जाओ, मैं इसे अकेली छोड़ना नहीं चाहता था, और इस चिन्ता में था कि किस प्रकार इसे यूनानी शिविर में पहुंचाऊंगा, सो यह चिन्ता भी दूर हुई; परन्तु क्या मैं यह आशा रख सकता हूं कि जो कुछ आपने आज देखा है, यह पेट से बाहर नहीं आएगा जबतक कि राजकुमारी स्वयं आज्ञा न दे।

पेट्रोक्लीस—बहादुर ! पेट्रोक्लीस एक वार कह चुका है कि यह जिन्दगी अब उसकी नहीं, बल्कि आप दोनों की चीज है, इसलिये अगर उसकी ज़बान को यह हुक्म दिया जाता है कि

वह इसके मुतल्लिक कोई लफ्ज बाहर न निकाले तो इस हुक्म की तामील के लिए आप इस गुलाम पर एतबार कीजिये।

वृषल ने राजकुमारी को विदा करते हुए पेट्रोक्लीस की ओर एक ऐसी दृष्टि से देखा जो यह कह रही थी :—

सोरठा

मेरो तनु और प्राण, रुक्शाना को जानिओ।
इसे धरोहर जान, रखिओ तुम सद्भाव से॥

तृषित नेत्रों से राजकुमारी विदा हुई, परन्तु जबतक वह दिखाई देती रही, इस मोहिनी मूर्त्ति को देखती चली जाती थी, जो उसी स्थान पर उसके घोड़े की पीठ पर दृष्टि जमाये खड़ी थी।

इक्कीसवां परिच्छेद

सैल्यूकस का पश्चात्ताप

"मैं बेवकूफ था। मैं नादान था। मैं पागल था, जिसने यह जाल पहले नहीं देखा। वह सामने इण्डियन लश्कर नजर आता है, जिसके सामने हाथियों की काली काली कतार आहनी फसील की तरह खड़ी है। इन हाथियों की तादाद चार हजार से कम न होगी और इसके पीछे इण्डियन फौज—कौन कह सकता है कि इसकी तादाद कितनी होगी? जिन लोगों को हमने गिरफ्तार किया है, वह बताते हैं कि यह मीलों तक फैल रही है, और न सिर्फ सामने ही, बल्कि जासूसों की खबरों से पता लगता है कि उसके तजरुबाकार और जहांदीदा जनरैल ने उसे मीलों तक हमारे इर्द-गिर्द फैलाकर हमें हड़प करने की ठान रखी है।

अपने लश्कर पर निगाह मारता हूं, तो उतरे हुए चेहरे और सूखे हुए पंजर चारों तर्फ नजर पड़ते हैं। क्या इस फौज की सहायता से मैं ताजा दम इण्डियन फौज के साथ जङ्ग कर सकूंगा?

(भूमि पर पांव पटक कर) आह! यह सब कुछ मेरी बेवकूफी का नतीजा है। यह सब मेरी बेअक्ली का फल है। जिसने यह न देखा कि अन्धाधुन्ध दुश्मन के मुल्क में दराते हुए चले जाने का नतीजा क्या होगा, जिसने यह न सोचा कि

दुश्मन जो हरएक मौका पर पहलू बचाता हुआ पीछे हटता चला जाता है, इसके क्या मानी हैं ?

उफ ! कितनी बड़ी गलती ! मैं समझा था कि दुश्मन हमसे खौफजदा होकर भागता चला जा रहा है, लेकिन यह मालूम नहीं था कि वह एक खौफनाक हम्ले की तैयारियों में है ! मैं ख्याल करता था कि देहात व कस्बात के लोग फतेहमन्द लश्कर के डर के मारे तितर-बितर हो गए हैं, लेकिन अब पता लगा कि यह भी एक जङ्गी चाल थी, जिसने मेरे लश्कर को इस हालत तक पहुँचा दिया है।

आह ! लश्कर की हालत की तरफ देखता हूं तो जिगर पर छुरियां चल जाती हैं। क्या यह वही लश्कर है, जिसके साथ सिकन्दर ने दुनिया में तहलका मचा दिया था ? क्या यह उन्हीं बहादुरों का मजमुआ है, जिनके साथ मैंने एशिया को जेरो-जबर कर डाला ? लेकिन अब इनकी शक्लें क्या पता देती हैं ? इनकी सूरतों को देखकर क्या गुमान होता है ?

यह फौज है या कोई लुटा बंजारा ! घोड़ों तक को भूखे सिपाहियों ने ज़िबह कर डाला। बारबर्दारी के जानवरों तक को इन्होंने कुर्बान कर दिया। और अब.........आह ! अब क्या है ?

कितने दिनों से फौज निस्फ छोड़ चौथाई राशनों पर गुजारा कर रही है और इसका नतीजा यह है कि अब जब कि मैदान में जोशे-शुजाअत दिखाने का वक्त है, मैं इन सब को लाशा बेजान पाता हूं ! क्या यह फौज दुश्मन के मुकाबले में खड़ी होगी ? क्या इस लश्कर के साथ मैं इण्डिया को फतह करूंगा ? नामुमकिन ! नामुमकिन !!

आह ! कम्बख्त दुश्मन ने सारे मुल्क में घास तक को जला डाला। घोड़े भूखों मर गए, बारबर्दारी के मवेशी बेआबोदाना

रह गये और बाकी मांदा जानवरों को मेरे भूखे सिपाहियों ने हड़प डाला।

उफ! हैवानी जज्बा का इन्तहाई नमूना! भूखा इन्सान कितनी जल्दी अपनी असलीयत की तर्फ मुड़कर हैवानियत को इख्त्यार कर लेता है। उफ! उफ!...उफ!......"

"अब्बा जान!"

"कौन रुक्शाना?" आह! मैं कितना बेदर्द हूं, कितना जालिम हूं, जो अपनी नाजुक बदन बेटी को भी पेट भर कर खाने को नहीं देता। आह! क्या यह बादशाहत है? क्या इसी का नाम सल्तनत है क्या दुनियां इसे ही अपनी तमाम खुशियों का मैराज समझती है?

रुक्शाना—अब्बाजान! मैं "नाजुक बदन" नहीं, सिपाही की बेटी हूं क्या आप इस बात को भूल गए? क्या लश्कर के सारे सिपाही चौथाई राशनों पर गुजरान नहीं कर रहे? क्या मैंने आपसे कोई शिकायत की है?

सैल्यूकस—हां हां, इस सारे लश्कर का कातिल मैं ही हूं। इस सारी फौज का तबाह कुनिन्दा मैं ही हूं। इन हजारहा हैवानात का कत्लआम मेरी ही वजह से हुआ और मैं ही इन बाकी मांदा सिपाहियों को अजल के मुंह में झोंकने का ज़रिया साबित हुआ हूं!

रुक्शाना—अब्बाजान! आप क्या कह रहे हैं? आज आपको क्या हो गया है?

सैल्यूकस—बेटी! तुम सच कहती हो। जो कुछ मैं कह रहा हूं, इसे तुम नहीं समझती। मुझे आज कुछ होगया है, और वह यह कि असलीयत पूरे ज़ोर से आज मेरे सामने आ रही है। वाकयात की अस्ली और बरहना तस्वीर मेरी निगाहों के सामने फिर गई है। "नकाटोर" (विजयी) कहलाने के लिये मैंने ही इस

मुल्क पर चढ़ाई की, सण्ड्राकोटस के पैगाम सुलह को मैंने ही हिकारत से रद किया। मैं ही था, जिसने दुश्मन की इस जङ्गी चाल को उसकी शिकस्त पर महमूल किया और इसका नतीजा यह है कि वह यूनानी लश्कर, जो कभी ना-काबिले तसख़ीर समझा जाता था, वह यूनानी लश्कर, जिसकी शुजाअत और दिलावरी के फसाने ज़बांजदे ख़लाइक हैं, हां, वह यूनानी लश्कर, जिसकी हैबत एक आलम के दिलों पर तारी है, इस वक्त दुश्मन के रहम पर है। रुक्शाना ! बेटी, तुम नहीं जानती। शहरों और कस्बों को उजाड़ समझ कर मैंने ख़याल किया कि दुश्मन की रिआया हम से खाइफ होकर भाग गई है। किलों को खाली देखकर मैंने यकीन किया, कि दुश्मन अपने आपको उनकी हिफाजत के ना काबिल समझ कर उन्हें छोड़ गया। इसलिये इर्द-गिर्द के इलाका जात पर मजबूरन कब्जा रखने के लिए मैंने उन किलों में किला बन्द फौज को रखना मुनासिब समझा, ताकि सरहद तक लश्कर के साथ सिलसिला नामा ओ पयाम खुला रहे। लेकिन मेरी यह पेश-बन्दी भी मेरे खिलाफ निकली। यूनानी लश्कर की ताकत बजाय बढ़ने के इस तरह कम हो गई, और आज यह फौज, जिसके सहारे मैं इण्डिया की ताजा दम फौज से मुकाबिला करना चाहता हूं, उस जबर्दस्त लश्कर का निस्फ भी नहीं, जिसे साथ लेकर मैं इण्डिया की हदूद के अन्दर दाखिल हुआ था। दूसरी तरफ जासूसों ने यह पता दिया है कि हरएक जगह किला बन्द फौज इसी तरह घिरी पड़ी है, जिस तरह कि यह लश्कर महसूर है। हायबर-वोरी (खैबरपुरी) का रास्ता, जिसके जरिये से हम इस मुल्क में दाखिल हुए थे, दुश्मन की एक जबर्दस्त फौज ने मसदूद कर रखा है। इस तरह पर हम लोग इण्डिया की हदूद के अन्दर कैद कर दिये गए हैं और लुत्फ यह कि एक दूसरे को कोई मदद नहीं दे सकता।

लेकिन बावजूद इन सारी बातों के भी सैल्यूकस शायद न घबराता, अगर उसे यह यक़ीन होता कि मौजूदा लश्कर के साथ वह एक फैसला कुन जङ्ग कर सकता है।

रुक्शाना—अब्बाजान! बिला शुबह हमारा मौजूदा लश्कर दुश्मन का मुकाबिला करने के नाकाबिल है, लेकिन खतरे को सामने देखकर हिम्मत हार देना भी मर्दों का काम नहीं।

सैल्यूकस—ठीक! बहुत ठीक! लेकिन तुम्हीं बताओ कि क्या किया जाये? मेरी तो समझ काम नहीं करती।

रुक्शाना—लश्कर के सर्दारों और जनरलों को बुला कर उनसे राय दर्याफ्त कीजिए।

सैल्यूकस—बेटी! सैल्यूकस अन्धा नहीं है उससे गलतियां हुई हैं और शायद होती रहेंगी; लेकिन वह अपने लश्कर की नब्ज बिलकुल ठीक तौर पर पहचानता है। इस लिए वह जानता है कि लश्कर आज उस हालत में नहीं कि उस पर एतमाद किया जा सके। इस वक्त यूनानी लश्कर के दिल की हालत बिल्कुल वही है, जो इसी दरिया के किनारे पर पहुंच कर सिकन्दर के मातहत हो गई थी।

रुक्शाना—क्या फौज में बगावत के आसार नुमायां हैं?

सैल्यूकस—भूखा इन्सान कौन सा गुनाह है, जो करने को तैयार नहीं हो जाता?

रुक्शाना—(कुछ सोच कर) तो अब्बा जान! क्या यह मुनासिब नहीं होगा कि दुश्मन से सुलह की दरख्वास्त की जाये?

सैल्यूकस—सुलह!......सुलह!......बेटी रुक्शाना, यह तुमने क्या कह दिया? क्या निकाटोर (विजयी) सैल्यूकस अब उस दुश्मन के सामने घुटनों के बल गिरेगा, जिसकी सुलह

की दरख्वास्त को उसने हिकारत के साथ रद्द कर दिया था ? क्या एशिया का फातह इण्डिया के गासब के सामने दो ज़ानू होगा ? क्या .... ।

रुक्शाना—मगर इसके सिवा चारा ही क्या है ?

सैल्यूकस—क्या ? क्या कोई चारा नहीं रहा ? क्या शमशीर वकफ सिपाही बेइज्जत किया जा सकता है ?

रुक्शाना—लेकिन अब्बाजान ! इसका नाम बहादुरी नहीं, बेवकूफी है ।

सैल्यूकस—इज्जत की मौत बेइज्जती की जिन्दगी से हजार दर्जा बेहतर है ।

रुक्शाना—अब्बाजन ! इन हज़ारहा इन्सानों की किस्मत आपके सुपुर्द की गई है । इन हजारहा हथियार बन्दों की जिन्दगी और मौत का अख्तियार आपको दिया गया है । इन्हें एक मामूली से जज्बे की खातिर वतन से हजारों कोस दूर यकीनी मौत के मुंह में न झोंकिए । यह इज्जत की मौत नहीं, कत्ल अम्द है । इन लोगों ने दुख में, सुख में, खुशी में, गम में, आपका साथ दिया है । इन लोगों ने आपकी इज्जत की खातिर आपके नाम को चार दांग आलम में रौशन करने के लिये अपनी जानों की पर्वाह नहीं की, और इसका एवज इन्हें यह नहीं मिलना चाहिए । अब्बाजान ! यह भी किसी के लख्ते जिगर हैं । इनकी राह ताकने वाली भी कहीं न कहीं मौजूद हैं । उनका तसव्वर कीजिए और फिर यह सोचिए कि आइन्दा जमाने का मुवर्रख आपके इस कारनामे को किस नजर से देखेगा । अब्बाजान ! इस मुहिम को शुरू करने के लिये आपके पास कोई जबर्दस्त वजन मौजूद नहीं था । लेकिन फिर भी आपने इस मुल्क को ताखतो ताराज करना मुनासिब समझा, ताकि आप निकाटोर (फतेहमन्द) कहला सकें, ताकि आप एलैग्जैण्डर सानी का नाम पा सकें, ताकि आप

फातह आलम बन सकें। महज़ अपनी एक दुनियावी ख्वाहिश को पूरा करने के लिये आपने यह मुहिम शुरू की, और अब भी महज़ एक माद्दी जज्बे की ख़ातिर हज़ारहा इन्सानों का ख़ून बहाना चाहते हैं। अब्बाजान! मैंने आज तक नहीं सुना कि किसी भी कमान्डर ने, किसी भी सिपहसालार ने, अपने लश्कर को दीदा-दानिस्ता यक़ीनी हलाकत के मुंह में झोंका हो, मगर आप ऐसी मिसाल क़ायम करना चाहते हैं। लेकिन यह याद रखिए कि आप ख्वाह इसे इज्जत की मौत समझें, लेकिन आने वाला मुवर्रिख यह कहेगा कि "सैल्यूकस ने जंगी चालों में इण्डियन सिपहसालार से नीचा देखा, और फिर अपनी इस हजीमत को बहादुरी का रंग देने के लिए सारी फ़ौज को दीदा-दानिस्ता कटवा दिया।"

सैल्यूकस—बेटी! तुम ठीक कहती हो। बेवकूफी और कम इल्मी का जो दाग लगना था, वह तो मेरे नाम के साथ लग गया, उसे अब इन हजारहा इन्सानों का खून धो नहीं सकता।

रुक्शाना—अब्बाजान! जहां दो फरीक मुकाबिल हों, एक को जरूर नीचा देखना पड़ता है। इसमें शर्मिन्दा होने की बात नहीं। दुनियां में एक से एक बढ़कर दिमाग पैदा किया गया है। अक्लमन्द इन्सान वे हैं, जो बेहतर दिमाग की बर्तरी को तस्लीम करके उससे कुछ सीखने की कोशिश करें। क्या आप इण्डियन लोगों को ही नहीं देखते? ऐलैग्जैण्डर ने उनकी कैसी गत बनाई थी, लेकिन आज वही हैं कि हम उनसे पीछा छुड़ाने पर मजबूर हैं। अगर वे इसी बात पर अड़ जाते कि इस बेइज्जती से मौत बेहतर है, तो क्या आज का दिन उन्हें नसीब होता?

सैल्यूकस—तो तुम्हारा यह मक्सद है कि इस वक्त सुलह

करके इस बला से मुखलसी हासिल की जाये, आइन्दा वक्त पड़ने पर मौका देखकर जैसा मुनासिब हो किया जाए।

रुक्शाना—डिप्लोमेसी और तदब्बर इसी का नाम है।

सैल्यूकस—(कुछ सोचकर) हां, तुम्हारी बात ठीक मालूम होती है। अच्छा, तो अब हमें जल्दी पैगाम सुलह भेजने का इन्तजाम करना होगा।

बाईसवां परिच्छेद

वृषल की ओजस्विनी वक्तृता

रणबांकुरे राजपूतों के मुखमण्डल वीरता के मद से लाल हो रहे हैं। उनके बाण कमठों से और खड्ग कोषों से बाहर निकले जाते हैं। अभी कई दिन में शत्रु से सामना होगा, तलवारें अपनी झंकार से मारू राग का अलाप करेंगी, बाणों की सरसराहट को सुनकर वीरों के रक्त उबलने लगेंगे और वह समय आएगा जब कि शूरवीरों के दोनों हाथ लड्डू होंगे, क्योंकि जीवित रहे तो जगत् की कीर्ति और मर गए तो सूर्य्यलोक का राज्य उनका होगा।

शिविर में बंधे हुए घोड़े अपने वीर सवारों और स्वामियों के विचारों से प्रभावित होकर अगले खुरपुटों से भूमि खोद खोद कर मिट्टी वायु में फैंक रहे हैं। हाथी उस समय की प्रतीक्षा में अधीर हो रहे हैं, जब कि वे निर्दयता से शत्रु की छाती को पांवों तले रौंदकर हृदय की अग्नि शान्त करेंगे।

महात्मा चाणक्य के मस्तिष्क ने अपने अद्भुत चमत्कार दिखाए हैं। क्योंकि वह चक्रव्यूह, जिसके अन्दर महाभारत के विश्वव्यापी युद्ध में वीर-शिरोमणि द्रोणाचार्य ने शूरवीर अर्जुन के प्यारे पुत्र अभिमन्यु के प्राण लिए थे, उनकी बुद्धि की प्रखरता से सर्वथा नवीन रीति से सुसज्जित किया गया है; जिससे सैल्यूकस की समग्र सेना उसके घेरे में आ गई है। सौराष्ट्राधीश,

जिसकी बहुत काल से दबी हुई मनोकामनाएं पूरी होने को हैं, इसके एक विशेष पार्श्व को कमान कर रहा है। सौभीतपति, कोशल-नरेश, पांचाल के योद्धा, मालव शूरवीर, गांधारी सुभट, कौतूल, वाह्लीक और अन्य देशों के योद्धा और सेनापति इस मानव दुर्ग की प्राचीर में बुर्ज का काम दे रहे हैं। महात्मा राक्षस की युद्ध-कुशलता भी आज गुरुदेव के मन्त्रों का साथ दे रही है। इनके अतिरिक्त स्वयं सेनाधिपति महाराज चन्द्रगुप्त की स्फूर्ति देखने के योग्य है, जो मीलों तक फैले हुए सैन्य दल को स्वयं आज्ञायें दे रहे हैं। सुतरां वह देखिए, आप सेना के एक दल को लक्ष्य करके कह रहे हैं :—

"शूरवीर राजपूतो !

वह दिन आ गया, जिसकी हम लोग इतनी प्रतीक्षा में थे, हां, वह पवित्र दिवस आ पहुँचा, जिसके लिए शूरवीर इतने अधीर हुआ करते हैं। अब बहुत जल्द आप होंगे और शत्रु। वह शत्रु जो आज तुम्हारे पवित्र आर्य्यावर्त के अन्दर आ घुसा है, वह शत्रु जो तुम्हारी जननी भारत माता के पवित्र हृदय पर अपने अपवित्र पाँव रख रहा है। देखना संसार यह न कहे कि यवन सेना सिंह की गुफा में घुसकर उसकी डाढ़ी को नोच गई। हां हां, शूरवीरो ! पिछले कलङ्क को धोना है। अलक्षेन्द्र ने जो कालिमा तुम्हारे मुख पर मल दी है, उसे शत्रु के रक्त से धोना है। क्या यह हर्ष की बात नहीं ?

मैं देखता हूं, तुम लोग उस समय के लिये अधीर हो रहे हो। तुम्हारे मुखमण्डल तुम्हारे हृदय के भावों का पता देते हैं। परन्तु स्मरण रखना, शूरवीरता के आवेश में पाप करने पर उतर न आना। शरणागत पर, निःशस्त्र पर, घायल पर, रोगी पर और स्त्री पर वार न करना, यह भारतीय योद्धाओं की आजतक विशेषतायें रही हैं, इन्हें हाथ से न जाने देना।

हां हां, महाराज चाणक्य के मन्त्र आज तुम्हारी सहायता कर रहे हैं। शत्रु आज तुम्हारे हाथों में है, अतएव संसार को दिखा दो कि भारतवासी क्या कुछ करने की शक्ति रखते हैं।

शूरवीरो! अलक्षेन्द्र का आक्रमण भारत के इतिहास के निर्मल और चमकते हुये पृष्ठों पर एक कलङ्क है, जिसे कदाचित् विधाता ने इसलिए लगाना पसन्द किया था कि भारत के उज्ज्वल मुख पर बुरी दृष्टि असर न करे।

आप लोग कहेंगे कि हम इस कलङ्क को प्रमाण नहीं मानते, क्योंकि छल और कपट की चालों से हमारा नाश किया गया। परन्तु स्मरण रखो, आज से सैकड़ों और सहस्रों वर्ष पश्चात् लोग इन चालों को भूल जायेंगे, इन कपट और छलों को विस्मरण कर देंगे, जिनसे तुम्हारा नाश किया गया।

इस कारण तुम्हें अवसर दिया गया है, उस परमात्मा की ओर से, उस परिपूर्ण शक्ति की ओर से—जो भारत को अन्य देशों से अधिक प्रेम करती है। ताकि तुम इस युद्ध से, जिसे हमारे यत्न करने पर भी हमारे सिर पर डाला गया है, हां, इस युद्ध से संसार को बता दो कि तुम उस समय भी वह कर सकते थे, जो आज कर सकोगे।

जगत् के इतिहास में आने वाली सन्तान के सोचने के लिए सामग्री छोड़ जाओ, ताकि जब कभी तुम्हारे साखे लोगों की दृष्टि से ओझल हो जाएं, तो वे यह विचार करने पर बाध्य हों कि वे कौन से कारण थे जो भारतवासियों को अलक्षेन्द्र के हाथों नष्ट करने के कारण हुए।"

सैनिकजन—(एक स्वर से) संसार देखेगा और हम उसे दिखाएंगे कि भारत के सम्मुख यवन सेना की क्या स्थिति है, यदि उसे ऐसा नेता मिल जाए, जो इससे काम लेने की शक्ति रखता हो!"

"जय-भारत-माता की ?"

"जय हो भारत-माता की"—"जय हो भारत जननी की"—"जय हो वीर वृषल की"—"जय हो महाराज चन्द्र की"—"जय हो मन्त्रपति चाणक्य की"—"जय हो शूरवीर राक्षस की।"

पहली आवाज के निकलते ही यह जयकारे आकाश में चारों ओर गूंजने लगे। महाराज ने फिर कर देखा तो पण्डित इन्दु-शर्म्मा जी का पवन-गति घोड़ा पानी पानी हो रहा था, और वह स्वयं फुर्ती से भूमि पर कूद कर प्रणाम कर रहे थे। यह देख कर महाराज वृषल के मुख से भी निकल गया—"जय हो भारत जननी की, कहो इन्दुशर्म्मा क्या समाचार लाए ?"

इन्दु—महाराज ! पेट्रोक्लीस श्वेत पताका लेकर सेवा में उपस्थित हुआ है।

वृषल—पेट्रोक्लीस श्वेत पताका के साथ ! क्या यवन राजा सुपथ पर आने को उद्यत है ?

इन्दु—कदाचित् ऐसा ही हो !

यह सुन कर महाराज ने घोड़े को एड़ लगाई। और इससे पूर्व कि सैनिक जन इन शब्दों का अर्थ समझ सकें, उनका क्षिप्र-गति घोड़ा तेजी से सैन्यदल के मध्य की ओर बढ़ा जा रहा था।

तेईसवां परिच्छेद

सन्धि की शर्तें

यूनानी दर्बार में सन्नाटा छा गया, जब राज-मन्त्री ने चाणक्य का उत्तर सैल्यूकस को सुनाया। लिखा था :—

"चक्रवर्ती महाराज भारताधीश मौर्य्य-कुल सूर्य्य महाराज चन्द्र की आज्ञा से यवन सेनापति महाराज सैल्यूकस की सेवा में, उनके पत्र तथा दूत पेट्रोक्लीस के जवानी संदेश के उत्तर में मुझे यह कहने की आज्ञा दी गई है कि महाराज श्री चन्द्र की यह आरम्भ से ही इच्छा रही है कि जम्बूद्वीप (एशिया) में शांति रहे तथा जगत् के मनुष्य सुख और समृद्धि को प्राप्त करें। इसी उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने यवन राज के सुदूर देश में दूत भेजने का प्रयत्न किया था, परन्तु शोक ! कि उनके शुभ संकल्प का निरादर किया गया।

परन्तु विगत समय अब लौटाया नहीं जा सकता। इस कारण उस सम्पूर्ण रक्त पात की ओर से नेत्र बन्द करके जो इस समय तक हो चुका है, महाराज आज भी यवन राजा की शान्ति-स्थापना की आकांक्षा का शुभ आगमन करने को उद्यत हैं, यदि यह सच्चे हृदय से निकली है।

परन्तु यदि जम्बूद्वीप में शान्ति स्थापन करना है, और यदि भारत से बाहर होते ही इस शान्ति को भंग करना स्वीकार नहीं है, तो कोई ऐसा उपाय होना चाहिए, जिससे यह चिरस्थायी हो सके।

इस शुभ आदर्श को सम्मुख रख कर मैंने यवन दूत पेट्रोक्लीस के साथ मिलकर विचार किया है और हम दोनों इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि यदि महाराज सैल्यूकस अपनी पुत्री का सम्बन्ध महाराज चन्द्र से करना स्वीकार कर लें तो जम्बूद्वीप के शान्ति वृक्ष की जड़ पाताल में पहुंच जाएगी। यदि यवन महाराज को यह स्वीकृत हो तो मैं महाराज को इस पर सहमत करने का यत्न करूंगा।

विष्णुगुप्त चाणक्य कौटिल्य
महामन्त्री

न जाने इन शब्दों के अन्दर क्या था कि भरी सभा में, जहां इस समय तक महामन्त्री की आवाज गूंज रही थी, मृत्यु का सा सन्नाटा छा गया। दर्बारी जनों की आंखें नीचे को झुक गईं। और एक क्षण के लिए यह प्रतीत होने लगा कि यह मनुष्य नहीं वरन् मिट्टी की मूर्तियां हैं, जो किसी चतुर कारीगर ने खड़ी कर दी हैं। एकाएक लोगों ने सिर ऊपर उठाए, क्योंकि सैल्यूकस की आवाज क्रोध में भर कर ऊंची हो रही थी।

सैल्यूकस—पेट्रोक्लीस ! इसका मकसद ?

पेट्रोक्लीस—(आदाब बजाकर) आली-जहां ! तहरीर बिल्कुल साफ है।

सैल्यूकस—क्या इण्डियन गीदड़ को अब यह हौसला हो गया कि वह शेर के मुंह आने की जुरअत कर रहा है ?

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द नियामत ! शायद यही अल्फाज इण्डियन लोग यूनानियों की बाबत कहते होंगे।

सैल्यूकस—क्या ? क्या कहते हो ? मगर हां, हम भूलते हैं, तुम यूनान की इस बेइज्जती में निस्फ के हिस्सेदार हो ?

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द दौलत ! बेइज्जती नहीं, इज्जत !

आज कोई भी बादशाह शाहंशाह हिन्द के साथ तअल्लुक पैदा करना फख्र समझता है।

सैल्यूकस—शाहंशाह हिन्द ? खूब !

पेट्रोक्लीस—बेशक ! शाहंशाह हिन्द ! जिसकी खिदमत में शाह यूनान ने सफारत रवाना की, ताकि यूनानी लश्कर को बखैरियत वापस जाने का मौका दे।

सैल्यूकस—(आवेश में) हमारे मुंह पर ? हमारे ही सफीर की ज़बान से ! यह अल्फाज ? क्या कोई शख्स इसे सजा नहीं देगा।

यह शब्द कह कर सैल्यूकस ने सिर उठाकर चारों ओर देखा। इस समय उसके नेत्रों से अग्निकण निकल रहे थे, परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी कोई सिर उसकी अपील का उत्तर देने को ऊंचा न हुआ।

पेट्रोक्लीस—(साहस करके) खुदावन्द नियामत ! सिर उतारना है, सजा देनी है, तो अपने हाथ से दीजिए। (आगे बढ़कर) यह सिर हाजिर है, (कमर से खञ्जर उतार कर) यह खञ्जर भी, जिसे हजूर ने ही इनायत किया था, पेशकश है। दिल में आता है तो अभी इस सिर को गर्दन से उतार दीजिए, लेकिन अगर आप यह चाहते हैं कि पेट्रोक्लीस आपको उल्टा मशवरा देने लग जाए या किसी दुनियावी लालच में आकर असलियत को छिपाने में मददगार हो, तो यह नहीं होगा।

पेट्रोक्लीस ऐसा करेगा यह किसी को आशा तक न थी। इसलिए उसकी इस हर्कत ने सैल्यूकस के बढ़ते हुए जोश और गुस्सा को रोकने में एक भारी हिस्सा लिया, जिसके मुख से केवल यह निकल सका :—

सैल्यूकस—तुम इण्डियन वजीर को यह मश्वरा दोगे, यह मुझे उम्मीद न थी।

पेट्रोक्लीस—शाहा ! आप मुझे जानते हैं, मेरे जज़बात को जानते हैं। अगर यह जानते हुए भी आप मुझ पर यह इल्जाम लगाएं कि मैं यूनान की बेइज्जती का मूजब हुआ हूं, तो मासिवाय इसके और क्या कह सकता हूं कि यह मेरी क़िस्मत का फेर है।

सैल्यूकस—लेकिन रुक्शाना ! (दोनों हाथों से चेहरे को ढांप कर) क्या मैं रुक्शाना को ज़िबह करके अपनी जिन्दगी बचाऊंगा ? उफ़ !

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द नियामत ! लेकिन अगर हजूर नाराज़ न हों, तो मैं यह अर्ज कर दूं कि इस वक्त आपके सारे अहालियान लश्कर यह कह रहे हैं कि शाहंशाह अपनी बेटी को ज़िबह करके आजादी और जिन्दगी हासिल नहीं करेंगे, लेकिन हजारहा यूनानियो और उनके साथ उनके बीवी-बच्चों को ज़िबह करके शोहरत और नामवरी हासिल करने में उन्हें दरेग नहीं।

सैल्यूकस—(सहसा सिर उठाकर) सर्दाराने लश्कर ! क्या यह ठीक है ?

किसी ने उत्तर न दिया, शाहंशाह की आवाज गुम्बद की आवाज की तरह सभा मण्डप में गूंज कर निस्तब्ध हो गई !

सैल्यूकस—(होंठो में) अल्खामोशी नीमरज़ा ! (ऊंचे स्वर से) मजलिस बर्खास्त ! मुझे इन सर्दारों के मशवरे की जरूरत नहीं, जिनकी जबानें कट चुकी हैं।

चौबीसवां परिच्छेद

फैसला

क्या ? क्या सैल्यूकस इस तरह दस्तो पाबस्ता कर दिया गया है ? क्या उसकी बहादुरी और तहव्वर का बिल्कुल खात्मा हो गया ? क्या उसे अपनी जिन्दगी बचाने के लिए अपने जिगर के टुकड़े को कुर्बान करना होगा ?

उफ ! यह नाकाबिल बर्दाश्त है। ऐ दिल ! टुकड़े टुकड़े हो जा। ऐ जिस्म ! खाक में मिल जा, पेश्तर अजीं कि तेरी जबान इस मतालबा के पूरा करने का जरिया बने।

आह ! क्या यह वही हिन्दुस्थानी हैं ? क्या यह वही इण्डियन लोग हैं, जिन्हें ऐलैग्जैन्डर ने गीदड़ों की तरह झाड़ियों में घुसने पर मजबूर किया था ? उनका अब यह हौसला कि रुक्शाना के जिस्म का मुतालबा करें !

खुदावन्द ! क्या मुझे इसे पूरा ही करना होगा ? लेकिन इसके मासिवाय लश्कर को लाजमी बर्बादी और तबाही से बचाने का जरिया ही कौन सा है ? बरसात के काले काले बादलों की तरह, सावन भादों की उमड़ती हुई घटाओं की तरह, इण्डियन फौज इस वक्त हमारे हर चहार अतराफ में फैल रही है और उसकी तर्तीब पता देती है कि उसका कमांडर जबर्दस्त दिमाग का मालिक है। उसने अगर इस वक्त तक यूनानी फौज पर हमला करके इसे नेस्तनाबूद नहीं किया, तो इसलिए नहीं कि

वह ऐसा करने की ताक़त नहीं रखता, बल्कि इसलिए कि उसके दिल में कुछ और है।......हां तो फिर? क्या सचमुच वह इज़्ज़त और शोहरत, जो यूनान को ऐलैग्ज़ैन्डर के ज़ेर-साया हासिल हुई थी, सैल्यूकस के हाथों तबाह बर्बाद हो जायगी? क्या सचमुच मुझे यह शर्मनाक सुलह करनी पड़ेगी? क्या......"

"अब्बाजान! क्या सोच रहे हैं? तबीयत मुज़महल क्यों है?"

"कौन? रुक्शाना!"

"हां अब्बाजान, मैं हूं, मेरा आना नागवार तो नहीं?"

सैल्यूकस—तुम्हारा आना नागवार!

यह कह कर सैल्यूकस ने पुत्री की ओर देखा। पिता-पुत्री की आंखें चार हुईं और पता नहीं, दिल में किन ख्यालात ने चुटकी ली कि शाहंशाह के आंसू निकल पड़े और ढाढ़ें मार मार कर रोने लग गए।

पिता की यह दशा देखकर रुक्शाना का भी धीरज छूट गया। कुछ समय इसी तरह व्यतीत हुआ। जब दिल कुछ हलका हुआ, तो रुक्शाना ने आंसू पोंछकर कहा:—

रुक्शाना—आप क्या कर रहे हैं? आज आप को क्या हो गया है? अपनी जिन्दगी में पहली बार मैंने आपको आंखों में आंसू भरे देखा है।

सैल्यूकस—बेटी! मुझे न बुलाओ। मैं तुम्हारा कातिल हूं, मेरे हाथ तुम्हारे खून से लिथड़े हुए हैं।

रुक्शाना—अब्बाजान! क्या कह रहे हो? खुदा के फजल से मैं जिन्दा सलामत आपके सामने खड़ी हूं।

सैल्यूकस—(रुद्ध कण्ठ से) मैं मजबूर हूं; लेकिन नहीं, मैं बेटी का सदक़ा देकर जिन्दगी नहीं बचाऊंगा। सैल्यूकस खुद-कशी कर लेगा, सैल्यूकस अपने हाथों तीर से अपने कलेजे को

छेद लेगा, पेश्तर इसके कि वह इस सुलह-नामा पर दस्तखत करे, जिसकी रू से उसे अपनी प्यारी बेटी को—अपने जिगर के टुकड़े को—जिबह करने पर मजबूर होना पड़े।

रुक्शाना—(हंसकर) खोदा पहाड़, निकला चूहा! अब्बाजान! क्या इण्डियन शाहंशाह ने रुक्शाना की कुर्बानी मांगी है?

सैल्यूकस—(आश्चर्य से) तुम्हें मालूम हो गया?

रुक्शाना—आप खुद ही तो कह रहे हैं। लेकिन अगर यह ठीक है तो फिर इसमें गिरियाजारी की कौन सी बात है। रुक्शाना सिपाही की बेटी है और वह जानती है कि उसे अपना फर्ज किस तरह अदा करना चाहिए।

सैल्यूकस—लेकिन.........

रुक्शाना—(बात काटकर) क्या मेरी जिन्दगी इन हजारहा सिपाहियों से ज्यादा कीमती है, जिनके बीवी और बच्चे यहां से हजारहा कोस दूर उनकी राह तक रहे हैं?

सैल्यूकस—बेटी!.........

रुक्शाना—अब्बाजान! यह ठीक है कि मैं आप की बेटी हूं, आपके खून का खून हूं, आपके जिस्म का टुकड़ा हूं। इसलिये जहां मेरी कुर्बानी का सवाल आता है, वहां आपको तकलीफ़ महसूस होती है। लेकिन क्या हजारहा लश्करी आपके बच्चे नहीं हैं? क्या उन लोगों ने अपने जिस्म और जान की कुर्बानियों से आपको 'निकाटोर' कहलाने के काबिल नहीं किया? क्या इन लोगों ने अपनी जानें जोखिम में डालकर आपको शाहंशाह नहीं बनाया? और क्या वे यह नहीं चाहते कि आप उनकी जिन्दगी को इण्डिया के मैदानों में तबाह होने से बचाएं?

सैल्यूकस—फौज में बगावत के आसार दिखाई देते हैं। सिपाही और सर्दार अहकाम की तामील नहीं करते।

रुक्शाना—अब्बाजान ! यह ठीक है, और शायद मैं इस बात को आपकी निस्बत बेहतर जानती हूं, । क्योंकि मैं औरत हूं और उन लोगों के दिलों को पढ़ सकती हूं । लेकिन मैं यह कह देना चाहती हूं कि यह बगावत नहीं, इसे बगावत कहना गलती है । सिपाही और सर्दार भूखों मर रहे हैं । इण्डियन सिपहसालार ने उन्हें इस बात पर मजबूर कर दिया है कि वे कुत्तों और जङ्गली जानवरों की तरह भूख से तबाह हों । इन लोगों को अगर खुले मैदानमें जङ्ग में हलाक होना पड़ता, तो वे कभी चूं तक न करते, लेकिन जिस तरह जिल्लत की मौत वह मर रहे हैं, यह इन्सान को हैवान बनाने के लिए काफी है ।

सैल्यूकस—(ठंडा सांस भरकर) यह सब कुछ मेरी बेवकूफी का फल है ।

रुक्शाना—इसलिए आपको इसका कुफारा करना होगा ।

"कौन ! पेट्रोक्लीस ! हां चले आओ ।"

पेट्रोक्लीस—(अन्दर प्रवेश करके) खुदावन्द आलम ! क्या सोच रहे हैं ?

रुक्शाना—पेट्रोक्लीस ! इण्डियन कैम्प में गए थे ?

पेट्रोक्लीस—हां शाहजादी, गया था और वहां जो कुछ देखा, उसका असर अभी तक दिल पर बाकी है ।

सैल्यूकस—इण्डियन फौज का हौल अभी तक दिल पर मौजूद है ?

पेट्रोक्लीस—शाहंशाह अपने दिल में जो भी नतीजा चाहें निकाल सकते हैं लेकिन शायद शाहजादी साहिबा इस अमर से वाकिफ हैं कि पेट्रोक्लीस के दिल पर फौज की कसरत असर नहीं कर सकती ।

सैल्यूकस—तो क्या इण्डियन हाथियों को देख कर घबरा गए ?

पेट्रोक्लीस—इण्डियन फौज और इण्डियन हाथियों की कसरत और शौकत से भी बढ़कर एक बात थी, जिसने मुझे हैरान कर दिया और वह यह कि इण्डियन फौज का कमांडर वह शख्स है, जिसकी मेहरबानियों के लिए हजूर रुकशाना की जिन्दगी के लिए इतने ममनून हैं, लेकिन जिसका शुक्रिया अदा करने का मौका आज तक नहीं मिला।

सैल्यूकस के शरीर में एक विद्युत तरङ्ग सी दौड़ गई, वह सैल्यूकस, जो अभी अभी निराशा की मूर्ति बन रहा था, एकाएक बोल उठा।

सैल्यूकस—क्या कहा ? क्या वृषल इण्डियन फौज की कमान कर रहा है ?

पेट्रोक्लीस—इण्डियन फौज की कमान ही नहीं कर रहा, बल्कि......

सैल्यूकस—बल्कि क्या ?

पेट्रोक्लीस—वृषल और सन्ड्राकोटस एक ही हस्ती के दो नाम हैं।

सैल्यूकस—क्या ? क्या वृषल ही है, जो रुक्शाना का मुतालबा कर रहा है ? क्या वही उस चीज को वापस मांग रहा है, जिसे उसने इतने साल हुए अजल के मुंह से छीन कर मुझे बख्श दिया था।

यह शब्द कहते हुये शाहंशाह का कण्ठ भर आया और वे कुछ और न कह सके।

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द नियामत ! इस बात को जानते हुए मैंने इण्डियन वजीर की बात को तसलीम करने में तअमल नहीं किया था।

सैल्यूकस—मैंने तुम्हारे साथ बेइन्साफी की।

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द नियामत! यह बेइन्साफी नहीं थी, बल्कि आपके मुंह से जो अल्फाज निकले थे, वह एक सच्चे यूनानी के अल्फाज थे, जिन्हें सुनकर मेरा दिल जाइज फख्र से उछल पड़ा था।

सैल्यूकस—पेट्रोक्लीस! तुम इन्सान नहीं, देवता हो।

पेट्रोक्लीस—खुदवान्द आलिम, मैं देवता नहीं, आपका एक अदना गुलाम हूं, जिसने अपनी तमाम बुरी सफात अपने बुरे ख़मीर से सीखी हैं, लेकिन तमाम अच्छी बातें अपने आका से मुस्तआर ली हैं। लेकिन हां, तो क्या अब शाहंशाह को इस ताल्लुक के कबूल करने में तो तअमल की गुञ्जाइश नहीं?

सैल्यूकस—लेकिन......पेट्रोक्लीस,......क्या मैं समझ लूं कि......तुम्हारे जजबात रुक्शाना के लिये.........महज आरज़ी थे?

बड़ी कठिनता से रुक रुक कर शाहंशाह ने यह शब्द कहे, क्योंकि शाहजादी पास खड़ी सब कुछ सुन रही थी।

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द नियामत! (रुक्शाना की तर्फ एक भावपूर्ण दृष्टि से देख कर) मेरे जजबात आरज़ी नहीं थे, नांही पेट्रोक्लीस आरज़ी और फौरी जज़बात का गुलाम बनने का आदी है। मगर एक बेहतर इन्सान, नहीं, एक देवता के कदमों में उन जजबात की भेंट चढ़ा दी गई है और अब पेट्रोक्लीस की जिन्दगी का अगर कोई मक्सद है तो महज़ खिदमते ख़ल्क!

सैल्यूकस—क्या जो कुछ कह रहे हो, बिल्कुल सच है? क्या दरहकीकत तुमने वृषल की ख़ातिर अपने दावे से दस्त-बर्दारी दे दी।

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द आलिम! आपका गुलाम झूठ बोलने का आदी नहीं। वह अपने मुल्क, नहीं, नहीं, बनी नौ इन्सान

को कुश्तो खून से बचाने के लिए इससे भी बड़ी कुर्बानी दे सकता है, अगर उसकी जरूरत पड़े।

सैल्यूकस—(जोश में आकर) पेट्रोक्लीस! यकीनन अगर तुम अपने मुल्को कौम के लिए इतनी बड़ी कुर्बानी दे सकते हो, तो सैल्यूकस भी तुम से पीछे नहीं रहेगा। लेकिन...... ।

पेट्रोक्लीस—खुदावन्द नियामत! लेकिन क्या?

सैल्यूकस ने उत्तर न देकर रुक्शाना की ओर देखा, जो इस समय सिर झुकाये इस वार्तालाप को बड़े चाव से सुन रही थी, इस समय उसके मुखमण्डल पर आशा और निराशा की एक विचित्र छवि दिखाई दे रही थी।

पेट्रोक्लीस—शाहजादी! शाहंशाह आपकी राय दरियाफ्त करना चाहते हैं।

रुक्शाना—(सिर ऊपर उठा कर हिचकिचाहट से) वाल्दैन की ख्वाहिश औलाद के लिये हुक्म है।

सैल्यूकस—पेट्रोक्लीस! जाओ, अगर दरहकीकत सन्ड्राकोटस वृषल के सिवाय और कोई नहीं, और अगर वह रुक्शाना का मुतालबा करता है, तो मुझे इसमें अब कोई ऐतराज नहीं।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

सन्धि का पालन

वितस्ता नदी का भारत के इतिहास के साथ एक विशेष सम्बन्ध है। फिरङ्गी विद्वान् तो इसका नाम वेदान्तक में से निकालने की चेष्टा करते हैं; क्योंकि यही नदी थी जिसे वे बताते हैं कि विश्वामित्र पार करना चाहते थे, किन्तु जो उनके मार्ग में बाधक हुई थी।

यह सत्य हो वा न हो, परन्तु यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि यह उस प्रथम विश्वविजयी के प्रथम आक्रमण में अवश्य बाधक हुई थी, जो इस देश की सीमा के अन्दर दाखिल होने वाला पहला विदेशी था और जिसे इतिहास ऐलैग्जण्डर के नाम से स्मरण करता है।

परन्तु आज यह एक ऐसा दृश्य देख रही है, जिसे इसकी आंखों ने इससे पूर्व कदाचित् ही देखा होगा, क्योंकि आज इसके पवित्र तटों पर यूनानी और भारतीय वीर भाई भाई के समान एक दूसरे के गले मिल रहे हैं। दो महान् व्यक्तियों की जिह्वा के हिलने ने आज उन सहस्रों मनुष्यों के दिलों से घृणा के कुत्सित भाव को दूर करके, उन्हें एक दूसरे के दुख दर्द का साझीदार बना दिया है। इनके शरीरों पर आज भी शस्त्र उसी प्रकार अपनी चमक दिखा रहे हैं, परन्तु इसलिए नहीं कि किसी मनुष्य का खून बहाएं, वरन् इसलिये कि संसार को बुराई से बचाने का कारण सिद्ध हों।

यज्ञमण्डप सुसज्जित है, सामग्री की सुगन्धियों से जगत् सुगन्धित हो रहा है। पण्डितजन वेद-मन्त्रों के पवित्र और मधुर गान से व्यास के तटों को गुञ्जाते हुए चिरकाल से बिछड़े हुए दो दिलों को एक करने का यत्न कर रहे हैं।

चारों ओर हर्ष और आनन्द छा रहा है, और तो और वन के वृक्ष भी फूलों से लदे हुए झूम रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानों संसार में दुःख और चिन्ता का लेशमात्र भी शेष नहीं रहा।

नियत समय पर वृषल और रुक्शाना यज्ञमण्डप में पधारे। उपस्थित जनों ने खड़े होकर इस सौभाग्यवान युगलमूर्ति की अभ्यर्थना की। गुरुदेव ने समुचित आसन ग्रहण करने की आज्ञा दी और पण्डितों ने वेदों के पवित्र मन्त्रों से उनको एक करने का कार्य आरम्भ कर दिया।

महाराज वृषल के शरीर पर सजे हुए अस्त्र अपनी आभा से इस समय दर्शकों की आंखों में चकाचौंध पैदा कर रहे थे। उनके मुखमण्डल पर एक तेज था, जिस पर दृष्टि न ठहरती थी। राजकुमारी रुक्शाना को परमेश्वर ने आज वह दिन दिखाया था, जिसकी वर्षों से वह प्रतीक्षा कर रही थी। इसलिए अनुमान किया जा सकता है कि उसके मन की क्या अवस्था होगी, जब महाराज चाणक्य ने उन प्रतिज्ञाओं का अर्थ सुनाना आरम्भ किया, जो वेद-मन्त्रों द्वारा महाराज चन्द्र उससे कर रहे थे। संस्कार का कार्य समाप्त हुआ, "साधु" "साधु" की घोषणा में महाराज चाणक्य उठकर खड़े हुए और उनके मुखसे यह शब्द निकलते हुए सुनाई दिए :--

"भारतवासियो तथा यवन शूरवीरो!

कितने हर्ष का दिन है कि इस समय जगत् की दो सबसे बड़ी सभ्यताएं एक हो रही हैं। नहीं, मैं भूल करता हूं, एक ही

सभ्यता की दो बड़ी शाखाएं, जिन्हें एक दूसरे से वियुक्त हुए कई शताब्दियां व्यतीत हो गई थीं, आज फिर से एक दूसरे का हाथ पकड़ रही हैं।

शूरवीरो और योद्धाओ! अपने वास्तविक रूप से अपरिचित तथा कल तक एक दूसरे के रक्त के प्यासे धनुर्धारियो! क्या यह समय देवताओं के देखने योग्य नहीं, जब कि मकदूनीयन (मकदूनियां-निवासी) तथा मगदूनीयन (मगध-निवासी) भाई भाई की नाईं एक दूसरे के हाथ में हाथ दिये खड़े हैं?

हां हां, हैला (Hela) देश (यूनान) के वासियो! क्या हाला (पर्वत) के वासियों के साथ हाथ मिलाते समय तुम्हारे हृदय में भ्रातृ-भाव की लहर उत्पन्न नहीं होती?

परन्तु! हा शोक! मनुष्यों की हद से बढ़ी हुई इच्छाए उन्हें सचाई से कितना बेखबर बना देती हैं, अन्यथा क्या यह सम्भव था कि पैलासगी जाति के नाम लेवा अपने पूर्वजों को इतना भूल गये होते कि वे पैलाश (बिहार) देश के वासियों को सम्मुख देखकर उनके रक्त में हाथ डुबाने पर उद्यत हो जाते और उनके हृदयों में तनिक भी यह विचार न आता कि वे उनके कालान्तर के बिछुड़े हुए भाई हैं?

भारतवासी तथा यवन देशवासी योद्धाओ! तुम विस्मित होकर मेरी ओर निहार रहे हो, पर इसमें विस्मय की कोई बात नहीं; क्योंकि यह सचाई है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। तुम लोग भाई भाई हो, जिन्हें यदि महाराज चन्द्र की शुभ भावना, देवी रुक्शाना की आहुति और महाराज सैल्यूकस की उदारता परस्पर न मिला देती, तो आज एक दूसरे का गला काट रहे होते।

शोक का समय है कि भारत और यवन देश में अभी तक इतने निकट सम्बन्ध नहीं हुए कि दोनों देशों के विद्वान् एक

दूरे स की भाषा का पठन करते। परन्तु अब जब कि इस गूढ़ सम्बन्ध द्वारा इस बात की नींव रखी जा चुकी है, वह समय दूर नहीं जब कि ऐसा होगा। फिर आप लोगों को ज्ञात हो जाएगा कि यवन-भाषा, अपनी रचना, शब्दावली तथा अन्य आवश्यक बातों में संस्कृत भाषा से कितनी मिलती-जुलती है।

और जब यह बात है, तो क्या यह कहना कठिन रह जाता है कि इन भाषाओं को बोलने वाली दोनों जातियां एक ही माता की दो पुत्रियां हैं, जो काल की कराल गति से एक दूसरे को भूल गई हैं।

भाषा ही नहीं, यवन देश की सारी की सारी नामावली ही इस विचार को पुष्टि दे रही है। इसके पर्वतों के नाम, इसकी नदियों के नाम, इसके प्रान्तों के नाम, इसके नगरों के नाम स्पष्ट शब्दों में पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि यह देश उस जाति का है, जिसका गृह कभी भारतवर्ष था।

मागधी लोगो! तुम पैलाश❀ देश के रहने वाले हो! यदि तुम्हारे सम्मुख कोई ऐसा मनुष्य आ जाए जो अपने आपको पैलाशिक कहता और मकदूनियां का वासी बताता हो, तो तुम उसे क्या समझोगे? हां हां, जब साथ ही वह तुम्हें अपने पूर्व पुरुष पैलासगोस के विषय में यह बताने को भी तैयार हो कि वह गया* से निकला था और पालीस्थून राजा का पुत्र था, तो क्या तुम्हारे हृदय में यह विचार उत्पन्न न होगा कि वह मगध देश अर्थात् पालीस्थान के किसी राजा का पुत्र था, जिसकी जन्मभूमि गया की पवित्र नगरी थी?

हां हां, भारतवासियो! इतने से तुम्हें ज्ञात हो गया होगा कि वह जिनके साथ तुम युद्ध के लिए उद्यत हुए थे, वास्तव में तुम्हारे ही रक्त का रक्त है।

❀ पैलाश, बिहार, मगध एक ही प्रान्त के नाम हैं। * Gaya

यवन देश के पर्वतों, नदियों और प्रान्तों की नामावली पर ध्यान दो, तो तुम्हें आश्चर्य से यह मानना पड़ेगा कि इन महावीरों के हृदयों में, जिन्होंने किसी अज्ञात समय में अज्ञात कारणों से प्रेरित होकर भारत को छोड़ा और यवन देश को अपना गृह बनाया; हां, उन शूरवीरों के हृदयों में, भारत-भक्ति कितनी प्रबल थी, जिन्होंने अपने नूतन गृह में जाकर उस देश के ऊंचे पर्वत को गिरिराज आदि (हिमालय) के नाम पर ओथीस का नाम दिया और उसी के साथ सम्बन्ध रखने वाले समुद्र का आद्रिक अटक (एड्रिया टक) समुद्र नाम रखा।

तुम्हारे देश का कैलाश पर्वत यूनान देश में कोइलोन के नाम से प्रसिद्ध है और वह स्वर्गीय नदी गङ्गा, जो भारत में स्वर्ग से उतर कर आई हुई कही जाती है, यवन देश में स्वर्गीयस के नाम से दृष्टिगोचर हो रही है।

किस किस वस्तु का नाम लूं। यवन देश का एक एक स्थल, एक भारतवासी को उसके देश की याद दिलाता है। वहां पर सिन्धु नदी की प्रतिनिधि तुम्हें एक हैलोस (हाला पर्वत से निकली हुई नदी) के रूप में तुम्हें मिलेगी। महाभारत के योद्धा अर्जुन का नाम विजय इस देश के समुद्र विजय-रोन (विजय का जल) में मिलता है और पांच पाण्डव के नाम को पण्डूस पर्वत अपने नाम से अटल बना रहा है।

अर्थात् उस देश का एक एक प्रान्त, एक एक नगर, एक एक नदी, एक एक पर्वत, अपने नाम के लिए दूर-स्थित भारत की ओर उङ्गली उठा रहा है। ज्यों ज्यों समय बीतेगा, विद्वान् लोग अपनी ख़ोज से इस बात का पता देंगे कि सचमुच यवन देश

भारतवासियों की ही एक बस्ती थी।

इस अवस्था में क्या तुम्हारे लिये यह हर्ष का समय नहीं

कि माता और पुत्री फिर एक दूसरी को पहचान कर एक दूसरी के गले लग रही हैं ?

"साधु" "साधु" के नाद से यज्ञमण्डप गूंज उठा। महाराज चाणक्य ने अपनी वक्तृता को जारी रखते हुए कहा :—तुम्हारा एक दूसरे को पहचानना एक ऐसी बात है, जो इस युद्ध से प्राप्त हुई है और समय आएगा जब संसार कहेगा कि यह सभ्यता के लिये समुद्र-मन्थन में अमृत के प्राप्त होने की सामग्री थी।

अधिक हर्ष इस बात का है कि यह समुद्र-मन्थन ऐसी सुन्दर और विचित्र रीति से हुआ है कि न तो व्यर्थ रक्तपात हुआ है और न दोनों राजाओं के गौरव का नाश ही। महाराज सैल्यूकस, जहां तक मुझे पता लगा है, भारत को विजय करके इसे अपनी पुत्री को समर्पण करना चाहते थे! इसलिये यह हर्ष का विषय है कि उनकी यह इच्छा, बिना भारतवासियों के आत्मसम्मान को नष्ट किये, (जो भविष्य में रक्तपात का एक भारी कारण होता) पूरी हो गई है, क्योंकि आज हम सारे के सारे भारतवासी स्वयं अपने हाथों से प्रफुल्लित हृदयों के साथ

देवी रुक्शाना को भारत की महारानी

बनाने का कारण बने हैं।"

"साधु" "साधु" के शब्द और करतलध्वनि से मण्डप गूंज गया।

महाराज चाणक्य—"इस प्रकार महाराज सैल्यूकस अपनी जिस पुत्री को भारत की महारानी बनाना चाहते थे, उसे यह पदवी देने में हम उनके साथ सहमत हो रहे हैं। अतः अब उन्हें भविष्य में यह सन्देह करने का स्थान नहीं रहा कि महारानी को भारतवासियों की ओर से कोई भय व आशङ्का हो सकती है।

महाराज चन्द्र, जिन्हें आजतक वात्सल्य-भाव से हम भारतवासी वीर वृषल के नाम से पुकारते रहे हैं, चिरकाल से महाराज सैल्यूकस को पितावत् समझते रहे हैं और यह विचार उनके लिए अतिशय पीड़ा का कारण था कि उन्हें उन महाराज के साथ अपने देश की रक्षा के निमित्त युद्ध करना पड़ेगा। क्योंकि यह अब भारतवासियों में से किसीसे छिपा हुआ नहीं है कि महाराज अपने देश और इस देश हित के लिए अपने प्यारे से प्यारे भावों की आहुति देते रहे हैं और भविष्य में भी देने को उद्यत हैं। (साधु साधु) यदि अपने प्यारे देश और मातृ-भूमि को बचाने के लिये उन्हें अपने भाई-बन्दों और सम्बन्धियों से भी युद्ध करना पड़े, तो चाहे कितने ही दुःख के साथ क्यों न हो, उनका निश्चय एक ही है। इस कारण यह कोई थोड़े हर्ष की बात नहीं कि उन्हें अब जम्बू-द्वीप की उस महान शक्ति से, जो महाराज सैल्यूकस का रूप धारण किए है, कोई भय नहीं रहा। भारत-वासी और यवन देशवासी अब सुख से अपनी प्रजा को उन्नति का समय दे सकते हैं।

परन्तु हमारे यह सारे विचार कदाचित् निष्फल होते, यदि हम लोग यह न जानते कि महाराज चन्द्र और देवी रुक्शाना का विवाह दो शरीरों का नहीं, प्रत्युत दो आत्माओं का मिलाप है। क्योंकि यदि यह दो शरीरों का ही मिलाप होता, तब यदि राजकुमारी रुक्शाना ने इन दो लड़ती हुई जातियों की द्वेषाग्नि को अपने रक्त के छींटों से बुझाने के लिये अपने आपकी इस यज्ञ में आहुती दी होती, तो चाहे इस देवी की आहुती एक महान् आहुती क्यों न होती, परन्तु इससे एक चिरस्थायी सन्धि और शांति की आशा नहीं हो सकती थी; क्योंकि वह आत्मा, जिसे इस प्रकार नष्ट किया गया अथवा नष्ट होने पर बाध्य किया गया

हो, भविष्य में कभी इस अग्नि को फिर सुलगाने का कारण बन सकती है।

परन्तु धन्यवाद है उस परिपूर्ण सर्वान्तर्यामी परमेश्वर को कि ऐसा नहीं हुआ। प्रतीत होता है कि महाराज चन्द्र और देवी रुक्शाना की आत्माओं को दो भागों में विभक्त केवल इस लिए किया गया था, ताकि वे दो भागों में विभक्त हुए महान् जाति के उन दोनों भागों के मिलने का कारण बनें, और उनकी यह कामना आज पूर्ण हुई है।

जहां तक महाराज चन्द्र का सम्बन्ध है, मैं कह सकता हूं कि यह सम्बन्ध केवल इन्हीं के शरीर और महाराज सैल्यूकस के शरीर तक समाप्त नहीं हो जाएगा, वरन् इनके पुत्र और पुत्रों के पुत्र भी इस सम्बन्ध को उसी दृष्टि से देखेंगे, जिससे कि वे स्वयं इस समय देख रहे हैं।

अन्त में मैं आप लोगों से इतना समय व्यर्थ गंवाने के लिये क्षमा मांग कर महाराज की ओर से यह कह देना चाहता हूं कि महाराज अपने आदरणीय और पूजनीय पितावत् सम्बन्धी महाराज सैल्यूकस की सेवा में भारतवर्ष के रक्षक अपने पांच सौ जङ्गी हस्तियों का उपहार भेंट करते हैं और यह आशा रखते हैं कि इस उपहार को उसी उदारता से स्वीकार कर लिया जावेगा, जो महाराज सैल्यूकस में इस समय तक स्वाभाविक रही है।"

महाराज चाणक्य "साधु" "साधु" के मनोरञ्जक जयकारों और हर्ष-सूचक करतलध्वनि की गर्जना में अपने आसन पर बैठ गए, तो महाराज सैल्यूकस का लम्बा शरीर सम्मुख खड़ा दिखाई दिया। इस समय उनकी आंखों में आंसू थे और किसी अज्ञात भाव ने उनके मुख-मण्डल पर सुर्खी और जर्दी को एक विचित्र रूप से मिला दिया था। आपने कहा:—

महाराज सैल्यूकस—"यूनान और इण्डिया के दिलावरों ! फाज़ल इण्डियन वजीर ने इस वक्त जो कुछ फर्माया है, उसने हम सभी के लिए एक नये मुतालश्रा का सामान पेश कर दिया है और आइन्दा जब कि इण्डिया और यूनान को एक दूसरे से मिलने-जुलने में ज्यादा आसानियां मुअस्सर आएंगी, हमारे इल्म में और भी ज्यादा अजाफा होगा।

उस वक्त जब कि मैं इस इण्डियन फाजल की तकरीर सुन रहा था, मेरे दिल में कोई ना मलूम खयाल यह कह रहा था कि गालबन अलेग्जैण्डर और उसके बाद मुझे इस कदीम मुल्क में लाने की तहरीक करने वाला खयाल अपने पीछे कोई खुदाई मक्सद रखता था।

जो कुछ भी हो, मौजूदा तअल्लुक के मुतल्लिक मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि अगर मुझे पहले पता होता कि वृषल और सण्ड्राकोटस एक ही हस्ती के दो नाम हैं तो शायद इस मुहिम की जरूरत न पेश आती। मगर उस मुकम्मल हस्ती को, जिसने इतने बार रुक्शाना को वृषल के जरिया मौत के मुंह से छुड़वाया था, गालबन यह मंजूर था कि हमें एक दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझने का मौका मिले।

खुशी की बात यह है कि इस सुलह में हमारे सामने कोई सियासी दाँव पेच नहीं, बल्कि हम सब इस वक्त एक दूसरे की ज़ाती और कौमी खूबियों का एतराफ कर रहे हैं।

इसलिए आइन्दा हमारे ताल्लुकात के बिगड़ने की कोई भी सूरत नहीं, लेकिन ताहम एहतिआतन मैं इस कांटे को जड़ से ही निकाल देना चाहता हूं, जो आइन्दा इण्डिया और यूनान के दर्म्यान जंग का जरिया हो सकता है।

इसलिए मैं आरूरा इंडस का तमाम इलाका नीज अराखो-

शिया—(आज कल का अफ़गानिस्तान) और गद्रोशिया का इलाका बेटी रुक्शाना को दहेज में देता हूं। मुझे अफसोस है कि इस वक्त मैदान जंग में होने की वजह से मैं और कुछ देने के नाकाबिल हूं, लेकिन रुक्शाना सिपाही की बेटी है और वृषल खुद सिपाही है, इसलिये उम्मीद करता हूं कि वे इस हकीर तोहफा को एक सिपाही का तोहफा समझ कर कबूल फर्माएंगे।"

यह कह कर तालियों की गर्जना में महाराज सैल्यूकस बैठने को थे कि महारानी रुक्शाना और महाराज चन्द्रगुप्त ने आगे बढ़कर अपने आप को उनके चरणों में डाल दिया। उनकी यह चेष्टा कदाचित् महाराज सैल्यूकस के लिये आशातीत थी, क्योंकि उनका भरा हुआ दिल अब बिलकुल उमँड आया और अपने उन दोनों बच्चों को छाती से लगाकर आंसुओं की धारा में आपने रुक रुककर केवल यह कहा :—

"वृषल! रुक्शाना ना समझ है। शायद बाज औकात तुम इसे मूर्ख भी समझोगे, लेकिन याद रखना कि यह बे मां की बेटी है, जो अब बाप के साया से भी महरूम हो गई है।"

वृषल—महाराज! मैं आज तक अनाथ था, महाराज चाणक्य मेरे आध्यात्मिक पिता थे, परन्तु अब मुझे पिता का प्रतिनिधि आपके रूप में परमात्मा ने भेज दिया है, मुझे भूल न जाना।

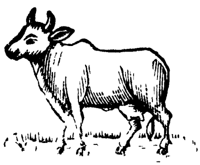

छब्बीसवां परिच्छेद

महाराज चाणक्य का वानप्रस्थ

यूनानी सेना को भारतवर्ष की सीमा को छोड़े एक वर्ष से ऊपर हो गया। अब उसका प्रतिनिधि इस देश के अन्दर यदि कोई है तो केवल पेट्रोक्लीस, जो यूनानी शाहंशाह के मगध देश में स्थानीय राजदूत के रूप में पाटलीपुत्र के दर्बार में यूनानी अधिकारों की रक्षा कर रहा है। यह नवयुवक फिलास्फर आज-कल भारतवर्ष में लोकप्रिय हो रहा है। लोग इसे मगध-स्थानीय के नाम से याद करते हैं। और इसका यह नाम इतना प्रसिद्ध हो गया है कि यूनानी भी इसे मेगस्थनीज के नाम से ही बुलाते हैं। यही कारण है कि इसका वास्तविक नाम अब लोगों को भूल ही गया है।

शाहजादी रुक्शाना को तो भारतवर्षीय रानियों से पहचानना कठिन है, क्योंकि उसने भारतीय रीति-नीति के स्वाध्याय में इतनी जल्दी उन्नति कर ली है कि वह सब प्रकार से भारतीय रानी बन गई है। इस समय उसकी गोद में एक नन्हा सा बच्चा खेल रहा है, जिसके मुखमण्डल से पिता का पराक्रम और माता का सौन्दर्य स्पष्टतया टपक रहा है। इस सुन्दर बालक को पिता ने बिन्दुसार का नाम दिया है।

राज-प्रासादों में दिन-रात आनन्द-मङ्गल छाया रहता है। राजा और रानी के समय का एक बड़ा भाग प्रजा के दुख दूर करने में लगता है, और उसके पश्चात् उनका जीवन गुरुजी के उपदेश श्रवण और एक दूसरे की संगति में व्यतीत होता है।

परन्तु आज राज महलों में प्रतिदिन की तरह चहल-पहल दिखाई नहीं देती। जिधर देखो शोक और दुःख छाया हुआ है। पाठक जानना चाहते होंगे कि बात क्या है। आओ, गुरुदेव के यहां चलकर पता लें।

परन्तु यह क्या ? यहां पर सारे दर्बार के लोग महाराज और महारानी सहित विराजमान हैं। तनिक सुनना, गुरु देव कुछ कथन कर रहे हैं :—

"राजन् ! अब हमें अधिक समय तक न ठहराओ। परमात्मा की कृपा और तुम्हारे मित्रों तथा मन्त्रियों की सहायता से अब भारतवर्ष एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक एक संगठन में पिरो दिया जा चुका है। जम्बू द्वीप की सबसे बड़ी शक्ति अर्थात् यवन महाराज इस समय तुम्हें पुत्रवत् प्रेम करते हैं। चीन, किरात, वाह्लीक तक के राजा लोग तुम्हारे साथ सम्बन्ध जोड़ना अपने लिए सम्मान समझते हैं।

दूर दूर देशों के राज्यों के प्रतिनिधि तुम्हारे दर्बार में उपस्थित हैं। महात्मा पेट्रोक्लीस तुम पर अपने प्राण तक निछावर करते हैं। भाई राक्षस की जागृति संसार से भूली हुई नहीं। इस

कारण आज्ञा दो कि विष्णुगुप्त अब वानप्रस्थ धारण करके अपने जीवन को सफल करने का यत्न करे।"

महाराज चन्द्र—(बड़ी कठिनता से बोलते हुए, क्योंकि कण्ठ और नेत्र पुलकित हो रहे थे) गुरुदेव! क्या आप यह आशा करते हैं कि आपके करकमलों द्वारा सुरक्षित न रहने पर यह राज्य इसी प्रकार प्रफुल्लित और उन्नत होता चला जाएगा?

गुरुदेव इसके उत्तर में कुछ कहने ही लगे थे कि महारानी ने नन्हे से बिन्दुसार को उनके श्री चरणों में रख दिया। महाराज ने उस बालक को हाथों में लेकर और प्यार करके महाराज चन्द्र से कहा:—

"श्री महाराज तथा महारानी! इस नन्हे से पौदे को मैंने अपने हाथों से सींचा है, और तुम्हारा इसे इस समय मेरे सम्मुख लाने का जो प्रयोजन है, उसे मैंने समझ लिया है। परन्तु यह छोटा सा बालक भी अपनी मौन वाणी से चाणक्य को अपने संकल्प से हटा नहीं सकता, यह तुम भली भांति समझते हो।

परन्तु इस बालक का यहां आना निष्प्रयोजन नहीं जाना चाहिए। इस कारण मैं तुम्हें बता दूं कि गर्भ में आने के दिन से ही मैंने इसे संस्कारों से सुसज्जित करने का यत्न किया है, क्योंकि मैं भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौन पदन्त और वातव्याधि आदि अन्य आचार्यों से राजकुमारों की रक्षा के विषयों में मतभेद रखता हूं।

मेरा तो मत यह है कि कुमार के अन्दर आदि से ऐसे संस्कार डाले जाएं कि उसके अन्दर दुर्भावनाओं का प्रवेश होना असंभव हो जाए। इस कारण मैंने इस नन्हे से बालक के अन्दर इसके गर्भ में प्रवेश से ही सत्यार्थ के विचार डालने का प्रयत्न किया है।

बालक का मन कोरे भाण्डे के समान है, जिस पर पाप और अत्याचार आदि के संस्कार डालना एक महान् पाप है। इसलिए अब ऐसा यत्न करो कि मैंने इसके अध्ययन की जो प्रथा चलाई है, वह इसी प्रकार चलती रहे। यदि बड़ा होने पर इसके अन्दर कोई दुष्ट व्यसन दिखाई दे अथवा इसका मन स्त्रियों की ओर चलायमान होता दृष्टिगोचर हो, तो ऐसा यत्न करना कि भीषण गन्दी स्त्रियां आर्य्य-स्त्रियों का वेश धारण करके उसे इस पथ से घृणा दिलावें। यदि मदिरा-पान के व्यसन की ओर इसे झुकता देखा जाए तो ऐसी मदिरा पिलाई जाए, जिसमें योगपान मिलाए गए हों, ताकि इसे भविष्य में ऐसा करने से घृणा हो जाए। यदि इसे द्यूत का व्यसन पड़ता दिखाई दे, तो गुप्तचर कपटी जुआरियों के वेश में इसे इससे डरा-धमका दें।

परन्तु जगत् के लोग ऐसा नहीं करते। वह बालक से व्यसन छुड़ाया चाहते हैं, पर कथनमात्र से।

वृषल! महारानी! मैं आशा करता हूं कि इस विषय में मेरे थोड़े शब्दों को ही भली प्रकार समझ लिया जाएगा और इसके पश्चात् मुझे राजकार्य्यों के भार का त्याग करने की आज्ञा दी

जायगी। राज्य अब अच्छे प्रकार चल रहा है। देश बुद्धिमान मन्त्रियों से भरा पड़ा है, चारों ओर कोई राजद्रोही नहीं।

इस कारण कौटिल्य का इस स्थान पर बैठकर भगवद्-भजन से विमुख रहना पाप है। हां, यदि कोई आपत्काल आ पड़े, और यदि भारतवर्ष को कौटिल्य की सेवा की आवश्यकता हो, तो एक भी भारतवासी के ऐसा विश्वास दिलाने पर कौटिल्य स्वर्ग को लात मार कर देश-सेवा के हित उद्यत हो जाएगा, इस बात की ओर से निश्चिन्त रहो। यदि भारत-माता ने एक दधीचि को उत्पन्न किया है. जो अपने बुढ़ापे में भारत-माता के कारण अपनी हड्डियां देने को उद्यत हो गया था, तो उसने एक कौटिल्य भी उत्पन्न किया है, जो उसकी सेवा के लिए स्वर्ग के सुखों को त्याग सकता है।"

यह कहकर महाराज उठ खड़े हुए। इस समय उन्हें रोकना असम्भव था, क्योंकि सब लोग उनके दृढ़ संकल्प को जानते थे। हां, सब का शिर झुका हुआ था और नेत्र अश्रु परिप्लुत थे।

समाप्त